



स्वर्ण जयन्ती विशेषांक 2019

जेएनयू
पाठक





"उठो ,जागो और अपने लक्ष्य को प्राप्त करो ।" - स्वामी विवेकानंद

जेएनयू परिसर वर्ष : 7, अंक: 13 संयुक्तांक 2019

जेएनयू परिसर	वर्ष : 7, अंक: 13 संयुक्तांक 2019	पृष्ठ सं.
संरक्षक	संपादकीय	4
चिंतामणि महापात्रा	महिला दिवस पर विशेष	
डॉ प्रमोद कुमार	गरिमा श्रीवास्तव : मुस्लिम स्त्रियों की आत्मकथाएं : चुप्पियाँ और दरारें	7
संपादक-मंडल	धरोहर	
डॉ. मलखान सिंह	ओमप्रकाश सिंह : स्मृतिशेष गंगाप्रसाद विमल	18
प्रो. सुधीर प्रताप सिंह	जानेंद्र संतोष : भारतीय समीक्षा और नामवर सिंह	21
प्रो.ओमप्रकाश सिंह	देवशंकर नवीन : महान गुरु और महत्तर कवि केदारनाथ सिंह	27
डॉ. शीतल शर्मा	लेखक की दुनिया:कथा	
संपादकीय सहयोग श्री सुमेर सिंह श्री शिवम शर्मा	<ul style="list-style-type: none"> • डॉ. अंशु जोशी : एक सार्थक मना • दीपक कुमार प्रियदर्शी : बदलता समय • अथर्व द्विवेदी : महक नीबू की • राजीव रंजन यादव : आज फिर गाँव मुस्कुरा रहा है • सोनम : शब्द नहीं दवा • प्रीती भारतीय : अंकुर 	39 42 45 49 50 51
	काव्य सृजन	
	गौरव भारती की कविताएं	53
	साक्षात्कार	
	प्रो.एम.जगदीश कुमार से डॉ.मलखान सिंह की वार्ता	57
	अनुवाद	
आवरण चित्र डॉ. एन.के. पाण्डेय	<ul style="list-style-type: none"> • मनुराधा चौधरी : घर वापसी • अजमल : कोई जीवित बचा नहीं • कुतुबुद्दीन : तस्वीर का भेद • रविश राजन्या : कविता 	64 68 72 77
फोटो फोटोग्राफी क्लब जेएनयू	लेखक की दुनिया : कविताएं	

	हीरामन तिवारी, प्रमोद कुमार तिवारी, दुर्गेश देविक शहर, पी भारद्वाज, सौम्या अवस्थी, मोनिका सिंह, साक्षी पाण्डेय, निवर्णितासुमन, प्राची चौधरी, रश्मि, समीर नरमणि, अविनाश भारती (गज़ल), रामपाल विश्वकर्मा (गज़ल), आनंद कुमार मिश्रा, मोनिका मीणा	78 79 81 82 83 96
टंकण सहयोग	लेख	
श्री दीपक कुमार एवं श्री सुशील यादव	<ul style="list-style-type: none"> • देवेंद्र चौबे : मैनेजर पाण्डेय - एक दार्शनिक आलोचक 	98
	<ul style="list-style-type: none"> • शीतांशु कुमार : न पूरब से अभिभूत न पश्चिम से आक्रांत - आचार्य रामचंद्र शुक्ल • सत्यपाल शर्मा : दिनकर राष्ट्रवादी नहीं, मानवतावादी • प्रो चौडूरी उपेंद्र राव : संस्कृत की उपेक्षा न करें • संदीप कुमार पाण्डेय : विदेशी भाषा अधिगम – आत्मनिर्भरता की सौगात • कश्यप कुमार दुबे : ग्रे वाटर • ज्योति : कोरोना महामारी और पर्यावरण विमर्श • पंकज चौहान : कोरोना और पर्यावरण चिंतन • इशिता सक्सेना : पारंपरिक जीवनशैली एवं कोरोना महामारी • विनय पटेल : मानव वेदना की अभिव्यक्ति में कलाकार • चित्रा राजोरा : आत्मनिर्भर भारत और महात्मा गांधी 	106 121 128 134 136 138 141 143 144 147
	गंगा ढाबा	
	<ul style="list-style-type: none"> • निखिल यादव : स्वामी विवेकानंद की दृष्टि में आत्मनिर्भर भारत • प्रज्ञा मिलिंद : जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय- उत्कृष्ट शिक्षा का घर • अभिषेक सौरभ : जेएनयू परिसर 	150 152 154

जेएनयू की इस गृह पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के हैं। उनसे विश्वविद्यालय अथवा संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं। इसके लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।	स्वास्थ्य	156
	उमेश बाबू : प्राणायाम का वैज्ञानिक आयाम	158
	पुस्तक समीक्षा	161
	तितास एक नदी का नाम : महेंद्र सिंह	
	गतिविधियां	
	राजभाषा विभाग की वार्षिक रिपोर्ट	
	गरिमा सिंह : जापानी केंद्र सांस्कृतिक पर्व : किजुना	162
संपर्क:जेएनयू परिसर	नीरा भल्ला सरिन : पौधों की अद्भुत दुनियां से रूबरू होंगे विद्यार्थी	163
301, राजभाषा प्रकोष्ठ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली – 110067	प्रदीप कुमार, प्रियंका कुमारी और संजय कुमार : हमारे समय का साहित्य	164
	प्रो उदयनाथ साहू -'प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति के परिदृश्य-	167
	परिसर गतिविधियाँ – चित्र वीथिका	169
ईमेल:jnuparisar@mail.jnu.ac.in	नए प्रकाशन	185
संपादन/संचालन: अवैतनिक	संस्कृत वाङ्मय में श्रीराम : सी उपेंद्र राव	
दूरभाष: 91-11-26704023 मो. 9990765648	कन्फ्र्यूशियसवाद के चार ग्रंथ - बी.आर. दीपक	
	वैशेषिक दर्शन मेन पदार्थ -निरूपण -डॉ शशि प्रभा कुमार	
	काला कोट और दूसरी कहानियाँ- मनुराधा चौधरी	

संपादकीय



50 वर्षों की सफल यात्रा के लिए जेएनयू परिवार को बहुत बहुत बधाई ! मित्रो, सन 2019 जेएनयू के लिए अत्यंत गौरव और आत्ममंथन का वर्ष रहा है। गौरव इस बात का कि वह अपनी स्थापना की 50वीं वर्षगांठ 'स्वर्ण जयंती वर्ष' के रूप में मना रहा है और मंथन इस बात का कि विगत पचास वर्षों में क्या पाया और क्या प्राप्त करना है,उसके लिए क्या और कैसा उद्यम अपेक्षित है। जैसा कि आप जानते हैं कि गौरवशाली संस्थाएं अथक परिश्रम से बना करती हैं । जेएनयू की अंतर्राष्ट्रीय पहचान इसकी अनेक उपलब्धियों से बनी है। ये उपलब्धियां यहाँ के छात्रों और प्राध्यापकों के कठोर परिश्रम का परिणाम हैं।अध्ययन-अध्यापन और अनुसंधान की गुणवत्ता ही जेएनयू की मूल पहचान है । सोये हुए लोगों में जान फूँकने वाला यह विश्वविद्याय अपने भीतर सम्पूर्ण भारत को समेटे हुए है। यह विश्वविद्यालय एकता,समरसता, सहयोग,समर्पण और नवीनता के साथ आगे बढ़ता रहा है । अधिकार,अस्मिता और न्याय के लिए सदैव लड़ता रहा है । कर्तव्य बोध ही इसका मूल चरित्र है । अरावली की गोद में बसा यह सुरम्य विश्वविद्यालय अपनी पढ़ाई और लड़ाई के लिए जाना जाता रहा है । उत्सव के इन्द्रधनुषी रंगों में रंगा जेएनयू ,आज अपनी शानदार उपलब्धियों पर क्यों न गर्व करे ।

सामाजिक,राजनीतिक और राष्ट्रीय दायित्वों के निर्वाह में जेएनयू सदैव अग्रणी रहा है।विगत कई वर्षों से विश्वविद्यालयी रैंकिंग (NIRF)में जेएनयू को नंबर एक की पोजीशन प्राप्त है ।'परिसर' पत्रिका का यह स्वर्ण जयंती विशेषांक जो आपके सामने है,यह अंक उन विद्वानों को समर्पित है, जिन्होंने अपनी मेहनत और लगन से इस विश्वविद्यालय को गढ़ा है । यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ,पहला यह कि 'धरोहर' के अंतर्गत हिन्दी आलोचना को नई धार देने वाले सुविख्यात आलोचक **प्रो नामवर सिंह,,** नए बिम्बों,प्रतीकों और मुहावरों से हिन्दी कविता को नई पहचान देने वाले ज्ञानपीठ पुरस्कृत **प्रो केदारनाथ सिंह** और अकहानी आंदोलन के प्रणेता **प्रो गंगा प्रसाद विमल जी** पर आधारित लेखों द्वारा उनकी स्मृतियों को सहेजने का प्रयास किया गया है । 'सृजन' के अंतर्गत हमारे समय के सबसे युवा और संवेदनशील कवि गौरव भारती की कवितायें प्रकाशित की जा रही हैं। गौरव भारती को अपने समय की गहरी और खरी पहचान है । इनकी कवितायें अकेलेपन को तोड़ती हैं । शोर नहीं मचाती,मित्र की तरह बात करती हैं । इनकी कविताएं मन को तृप्त करती हैं और मस्तिष्क को नई ऊष्मा से भर देती हैं ।

एक तरफ आज़ादी का अमृत महोत्सव दूसरी तरफ गाँधी जी के जन्म की 150 वीं वर्षगाँठ – कैसा अद्भुत संयोग है – बिना महात्मा गाँधी के न तो आज़ादी की लड़ाई को समझा जा सकता है और न महात्मा गाँधी के विचारों के बिना आज़ादी के सपनों में रंग भरा जा सकता है। 'स्वच्छ भारत अभियान' और 'मनरेगा' जैसी योजनाओं द्वारा देश गाँधी जी की स्मृतियों को नमन कर रहा है। पर्यावरण और आत्मनिर्भरता के लिए गाँधी जी के जो विचार हैं, उनका प्रभाव नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर देखा जा सकता है। यह शिक्षा नीति पर्यावरण, मातृभाषा, संस्कृति और भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति सजग और संवेदनशील बनाने वाली ऐतिहासिक शिक्षानीति है।

शिक्षा किसी भी देश के सतत विकास की कुंजी होती है। यह वह माध्यम है जिससे प्रतिभा व संसाधनों का सर्वोत्तम विकास व संवर्धन किया जा सकता है। फिलहाल एक न्याय पूर्ण समाज व राष्ट्र के निर्माण के लिए गुणवत्तापरक शिक्षा का सपना अभी अधूरा ही है। ऐसा क्यों हुआ? इस पर गंभीरता से विचार मंथन करना होगा। उन अवरोधक तत्वों की पड़ताल करनी होगी जिनके कारण शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित हुई तथा शिक्षा की पहुँच सब तक न हो सकी। शिक्षा के प्रति उदासीनता या अगंभीरता दिखाना राष्ट्र के भविष्य को अंधकारमय बनाना है। अज्ञानता, अशिक्षा ही दुनिया के समस्त दुखों का कारण है। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व की भलाई के लिए गुणवत्तापरक शिक्षा के विकास हेतु ठोस कदम उठाये जाएं, क्योंकि शिक्षा से ही सशक्त व उन्नतशील राष्ट्र की नींव मजबूत की जा सकती है। काले अंग्रेजों ने शिक्षा को सर्वसमावेशी होने से रोकने के लिए भाषा का अवरोध (बैरियर) खड़ा किया और शिक्षा व्यवस्था को कमजोर करके अपने वर्चस्व को मजबूत बनाने का षडयंत्र किया। उनके द्वारा अंग्रेज़ियत को महिमा मंडित किया गया और अंग्रेजी के पक्ष में एक विशेष माहौल बनाया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय मेधा को हीनताग्रस्त बनाने वाली अंग्रेज़ियत के षडयंत्र को तोड़ेगी और समता के धरातल पर बिना किसी भेदभाव या दबाव के आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करेगी।

भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, भाषा का सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व भी है। अपनी भाषा से कटने का मतलब अपनी पूरी ज्ञान परंपरा से-अपने पुरखों की विरासत से, उनके अनुभव, उनके हुनर और चिंतन से कट जाना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने मातृ भाषा को प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम बनाकर देश के भविष्य को उसके समाज, संस्कृति और ज्ञान परंपरा से जोड़ने का काम किया है। हमारे देश को हमारी प्राकृतिक और सांस्कृतिक संपदा ही 'अतुल्य-भारत' बनाती है। इसकी सांस्कृतिक संपदा का संरक्षण, संवर्धन और प्रसार करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। संस्कृति हमारी भाषाओं में समाहित है। भाषाएँ प्रासंगिक और जीवंत तभी बनी रहती हैं, जब तक वे प्रयोग में रहती हैं। यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को लुप्त प्राय घोषित कर रखा है। विगत 50 वर्षों में देश ने 220 भाषाओं को खो दिया है। अभी तक भाषायी राजनीति और भाषा विवादों द्वारा देश

की सामासिक संस्कृति को नष्ट करने की कोशिश की जाती रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति त्रिभाषा सूत्र द्वारा राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनायेगी और बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करेगी। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा भारतीय भाषाओं के संरक्षण पर बल देना, स्वागत योग्य पहल है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा के प्रति चिंतित लोगों के भरोसे को मजबूत बनाती है और उनकी उम्मीदों को नये पंख देती है। यह नीति सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली को पुनर्गठित करने की आवश्यकता पर बल देती है ताकि 2030 तक वैश्विक शिक्षा विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। पूरी दुनिया में ज्ञान के क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन हो रहा है। बिग डेटा, मशीनलर्निंग और आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस के दौर में शिक्षा के सामने सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरण, विज्ञान एवं तकनीक आदि से संबन्धित अनेक चुनौतियां खड़ी हो रही हैं। शिक्षा को तार्किक व रचनात्मक बनाकर ही समाधान की प्रवृत्ति का विकास किया जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत को सतत उंचाइयों की ओर ले जाने वाली नीति है। यह नीति देश की शिक्षा व्यवस्था को समान, समावेशी, सुग्राह्य, नवाचारी और रोजगारपरक बनाने पर बल देती है। वस्तुतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति आत्मनिर्भर, ज्ञानवान, नवोन्वेषी भारत बनाने की दिशा में उठाया गया एक सशक्त कदम है। शिक्षा व्यापार का नहीं, राष्ट्र निर्माण का विषय है। हमें पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत की शिक्षा व्यवस्था को नई दिशा और दृष्टि देने वाली नीति सिद्ध होगी।

साहित्य अनेक जटिल और चुनौतीपूर्ण स्थितियों में मनुष्य की भूमिका को रेखांकित करता है। ग्रहण और त्याग का विवेक विकसित करता है। अपने पाठकों को संवेदनशील और स्वप्नदर्शी बनाता है। रघुवीर सहाय के शब्दों में—“वह रचना जो पाठक और श्रोता के मन में पतन का विकल्प जाग्रत नहीं करती, वह न तो साहित्य की उपलब्धि होती है और न समाज की।” इस अंक को कई उभरते कवियों और कथाकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा सजाया है। ये रचनाएं अपने पाठकों को नए आस्वाद और ताजगी से भर देंगी— ऐसा विश्वास है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली ने अपने प्रांगण में भारतीय धर्म-दर्शन और संस्कृति के उन्नायक, स्वामी विवेकानन्द जी की भव्य मूर्ति स्थापित करके, अपनी 50वीं वर्ष गाँठ के उत्सव को सार्थक बनाया है। हमें विश्वास है कि हमारे विद्यार्थी स्वामी विवेकानंद जी के व्यक्तित्व से प्रेरित होकर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह बिना किसी भय और लोभ के ईमानदारी पूर्वक करेंगे। स्वामी जी की मूर्ति के पास जब भी वे जायेंगे उनके कानों में एक ही मंत्र गूँजेगा “उठो, जागो और अपने लक्ष्य को प्राप्त करो!”

डॉ. मलखान सिंह

हिन्दी सलाहकार, राजभाषा प्रकोष्ठ,

महिला दिवस पर विशेष

मुस्लिम स्त्रियों की आत्मकथाएं : चुप्पियाँ और दरारें

गरिमा श्रीवास्तव

*हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले
बहुत निकले मिरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले*

- “जो औरतें बेहयाई का काम करें, तुम्हारी बीबियों में से, सो तुम लोग उन औरतों पर चार आदमी अपने से गवाह कर लो। अगर वो गवाही दे दें, तो तुम उनको घरों के अंदर कैद रखो। यहाँ तक कि मौत उनका खात्मा न कर दे या अल्लाह उनके लिए कोई और रास्ता निकाल दे। (कुरान, आयत 15)
- “और जो औरतें जवानी की हद से उतर कर बैठ चुकी हों, अगर वे अपनी चादरें रख दें तो उन्हें कोई गुनाह नहीं। अलबत्ता उनका इरादा साज –सिंगार का नहीं होना चाहिए, लेकिन अगर फिर भी वे लज्जा –संकोच से चादरें डालती रहें, तो उनके हक में बेहतर है। अल्लाह तो सब कुछ सुनता और जानता है (24,सूरह नूर, आयत 60)
- अपने घरों में शराफत से रहो, बनाव –सिंगार जो अज्ञानता के जमाने में लोगों को दिखने के लिए होता था, उसे छोड़ दो, नमाज़ को कायम रखो। ज़कात अदा करती रहो और अल्लाह और उसके रसूल का हुक्म मानती रहो (33, सूरह अहजाब, आयत 33)

15वीं शताब्दी के आटोमन साम्राज्य की तुर्की कवयित्री मिहरी हातून की आत्माभिव्यञ्जक कविताओं को प्रारम्भिक दौर की आत्माभि व्यंजना के प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक काल आते आते मुस्लिम स्त्रियों ने आत्माभिव्यक्ति के लिए आत्मकथा –विधा को अपनाया जिनमें पर्दा प्रथा का दबाव, परनिर्भर होने की पीड़ा, प्रेम की अभिव्यक्ति के खतरे और पितृसत्ता और धर्म –कानून की जकड़ से निकलने की छटपटाहट प्रमुख है। अधिकांश स्त्रियाँ आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने की कवायद, शिक्षा प्राप्त करने के

मार्ग में आनेवाली कठिनाईयां, बहुपत्नीत्व प्रथा, यौन -शिक्षा का अभाव, यौनिकता की अभिव्यक्ति जैसे विषयों को कथ्यों के केंद्र में रखती हैं। परिवार के पुरुषों के विषय में बहुत खुल कर कुछ कहने से बचने को भी उनकी रचनात्मक रणनीति के तौर पर देखा जा सकता है। मुस्लिम स्त्रियाँ चाहे यूरोप में हों या एशिया में पर्दा -प्रथा पर ज़रूर बात करती हैं-हालाँकि यह बात उन सभी सामाजिक समूहों पर लागू होती है जिनमें पर्दा प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है। यह भी देखने की बात है कि उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की आत्मकथाओं में संसरशिप के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। कहीं तो अपने लिखे के न छप पाने का डर, कहीं लिखने की सुविधा छिन जाने का भय और कहीं पाठकों को अपने बारे में बताने का अवसर खो जाने का अंदेश इतना गहरा रहा है कि मध्यवर्ग से सम्बंधित स्त्रियाँ अपना अन्तरंग खोलने का रिस्क नहीं ले पायीं। जिन्होंने यह चुनौती उठाई उन्होंने भी यह स्वीकार किया कि उन्हें यह भय हमेशा से था कि हो सकता है कि पाठकों का एक बड़ा वर्ग उनके लिखे हुए को समाजविरोधी मानकर अस्वीकृत कर दे। भविष्य में भी उन्हें पाठक मिलते रहें और वे धर्मगुरुओं द्वारा निन्दित भी न हों इसके लिए ये ज़रूरी था कि वे जीवन के सामान्य कार्यव्यापारों चर्चा करें। निजी बातों और सामाजिक - पारिवारिक दायरों को तोड़कर, सामाजिक -रीतिरिवाजों के विरुद्ध जाने का साहस उठाना उनके लिए बहुत जोखिम भरा था इसलिए बहुत दूर तक वे आत्मकथाकार के रूप में अपनी भूमिका नहीं निभा पातीं। दूसरी ओर इस्लाम और समाजसुधारकों द्वारा तय स्त्री की आदर्श छवि जिसे मौलाना थानवी जैसे ने 'बहिश्ती जेवर' जैसी किताबें लिखकर लोकप्रिय कर दिया था, उस छवि को बनाये रखना भी इन लेखिकाओं के सामने एक बड़ी चुनौती रही और जहांस्त्रियों को शारीरिक तौर पर पर्दे के बाहर निकलने की छूट भी मिली तब भी उन्होंने अपने अन्तरंग को छुपाने के रास्ते ढूँढ ही लिए, आत्मकथात्मक प्रदर्शन के लिए उन्होंने नाटकीय भंगिमाएं अख्तियार कर लीं और इससे उनकी आवाजें परदे के भीतर ही रह गयीं और साथ ही उनकी यौनिकता भी। मुस्लिम स्त्रियों के आत्मकथ्यों पर विचार करते हुए हमें दक्षिण एशिया विशेषकर भारत के साम्प्रदायिक संघर्षोंकी पृष्ठभूमि को भी देखने -समझने की दृष्टि मिलती है। चारू गुप्ता ने यह दर्ज किया है कि हिन्दूत्व के प्रचारकों ने 'हिन्दू स्त्रियों को मुसलमान पुरुषों से अलग रखने आपसी दूरी बनाये रखने की मुहिम चलाई ताकि वे स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण कर सकें साथ ही अपनी सांप्रदायिक पहचान को भी पुख्ता कर सकें, उन्हें यह समझा दिया गया कि स्वस्थ, बलिष्ठ मुसलमान पुरुष उनके लिए खतरा हैं '(सेक्सुअलिटी, ओब्सेनिटी, कम्युनिटी : वीमेन, मुस्लिम्स एंड थे हिन्दू पब्लिक इन कोलोनियल इंडिया, चारू गुप्ता, परमानेंट ब्लैक 2000:268) दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान मुस्लिम समाजसुधारक भी अपने समुदाय की स्त्रियों को 'सुरक्षित' रखने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे। मुस्लिम स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण करने के लिए परदे को और ज़रूरी बताया जाने लगा, धर्मग्रंथों और हदीस का हवाला देकर परदे को मर्यादा से जोड़ा गया और हिन्दू स्त्रियों को गैर -पर्देदारी से रहने वाला बताया गया। मुस्लिम स्त्रियाँ, जो थोड़ा बहुत भी पढ़ -लिख गयी थीं उन्हें इस बात का अंदाज़ा था, हो गया था कि परदे की हद से बाहर एक विशाल और खुली दुनिया है, लेकिन परदे को तोड़ने और यौनिकता के मुद्दे पर खुलकर बोलने का साहस बहुत कम स्त्रियों के पास था। कई ऐसी स्त्रियाँ हैं जो आत्मकथ्य में निजी सवालों से बचकर निकाल गई हैं, जिससे पाठक को साफ समझ में आ जाता है कि

वह निजी और पारिवारिक संसरशिप के दबाव में है, उनके आत्मकथ्य का सम्यक विश्लेषण व्यावहारिक जीवन, उसके मन के कोने-अंतरे, दरारें, चोट और पीड़ाएं, नस्ल और रंगभेद, यौन अस्मिता, शोषण के विविध आयामी पक्ष, उसकी मनोसामाजिक, लैंगिक भेद और स्त्री अस्मिता के साथ, स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए अपनाई गई भाषा-भूमिमाएं, विविध मुद्राएं, प्रतिरोध के औजार, समर्पण और विवशता के कारणों की पड़ताल करना हम ज़रूरी समझते हैं। इन आत्मकथाओं पर हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत सोच सकते हैं -

- (क) इन आत्मकथाओं का पाठक वर्ग कौन-सा है।
- (ख) क्या आत्मकथाकार स्वयं को किसी विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधि मान कर लिख रही है।
- (ग) उसने किस सीमा तक कल्पना और नाटकीयता का सहारा लिया है।
- (घ) 'टेक्स्ट' में रचनाकार की जीवन यात्रा की अभिव्यक्ति की प्रकृति क्या है-उसका लेखन और अस्मिता से क्या संबंध है।
- (ङ) आत्मकथा में 'मैं' या 'तुम' को महत्व कितना और किस सीमा तक दिया गया है।
- (च) अतीत की 'मैं' और वर्तमान की 'मैं'-जो आत्मकथा में व्यक्त है-उन दोनों का अन्तः संबंध क्या है?
- (छ) आत्मकथ्य में क्या कुछ प्रयोग किए गए हैं? यदि 'हां' तो इन प्रयोगों की प्रकृति क्या है?
- (ज) रचना में संस्कृति, दर्शन और आत्म के सामाजिक संदर्भ की अभिव्यक्ति की प्रकृति क्या है?
- (झ) आत्मकथा लेखन का उद्देश्य क्या है ?
- (त) स्त्री यौनिकता जैसे मुद्दों पर वह कितनी और किस सीमा तक मुखर है ?
- (थ) वह संसरशिप से किस तरह टकराती है।

स्त्री वक्तव्यों के संदर्भ में यह माना जाता है कि सामाजिक अभ्यास अपनी पूरी तात्कालिकता और संपूर्णता के साथ एक उत्तेजक अनुभव में रूपांतरित हो जाते हैं, और स्त्री का अनुभव सिर्फ एक व्यक्ति का अनुभव नहीं रह जाता, वह सामाजिक संस्था के अनुभव में रूपांतरित होकर सार्वभौमिक हो जाता है।

स्त्री को बोलना अपने-आप में प्रतिरोध की संस्कृति का निर्माण करता है। डेनिस रिले का मानना है कि यद्यपि स्त्री अधिकारों की लड़ाई उसे राजनीति की ओर ले जाती है, लेकिन 'स्त्रीवाद' कभी भी अनुभवों की अपरिहार्यता समाप्त नहीं कर सकता। समाज में, जो हमें दिखाई देता है, वही सच नहीं होता। मसलन हम विभिन्न सामाजिक अस्मिताओं के संदर्भ में स्त्री अस्मिता को देखें। स्त्री अभिव्यक्ति 'अस्मिता' को पाने की ही कोशिश है, यह अस्मिता विभिन्न अस्मिताओं के पारम्परिक संघनन की प्रक्रिया से गुजरती है, उनकी जटिल संरचना के भीतर से अन्य अस्मिताओं को पीछे कर अपनी संपूर्ण ताकत के साथ उभरती है, किसी-किसी समाज और दौर में दबा भी दी जाती है, कहीं-कहीं उपेक्षा और प्रतिरोध झेलती है। इस प्रक्रिया में कोई अस्मिता अपना विशिष्ट स्वरूप ग्रहण करती है। इस नजरिये से देखने पर मुस्लिम आत्मकथाकारों में पर्याप्त वैविध्य दीखता है कहीं तो वे निजी जीवन को यौनिकता से ही जोड़कर देखती हैं और समूचा आत्मकथ्य उनकी यौनिकता के इर्द-गिर्द ही घूमता है, कुछपति या प्रेमी के साथ संबंधों की पुनर्व्याख्या करने को प्रगतिशीलता से

जोड़कर देखती हैं, जिसके उदाहरणस्वरूपतैयबजी वंश की स्त्रियों के आत्मकथ्य देखे जा सकते हैं। वहीं सुल्तान जहांबेगम जैसी भी लिखती रहीं जिन्होंने अन्तरंग संबंधों को परदे के भीतर ढके रहने में ही भलाई समझी, पर्दे और बुर्के के पक्ष में दलीलें दीं। कुछ ऐसी भी रहीं जिन्होंने अपने सामाजिक और राजनीतिक अनुभवों को साझा करने के लिए आत्मकथा विधा अपनाई। कई औरतें ऐसी भी रहीं जिन्होंने बतौर स्त्री झेला तो बहुत कुछ, पर खुलकर कभी अभिव्यक्त नहीं कर पायीं, उनपर तरह-तरह की सेंसरशिप के दबाव रहे। कुछ ने उर्दू, बांग्ला, और क्षेत्रीय भाषाओं में लिखा तो कुछ ने भाषिक माध्यम के रूप में अंग्रेजी को अपनाया क्योंकि उन्हें लगा कि देशी भाषाओं में अन्तरंग प्रसंग और यौनिकता के मुद्दों पर लिखना सरल नहीं होगा और साथ ही वे वैश्विक पाठक वर्ग से वंचित भी रह जाएंगी। उर्दू में पहली गद्य लेखिका के तौर पर बीबी अशरफ का जिक्र आता है, जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के मध्य में स्त्री शिक्षा के रास्ते में आने वाली कठिनाईयों का जिक्र 'हयात -ए अशरफ' में किया। (बाद के शोध से यह साबित हो गया कि वास्तव में यह किताब बीबी अशरफ ने नहीं तहज़ीब -ए निस्वान' में लगातार छपने वाली मुहम्मदी बेगम ने लिखी थी। यह रिसाला 1898 से 1949 के बीच छपता था जिसके संपादक सैयद मुमताज़ अली थे। सी.एम. नईम ने हयात ए अशरफ को 1900-1910 के बीच प्रकाशित माना) बीबी अशरफ के आत्मकथ्य 'हयात -ए अशरफ' से स्पष्ट है कि लिखना-पढ़ना अभिजात्य स्त्रियों के लिए अपेक्षाकृत सहज था, नीचे तबकों और निर्धन स्त्रियों के लिए बहुत कठिन। बीबी अशरफ एक शरीफ घराने से सम्बद्ध थीं और विधवा होने के बाद आजीविका निर्वाह के लिए उन्होंने शिक्षण को पेशा बनाया।

**बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
जैसी अब है तिरी महफ़िल कभी ऐसी तो न थी**

भारत में, सन 1920 के आसपास अभिजात्य घरानों की मुसलमान स्त्रियाँ अंग्रेजी पढ़ने की ओर उन्मुख हुईं (आएशा जलाल, द कनवेनिएन्स ऑफ सब सर्विएस : वुमेन एंड द स्टेट ऑफ पाकिस्तान - 'वुमेन, इस्लाम एंड स्टेट' में संकलित, पृष्ठ 77) शिक्षा के इस नए दौर ने पढ़ी-लिखी स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग बनाया जिसमें मुहम्मदी बेगम, नज़र सज्जाद हैदर, अब्बासी बेगम जैसी स्त्रियों को देखा जा सकता है जिन्होंने रिसालों में लिखना और छपना शुरू कर दिया था। इस्लाम में जीवनी और आत्मकथा लेखन की एक लम्बी परंपरा की परिधि पर जिस संस्मरण को देखा जा सकता है वह है आबिदा सुल्तान जो भोपाल की राजकुमारी थी। दाम्पत्य और सेक्सुअल थीम पर इतनी सच्ची अभिव्यक्ति अपने आप में विरल है। जहाँ आत्मविश्लेषण और निज की अभिव्यक्ति आत्मकथाओं का अनिवार्य तत्व है वहाँ इस्लाम धर्म को मानने वाले विशेषकर स्त्रियाँ निज की अभिव्यक्ति के लिए जिन चुनौतियों को झेलती हैं वे मानीखेज़ हैं। आबिदा सुल्तान ने 'मेमोआयर्स ऑफ़ अ रिबेल प्रिंसेस' में अपने दाम्पत्य जीवन के बारे में खुलकर लिखा।

विभाजन की घटना ने स्त्री-पुरुष दोनों को प्रभावित किया, देश-विभाजन, पुनर्स्थापन, धर्म और सांप्रदायिकता के आधार पर नागरिकों के विभाजन के सबके अपने पाठ थे पाकिस्तान का बनना, भारत के

विभाजन की घटना ने राजनैतिक परिदृश्य पर जो परिवर्तन उपस्थित किए उनका भारत में रह रही और पाकिस्तान जाकर बस गयी मुस्लिम स्त्रियों पर गहरा प्रभाव पड़ा, इस दौर में गद्य लेखन विशेषकर आत्मकथा लेखन में अप्रत्याशित तेज़ी देखी गयी। सबके पास अपनी-अपनी चुनौतियाँ और संघर्ष थे। इसके उदाहरण के तौर पर अदा जाफ़री की आत्मकथा “जो रही सो बेकरारी रही” को देखा जाना चाहिए। बदरुद्दीन तैय्यबजी के परिवार से सम्बद्ध रेहाना तैय्यबजी (1901-1975) ने आत्मकथा ‘द हार्ट ऑफ़ अ गोपी’ लिखी थी, जिसमें महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन का अनुकरण करने और अपने ऊपर गाँधी के संश्लिष्ट प्रभाव का अंकन किया है।

नवाब सिकंदर बेगम(1818-68) के यात्रा वृत्तान्त ‘ए पिलग्रिमेज टू मक्का’(1870) में कुछ आत्मकथात्मक प्रसंग मिलते हैं पर उनमें अंतरंगता का नितांत अभाव है जो लिखा तो उर्दू में गया पर प्रकाशित हुआ सिर्फ अंग्रेजी में, वह भी बेगम की मृत्यु के बाद। ये उन रचनाकारों में से थीं जिन्होंने खुलकर आत्माभिव्यक्ति का साहस नहीं दिखाया, बल्कि उपन्यास और कहानी के माध्यम से अपनी बात कही। उन्होंने प्रेम, विवाहपूर्व सेक्स, समलैंगिकता, स्त्री की यौनेच्छाओं जैसे मुद्दों पर बात की। इनके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ स्त्री लैंगिकता, यौनेच्छा जैसे मुद्दों पर खुलकर लिख पायीं उनमें सलमा अहमद, किश्वर नाहीद को ज़रूर देखा जाना चाहिए। ये स्त्रियाँ सिर्फ जेंडर की बात नहीं करतीं बल्कि धर्म-विशेषकर इस्लाम किस तरह स्त्री को ‘मानुष’ होने से रोकता है इसपर टिप्पणी करती हैं। इन रचनाकारों में पर्दा-प्रथा का विरोध, बहुविवाह के साथ-साथ धर्म कि जड़ में आने वाले ऐसे बहुत सारे रिवाज जो स्त्री विरोधी हैं उनकी मुखर आलोचना मिलती है।

सलमा अहमद जो पाकिस्तान की जानी मानी व्यवसायी थीं उन्होंने अपनी दर्दनाक ज़िन्दगी के बारे में लिखा। (कटिंग फ्री:एन ऑटोबायोग्राफी, सलमा अहमद, समा, कराची, 2002) जिसकी विशेषता है वैवाहिक जीवन के विषय में खुलकर बात करना। वे अपने वैवाहिक जीवन की प्रथम रात्रि के बारे में लिखती हैं –‘सुहाग कक्ष में मेरी प्रतीक्षा हो रही थी। अब दूसरा नाटक, दूसरा दू:स्वप्न शुरू होने को था-यह मैं नहीं थी जिसे वह छू रहा था, यह मैं नहीं थी जिसके वह कपड़े उतार रहा था, ये सब इतना अवास्तविक, इतना पीड़ादायक था, इतना झटका लगाने वाला था कि रजसाव से चादर भीग गयी। तट के लग्ज़री होटल में ये एक डरावनी रात थी। रिवाज़ के अनुसार सुबह मेरे रिश्तेदार मुझे घर ले जाने के लिए आये। मैं क्षुब्ध थी और स्वयं को अपवित्र और चोटिल महसूस कर रही थी”।

सईदा बानो अहम की आत्मकथा ‘डगर से हटकर’(1990) में प्रकाशित हुई जीवन के उत्तरार्ध में सईदा ने यह आत्मकथा अपने पुत्रों की इच्छा के विरुद्ध छपवाई, जिसे बाद में उर्दू अकादमी, दिल्ली से पुरस्कार भी मिला (सकीना हसन –सईदा की भतीजी से उसका साक्षात्कार 13 फरवरी 2006 को) सईदा हसन आल इंडिया रेडियो की पहली स्त्री उद्घोषक थीं जो सन 47 में अपने छोटे बेटे को लेकर लखनऊ से दिल्ली नौकरी करने आ गयीं। (इंटीमैसी अर्गेंट कन्वेंशन :मैरिज एंड रोमांस इन सईदा बानो’ज़ ‘डगर से हटकर’ पेपर बाई आसिया आलम, 40एथ एनुअल कांफ्रेंस आफ़ साउथ एशिया, यूनिवर्सिटी ऑफ़ विस्कांसिन, मेडिसन, 21-23 अक्टूबर

2011।)सईदा ने अपने दाम्पत्य जीवन के विवादों और विवाह के टूटने के चित्रण खुलकर किये,यही कारण था कि लम्बा अरसा बीत जाने के बाद भी उनके बेटों ने आत्मकथा के छपने का विरोध किया।' अतीत के प्रसंगों का जिक्र करते हुए सईदा लिखती है –“आज जब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो वह पूरा प्रसंग बचकाना लगता है, लेकिन ऐसा वक्त भी था कि उसकी एक झलक, कुछ लम्हे के लिए मिलना ज़िन्दगी और मौत का सवाल। रात के राहियों की तरह बचपने का यह खेल हमने 60-65 और यहाँ तक कि 70 बरस की उम्र तक भी खेला। जिस काम की मनाही हो उसे करने में जोखिम का अद्भुत आनंद छिपा हुआ होता है” (डगर से हटकर:226) सईदा द्वारा अपने प्रेम सम्बन्ध की स्पष्ट स्वीकृति अपने आप में विशिष्ट है, जो उसकी आत्मकथा को प्रामाणिक बनाती है।

‘मेरा जीवन’ शीर्षक से डॉ. जाकिरा गौस (1911-2003) ने आत्मकथा लिखी। वे आत्मकथा में अपने बचपन के रचानात्मक दिनों को याद करती हैं। वे अपने एक बुजुर्ग द्वारा निकाली जाने वाली पत्रिका ‘बज़म ए अदब’ से प्रेरणा लेकर खानदान के भीतर ही हस्तलिखित पत्रिका ‘मुशीर उन निस्वान’ निकालने लगीं। इसलिए रीता फेल्स्की को लगता है कि ‘स्त्रियों की आत्मकथाओं में इच्छा और सत्य का तनाव, दिखाई देता है। उनका ईमानदार आत्म निरंतर सत्य के पक्ष में बोलने के लिए उत्सुक रहता है जबकि बाहरी दबाव इस अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाते हैं। आत्मकथाओं को कौन-सा पाठक पढ़ेगा, पाठकीय वर्ग और रुचि भी रचना को प्रभावित करती है। स्वान्तः सुखाय का दावा करने वाले रचनाकार के अवचेतन में भी ज्यादा से ज्यादा पाठकों तक स्वयं को प्रसारित करने की लालसा सुप्त रहती है।

नवाब फैजुन्निसा बेगम (1834-1903) ने रूपजलाल (1876) नामक उपन्यास अपने असफल वैवाहिक जीवन की पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए लिखा था। किसी भी बंगाली मुस्लिम स्त्री द्वारा लिखे इस पहले उपन्यास की भूमिका आत्मकथात्मक है, जिसमें संक्षेप में मुस्लिम स्त्री पर समाज के दबावों और उसकी यौनिकता पर मर्दवादी पहरों की पहचान की गयी है। फैजुन्निसा स्त्री यौनिकता, पर्दा, शिक्षा और बहुविवाह के प्रश्नों पर विचार करती दिखती हैं।

वहशत हवस की चाट गई ख़ाक-ए-ज़िस्म कोबे-दर घरों शक़ल का साया कहाँ से आए

हैदराबाद की बिल्कीस जहाँ खान (1930) और रामपुर की राजकुमारी मेहरुन्निसा (1933) ने अपने अंतरंग जीवन के टुकड़े संस्मरणों में लिखे, इसके अलावा हमीदा हुसैन राजपुरी ने “हमसफ़र” (1992) शीर्षक से आत्मकथ्य लिखा, जिसका अनुवाद उर्दू से अंग्रेजी में ‘माय फेलो ट्रेवेलर’ (2006) शीर्षक से अनुवाद प्रकाशित हुआ। (हमसफ़र, हमीदा अख़्तर हुसैन, दान्याल, कराची, 1992) जोहरा सहगल(1912) की आत्मकथा ‘करीब से’ में जोहरा ने रंगमंच, इप्टा और फ़िल्मी जीवन से जुड़े अनुभवों पर खुलकर लिखा साथ ही कामेश्वर सहगल से अंतर्जातीय विवाह और प्रेम प्रसंग पर लिखते हुए किसी सेंसरशिप की परवाह नहीं की। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि जोहरा को विदेशों का अनुभव था और वह रामपुर के राजसी परिवार से जुड़ी हुई थी। इप्टा से ही

सम्बद्ध शौकत कैफ़ी (1928) ने उर्दू में 'यादों की रहगुज़र' (स्टार पब्लिकेशन, दिल्ली 2004) लिखी। इस पुस्तक में कैफ़ी आजमी के साथ अपने प्रेम और विवाह-प्रसंग को अत्यंत दिलचस्प अंदाज़ में पत्रों में ज़ाहिर किया – "कैफ़ी ! मैं तुम्हें बहुत चाहती हूँ, इतना जिसकी कोई सीमा नहीं है, संसार की कोई भी ताकत मुझे तुम्हारे पास आने से नहीं रोक सकती, कोई पर्वत, पहाड़, समुद्र, नदी, मनुष्य, कोई आकाश, कोई ईश्वर, कोई देवदूत मुझे रोक नहीं सकता, और केवल खुदा ही जानता है इस बारे में।" उधर कैफ़ी भी अपने खून से लिखे प्रेम पत्रों में इसी भाव की व्यंजना करते दीखते हैं' (कैफ़ी एंड आई -अ मेमोआयर, शौकत कैफ़ी, अनुवाद नसरीन रहमान, जुबान, दिल्ली, 2010)

बुलबुल को बागबाँ से न सैययाद से गिला
किस्मत में कैद लिखी थी फ़स्ल-ए-बहार में

'जीबोन स्मृति' शीर्षक से बंगाल की राजनीतिक कार्यकर्ता हमीदा रहमान (1920) ने आत्मकथा लिखी। आत्मकथा के केंद्र में पलाश नाम के व्यक्ति से प्रेम और विछोह है। राजनीतिक जीवन जीने वाली बेगम कुदसिया एजाज़ रसूल (1908) की आत्मकथा 'फ़ॉर्म पर्दा टू पार्लियामेंट' ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के अनुभव उनकी किताब में दर्ज हैं। एक मुस्लिम लड़की जिसका लालन-पालन एक अभिजात्य और राजनीतिक रूप से सक्रिय परिवार में हुआ, उसने कैसे परदे से पाकिस्तान मूवमेंट का अंग बनकर अपनी अलग पहचान बनायीं। बेगम रसूल की शादी अवध के जागीरदार नवाब एजाज़ रसूल से हुई जो मुस्लिम लीग के सदस्य थे। कुदसिया ने 1937 से 1940 तक काउन्सिल के उपप्रधान के तौर पर काम किया। वह पहली भारतीय मुस्लिम स्त्री थीं जो इतने ऊँचे पद तक पहुँचने में कामयाब हुईं। स्वतंत्रता के बाद वे इंडियन नेशनल कांग्रेस की सदस्य बनीं। ज़मींदारी प्रथा का पुरजोर विरोध करने और रैयत के पक्ष में आवाज़ उठाने के कार्यों ने उन्हें प्रसिद्धि दी और 1952 में राज्यसभा की सदस्य बन गयीं। आत्मकथा इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में नेतृत्वकारी क्षमता वाली स्त्रियों के अनुभव और क्षमता का उपयोग का प्रतिशत बहुत कम है। आज भी पूरे विश्व की स्त्रियों का लगभग 2 प्रतिशत ही संसद तक पहुँचने में सक्षम हो पाया है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था, सत्ता के संश्लिष्ट समीकरणों में स्त्रियाँ नीति-निर्धारक पदों पर बहुत कम पहुँच पाती हैं। बेगम अनीस किदवई (1906-1982) ने गुब्बार-ए-कारवां लिखी, जो अधूरी ही मकतब -ए-जामिया, दिल्ली से 1983 में मूल उर्दू में छपी। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी की रहने वाली अनीस ने 'आज़ादी की छाँव में' (1949) शीर्षक संस्मरण भी लिखा जिसका प्रकाशन सन 1974 में हुआ। इनमें बेगम अनीस किदवई भारत-पाकिस्तान विभाजन के दौरान हुए दंगों और शरणार्थियों की समस्या का आँखों देखा ब्यौरा प्रस्तुत करती हैं।

अनीस के संस्मरण 'आज़ादी की छाँव में' को उनकी आत्मकथा की अगली कड़ी के रूप में देखा जाना चाहिए। 'आज़ादी की छाँव में' कुल 23 अध्यायों में विभक्त है जिसमें सन 1947 से 1948 के दौर के भारत, विशेषकर विभाजन के बाद के भारत के राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य पर प्रामाणिक और बेबाक टिप्पणियाँ हैं। आज़ादी की छाँव में -राष्ट्रवाद के स्त्री पक्ष को बताने वाली पहली किताब है जो देश विभाजन के दौरान और

बाद के एक साल में भारत और पाकिस्तान की अवाम में पसरी अव्यवस्था, भ्रष्टाचार और धीरे धीरे इस्लामी राष्ट्र में बदलते जा रहे पाकिस्तान और अफवाहों से घिरे हिंदुस्तान के शरणार्थी शिविरों का लेखा-जोखा और विभाजन के व्यावहारिक पक्ष का यथार्थ चित्र उपस्थित करती है।

**जो गुज़ारी न जा सकी हमसे
हमने वो ज़िंदगी गुज़ारी है**

शास्त्रीय गायन और ग़ज़ल से जुड़ी कलाकार, भारत और पाकिस्तान में अपनी गायकी से शोहरत हासिल करनेवाली मल्लिका पुखराज (1912-2004) ने उर्दू में आत्मकथा लिखी, जिसका अंग्रेजी अनुवाद सलीम किदवई ने 'सांग संग दू' (गीत, जो सच्चा गाया गया) शीर्षक से किया। तलाकशुदा स्त्रियों के बारे में मल्लिका लिखती हैं - "हमारे समय में तलाकशुदा स्त्री का जीवन नरकतुल्य था। तलाकशुदा स्त्री की बड़ी बेईज्जती होती थी। आज की तरह तलाक का मसला छोटा-मोटा नहीं माना जाता था। उन दिनों तलाकशुदा स्त्री को बिलकुल अलग-थलग कर दिया जाता था। जिस तरह लोग परिजनों की मृत्यु का शोक जताने जाते हैं वैसे ही तलाकशुदा औरत के भाई, माता-पिता के घर रिश्तेदार और मित्र पहुँचते थे तलाक पर अफ़सोस जताने। इसके बरक्स रंगमंच और फ़िल्म से जुड़ी 1912 में ही जन्मी जोहरा सहगल की आत्मकथा 'क़रीब से' (2013) जिसका हिंदी अनुवाद दीपा पाठक ने किया। जोहरा सहगल की यह पुस्तक रंगमंच और फ़िल्मी परदे पर लगभग सौ वर्षों की उनकी जीवन-यात्रा का ब्यौरा है। आत्मकथा में जोहरा सहगल अपने बचपन से लेकर अब तक के जीवन, करियर, विदेश यात्राओं और थियेटर से अपने जुड़ाव की तस्वीर बहुत ही दिलचस्प अंदाज़ में प्रस्तुत करती दिखती हैं। आत्मकथा की शुरुआत में ही वे लिखती हैं - "मैं कभी सोचती हूँ ज़िन्दगी एक बहुत बड़ा मजाक है। एक मैं हूँ जिसने रोज़ अपने दांत ब्रश किये, रोज़ नहाया, बिलकुल धर्म की तरह बालों में तेल डालने, कंघी करने और उन्हें धोने का धर्म निभाया, साँसों की और बदन की कसरत पूरे नियम से की, सच को जैसा देखा वैसा ही बोला। खुद से भी। लेकिन फिर भी, क्या है ज़िन्दगी? दिन-ब-दिन कमजोर होता शरीर, पैरों की लड़खड़ाहट की वजह से मैं लगभग रुक सी गयी हूँ, दांत एक-एक करके साथ छोड़ रहे हैं, आँखों की रौशनी इतनी धीमी पड़ती जा रही है कि अक्सर लिखते वक़्त मैं पंक्तियाँ और शब्द देख नहीं पाती। अगर मैं धार्मिक होती तो यही समय था जब मैं ईश्वर पर विश्वास करना शुरू करती, लेकिन मैं नहीं हूँ और इस बारे में बेईमान नहीं हो सकती। मैं मानती हूँ कि कहीं कोई ऊर्जा है, कोई कानून है, कोई एक ऐसा न बदलने वाला नियम जिसमें लाल और पीले रंग को मिलाने पर नारंगी रंग बनता है। जोहरा सहगल की आत्मकथा का वैशिष्ट्य है - आत्मप्रशंसा और श्लाघा से बचते हुए बहुत ही तटस्थ भाव से अपने साथ घटी घटनाओं के ब्यौरे देना, साथ ही साथ अपने भीतर के जन्मजात अभिजात्य भाव को स्वयं चुनौती देना। परन्तु अंततः वे अपने बीते जीवन से संतुष्ट हैं तभी तो लिखती हैं - "अपनी सोच और अपने तजुर्बों के हिसाब से सिखाने और निर्देशित करने की पूरी ज़िम्मेदारी लेने के लिहाज़ से मैं बहुत आलसी थी। पहले मैं उदयशंकर और उसके बाद पृथ्वीराज कपूर जैसे कलाकारों के साथ जुड़ी और उनकी मशहूरी की रौशनी का ही लुत्फ़ लेती रही क्योंकि उनके साथ काम करते हुए सारे नाटक, सारे दौरों की तैयारियाँ कोई और मेरे लिए करता था, मुझे उसके लिए न कोई परेशानी उठानी पड़ती थी और न कोई ज़िम्मेदारी मुझपर थी। यह सच है कि मैंने शारीरिक और मानसिक तौर

पर बहुत कड़ी मेहनत की, लेकिन मैं अपने लिए और भी बड़ा नाम कमा सकती थी अगर मैंने अपना कोई थियेटर ग्रुप या स्कूल शुरू किया होता। मुझे लगता है, यह करने के लिए मैं बहुत आलसी थी। हालाँकि मुझे लगता है कि मुझे कुछ कम मिला, लेकिन मैंने अपने लिए थोड़ी सी पहचान बनाई, बहुत सारा तजुर्बा कमाया और कड़ी मेहनत के बावजूद अपने काम से बेपनाह खुशियाँ पायीं। और क्या चाहिए, मैं इसे ऐसा ही चाहती थी।” (करीब से, जोहरा सहगल, अनुवाद दीपा पाठक, राजकमल प्रकाशन 2013:241)

बेगम खुशीद मिर्जा, (1918-1989) जो फिल्मों में रेणुका देवी के नाम से मशहूर हुई 'अ वुमन ऑफ़ सक्सटांस' में उसने अपने संस्मरणों में अन्तरंग जीवन के पहलुओं को लिखा। जिन्हें पढ़ कर मुस्लिम परिवारों के आंतरिक तापमान का अंदाजा हो जाता है। आत्मकथा में सन 1857 से 1983 तक की घटनाओं का ज़िक्र है जिनमें भारतीय मुस्लिम समाज, निजी पारिवारिक स्थितियाँ, नवजागरण और समाज-सुधार के मुद्दे, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का विभाजन, सिनेमा में बेगम खुशीद मिर्जा का जाना, उनकी लोकप्रियता, सामाजिक संसरशिप के दबाव जैसी चर्चाएँ प्रमुख हैं। खुशीद मिर्जा ने देश-विभाजन के बाद पाकिस्तान जाने का निर्णय किया, लेकिन आत्मकथा में वे स्वयं को पीछे छूट गए भारतीय सदस्य के रूप में देखती हैं। बदलते भारत में मुस्लिम औरतों की आज़ादी के मुद्दे पर खुशीद मिर्जा बेबाक टिप्पणी करती हैं उनका मानना है कि राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर चैतन्यभारत में उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक मेल-मिलाप के मौके तो मिल रहे थे लेकिन यह प्रक्रिया बहुत धीमी थी। बौद्धिक रूप से सचेतन परिवारों की संख्या कम थी जो शेख अब्दुल्ला की तरह अपनी बेटियों को विदेश में तालीम हासिल करने भेजते। रशीदजहाँ लेडी हार्डिंग कालेज, दिल्ली, मंज़ली बहन खातूनजहाँ इंग्लैण्ड की लीड यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा के लिए गयी, छोटी आपा ने इज़ाबेला थाबर्न कॉलेज लखनऊ से अंग्रेजी में एम.ए. किया। इस तरह के विवरण देते हुए खुशीद मिर्जा की टिप्पणी है कि-“फिर भी इन औरतों को पुरुषों के साथ घूमने-फिरने या एक साथ संगीत सुनने की स्वतंत्रता नहीं थी।

'कागज़ी है पैरहन' इस्मत चुगताई की आत्मकथा है जिसका देवनागरी में लिप्यंतरण इफ्तिखार अंजुम ने किया। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में परदेदार कुलीन घराने की मुस्लिम स्त्री के जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज होने के कारण इस्मत चुगताई को मरणोपरांत इस पुस्तक ने बहुत लोकप्रियता दिलवाई। एम. असाउद्दीन का कहना है कि इस्मत समाज में व्याप्त लैंगिक विभेद और समाज की सामंती-पितृसत्ताक संरचना से भली-भाँति परिचित थीं, जिस समाज में वे रहती थीं उसके दोहरे चरित्र का पर्दाफाश और विरोध करने के लिए वे जो कर सकती थीं किया। 'कागज़ी है पैरहन' कुल 14 अध्यायों में विभक्त है जिसे उर्दू पत्रिका 'आजकल' में 1970 के दौरान धारावाहिक रूप में पाठकों के सामने आने का मौका मिला। 'आजकल' ही वह पत्रिका थी जिसमें अनीस किदवई का आत्मकथ्य 'गुब्बार ए-कारवां' छपा था। इस पत्रिका ने कई लेखकों के आत्मकथ्य प्रकाशित किये। 'कागज़ी है पैरहन' उन आत्मकथ्यों में से है जो ये बताते हैं कि रचना का आत्म बहुस्तरीय होता है और स्मृतियाँ ठीक उस ढंग से नहीं आतीं जैसा जीवन का सिलसिला होता है। बतौर रचनाकार, बतौर स्त्री और बतौर मुस्लिम होने के नाते आत्मकथा लेखन के अनंतर जो चुनौतियाँ इस्मत के

सामने आती हैं, उनके बारे में वे बताती हैं। लेखकीय इयता और आत्म के पुनर्प्रस्तुतिकरण के उत्कृष्ट उदाहरण के नज़रिए से इस आत्मकथा को देखा जाना चाहिए।

इस्मत की आत्मकथा की विशेषता है साफ़गोई और बिना लाग-लपेट के अपनी बात को कहने की कोशिश, वे अपने बचपन के दिनों से लेकर भाइयों के साथ पढ़ाई-लिखाई के अनुभवों के साथ यौनिकता के मुद्दों पर बड़े ही बेबाक अंदाज़ में बात करती हैं। वे धर्म, राजनीति, परदे के मुद्दों पर पिता, भाइयों, पुरुष रिश्तेदारों से बात करती हैं ताकि जान सकें कि आधी आबादी, जो बाहर की दुनिया से अच्छी तरह वाकिफ़ है वह अंतर-महल की समस्याओं पर क्या सोच रखती है।” लड़कों के लिए यह आम रवैया मुनासिब समझा जाता है, मैं लड़की थी। अम्मा, खालायें, फूफियाँ, चचियाँ हैबतज़दा थीं। औरतज़ात को ये मुंहज़ोरियां जेब नहीं देतीं। ससुराल में कैसे गुज़र होगी ? समाज ने औरत का एक ठिकाना मुकर्रर कर दिया है, उससे बाहर क़दम रखा तो पैर छांट दिए जायेंगे। ज्यादा तालीम भी बलाए जान होती है। हमारे यहाँ कौलो -फ़ेल पर पाबन्दी नहीं थी। मगर यह शर्त सिर्फ़ मर्दों तक थी। मुझे इन हरकतों पर डांट खानी पड़ती थी। मुस्लिम समाज और औरतों की इच्छाओं, कामनाओं को अनुशासन में रखती चली आती व्यवस्थाओं का पर्दाफाश, बड़े ही सहज ढंग से यह पुस्तक करती चलती है। परदे और मुस्लिम स्त्री होने के कारण लादी गयी पाबंदियों की फेहरिस्त लम्बी है, इसलिए उनसे टक्कर लेकर अपनी इच्छा से अपने जीवन को जीने की छूट लेने की चुनौतियाँ और संघर्ष भी बड़े रहे होंगे, यह आत्मकथा औरतों की चुप्पी और उनके कथन की दरारों को चौड़ा करके दिखाती है, जिनमें विभिन्न तबकों से आई हुई औरतें हैं, जिनकी आवाज़ दबते-दबते गूंगी हो गयी है। पति की कृपा पर उनकी यौनेच्छायें निर्भर हैं, अभिकर्ता के रूप में वे अपनी इस स्थिति को अस्वीकार करती हैं। वे हर तबके में दबी - कुचली और शोषित हैं लेकिन दिशाहारा ।

उजाला दे चराग़-ए-रहगुज़र आसाँ नहीं होता

हमेशा हो सितारा हम-सफ़र आसाँ नहीं होता (अदा ज़ाफरी)

इस्मत चुगताई की आत्मकथा के बरक्स अदा ज़ाफरी की आत्मकथा को रखकर देखना दिलचस्प है। देश विभाजन के बाद पाकिस्तान जाकर बसने वाली अदाज़ाफरी ने गजलकार के तौर पर नाम कमाया लेकिन विवाह के पहले जब वे बदायूं में रहती थीं उन्हें लोगों की आलोचना का शिकार होना पड़ा क्योंकि मुस्लिम खानदान स्त्री को पर्दे से बाहर आने नहीं देना चाहता था “**जो रही वो बेखबरी रही** (1995) शीर्षक आत्मकथ्य में 1924 में उत्तर प्रदेश के बदायूं में पैदा हुई अदा ज़ाफरी जेंडर और स्त्री यौनिकता के प्रश्न पर अपनी समकालीनों से भिन्न हैं। इनसे पहले अधिकतर मुस्लिम स्त्रियाँ जिन्होंने आत्मकथाएं लिखीं वे शिक्षित, अभिजात्य अथवा राजनीतिक सक्रियता रखने वाले परिवारों से सम्बद्ध थीं। उनका लिखना उन्नीसवीं सदी के स्त्री सुधारों और स्त्री शिक्षा के कार्यक्रमों का ही एक विस्तार था, या यों कहें कि आत्मकथा लेखन के माध्यम से वे राष्ट्रीय आख्यान का अंग बन रही थीं और मुस्लिम आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक भूमिका अदा करने का प्रयास कर रही थीं, इसलिए उनके आत्मकथानों में विषय वैविध्य के साथ साथ एक विशिष्टता बोध भी दिखाई देता है, इनमें से कुछ यौनिकता के प्रश्नों पर अतिरिक्त मुखर हैं मसलन इस्मत

चुगताई। तो कुछ के लिए प्रेम, पति, प्रेमी और यौनेच्छा पर एक पंक्ति भी लिख पाना मुमकिन नहीं हो पाया। कुछ पर खुद की सेंसरशिप हावी है कुछ पर इस्लाम की और कुछ के साथ परिवार, समाज, पाठक का भय चलता है जिसे उनके टेक्स्ट की दरारों से ही समझा जा सकता है। इसके लिए अदा ज़ाफरी के आत्मकथ्य को देखा जाना चाहिए जो एक साधारण परिवार से सम्बद्ध थी जिनका बचपन से एक ही सपना था कि वे अपनी खुली आँखों से दुनिया देखें। पर्दा और लैंगिक विभेदवादी परिवार और समाज में उन्हें ऐसी कोई छूट मिलनी संभव नहीं थी, वे अपनी कथा में लिखती हैं कि स्वतंत्र होने के लिए उन्होंने एक उच्च पदस्थ अधिकारी से विवाह किया, विवाह के बाद ही संभव हो पाया कि वे पति के साथ देश –दुनिया घूमें और नए नए लोगों से मिलें –जुलें। लेकिन बतौर कवयित्री एक लंबा कैरियर गुजरने के बाद उम्र के इकहत्तरवें साल मेही वे आत्मकथा लिखने का साहस जुटा पाईं।

अदा ज़ाफरी के नियंत्रित आत्मकथ्य से ठीक उलट है **आईने के सामने** अतिया दाऊद का आत्मकथ्य , जिसका देवनागरी लिप्यंतरण इजलाल मजीद ने किया। पाकिस्तान के जिले नौशेरा में जन्मी अतिया –दाऊद सिंधी की प्रमुखकवयित्री हैं जिसमें एक बहुत ही साधारण परिवार के अतीत का प्रत्याख्यान है जो बहुत कम उम्र में अपने माँ –बाप को खो देती है, परंपरागत और रूढ़ियों में डूबते –उतराते समाज के कई अक्स अतिया के आत्मकथ्य में देखे जा सकते हैं। अतिया दाऊद का आत्मकथ्य बहुत कुछ इस्मत चुगताई की आत्मकथा का विस्तार लगता है, अतिया बचपने के खेल के बारे में जब लिखती हैं तो अनायास ही पितृसत्ता के छिपे हुए तेवरों को सामने लाने लगती हैं –“जिस दिन हम घर –घर खेलते उस दिन मेरा ज़रूर लफड़ा हो जाता था। बच्चे इस खेल को ऐसे ही खेलना चाहते थे जिस तरह हकीकत में हमारी ज़िंदगी में होता था और मैं उसमें तबदीली लाने की कोशिश करती थी। उस खेल के मुताबिक घर का एक बड़ा अब्बा होता था, वो सबको डांटता था। घर के मर्द बाहर से जाकर सौदा, सब्जी वगैरह ले आते थे। मगर यहाँ आकर मैं तकरार करती थी कि बाज़ार से सौदा लेने में जाऊँगी। बच्चे कहते थे ये नामुमकिन है। तुम अदी बनकर घर में खाना पकाओगी, झाड़ू दोगी और ये सारे काम करोगी।”

**हम गुनाहगार औरतें हैं, जो अहले जुब्बा की तमकनत से
न रौब खाएँ न जान बेचें, न सर झुकाएँ, न हाथ जोड़ें**

‘बुरी औरत की कथा’ शीर्षक से उर्दू की क्रांतिकारी लेखिका किश्वर नाहीद ने आत्मकथ्य लिखा, जिसका अँग्रेजी तर्जुमा दुर्दाना सुमरू ने ‘बैड वुमेन्स’ स्टोरी’ शीर्षक से सन 2010 में किया। किश्वर नाहीद उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर में पैदा हुईं और सन 47 के बाद पाकिस्तान चली गईं थीं। देश विभाजन और राजनीतिक हलचलों के बीच उन्होंने समाज की प्रारम्भिक छवियाँ ग्रहण कीं। नब्बे के दशक में नाहीद की आत्मकथा ने पाकिस्तान की लेखक-बिरादरी में बहुत से विवादों को जन्म दिया जिसे अदा ज़ाफरी की आत्मकथा के सामने रखकर बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। किश्वर नाहीद एक रूढ़िवादी मुस्लिम परिवार से सम्बद्ध थीं बचपन से ही पर्दे और बुर्के की बाध्यता में वे कसमसाती रहती थीं। बहुत जद्दोजहद के बाद उन्हें कॉलेज जाने का मौका मिला और तब उन्होंने बगैर पर्दे के कक्षाएं करना शुरू किया, लड़कों के साथ मुशायरों, डिबेट इत्यादि में भाग लेने

लगीं, कॉलेज की ज़िंदगी ने उन्हें बाहरी संसार से परिचित होने का मौका दिया और उन्होंने कोई मौका हाथ से जाने नहीं दिया यहाँ तक कि घरवालों की रजामंदी के बगैर प्रेम विवाह भी कर डाला, कुछ ही दिनों में दांपत्य-कलह शुरू हो गए, जिसका अंत नहीं था क्योंकि शौहर का जी किश्वर से भर चुका था, वे आत्मकथा में लिखती हैं कि उन्होंने अपने शौहर का जी अपनी तरफ पलटने की बहुत कोशिश की, दो बच्चे भी हुए जो अपने पिता के पक्ष में ही थे। सन 1984 में जबतक पति की मृत्यु नहीं हुई तबतक पारिवारिक कलह चलते रहे। 'बुरी औरत की कथा' में वे समाज की पितृसत्ता की आलोचना ही सिर्फ नहीं करतीं बल्कि स्त्री के विकास में अवरोधक उस मानसिक अनुकूलन पर बारीक नज़र रखती हैं, जिसका प्रतिनिधित्व अक्सर घरेलू औरतें करती हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता कि कब वे अपनी आंतरिक संरचना में पितृसत्ता की पोषक एजेंसी के रूप में कार्य करने लगती हैं। स्त्री की समूची आकांक्षा-इच्छा, यौनिकता कैसे हिंसा, संदेह और अपशब्दों में तब्दील हो जाती है इसे देखने के लिए इस आत्मकथ्य को पढ़ना चाहिए। किश्वर अपनी समसामयिक राजनीति पर भी पैनी नज़र रखती हैं, इस दृष्टि से उनकी आत्मकथा एक दस्तावेज़ भी है, वे लिखती हैं - "पाकिस्तान ने अपने वजूद को औरत के वजूद की तरह तकसीम होते देखा। खुद को औरत की तरह दौलत की गुलामी में जकड़ा हुआ महसूस किया। आकाओं ने दो सौ साल पुराना खेल फिर दोहराया। अब यह खेल वे खुद नहीं खेल रहे थे बल्कि उसके ज़रखरीद सियासतदाँ और नौकरशाही खेल रही थी। 1965 में 'छेड़छाड़' आउट ताकतों को आजमाने का खेल खेला गया। अब शिकार फिर औरतें ही थीं। पाकिस्तान लालकिले पर झण्डा लहराने के लालच में 'थैंक यू अमेरिका' से दो-चार हो रहा था।" किश्वर का बतौर स्त्री यूँ सब कुछ खुल कर अभिव्यक्त कर देना अपने भीतर के भय पर विजय पाने की प्रक्रिया है। इस्लामिक देश में रूढ़ियों और राजनीति पर बोलना अपने-आप में चुनौती भरा है। निजी जीवन में किश्वर परंपरा का विरोध करती हैं, सार्वजनिक जीवन में अकेलेपन के खतरे उठाती हैं, सत्ता हमेशा उसपर कुपित दृष्टि रखती है, उधर दूसरी ओर रूढ़ि-भंजन और विद्रोह का रोमांच तब खत्म-सा हो जाता है जब वह हड़बड़ाहट में छिनी हुई आज़ादी के फलस्वरूप एक ऐसे पुरुष को प्रेमी फिर पति के रूप में चुन लेती है, जिसके लिए स्त्री सिर्फ एक देह है। स्त्री अपना दांपत्य बचाने के लिए खुद को 'देह' के रूप में रिड्यूस कर भी देती है पर वह भीतर से इसे स्वीकार नहीं कर पाती, उसका आत्म-देह, दमन और विद्रोह से बना है। इसी आत्म की अभिव्यक्ति वह विभिन्न तरीकों से करती है। उसकी देह पर बचपन से पहरा है। पुस्तक के अंतिम भाग में निजी जीवन की छवियाँ, पारिवारिक तस्वीरें, देश और विदेश के दूसरे लेखकों और अकादमिक दुनिया से जुड़े लोगों के साथ के कुछ चित्र शामिल हैं। इन दोनों छोरकी चिंताओं के बीच के तनाव को कथ्य की दरारों में देखा जाना चाहिए। आत्मकथ्य का एजेंडा है - पाकिस्तान के सामंती समाज द्वारा घोषित 'बुरी' औरत का प्रतिनिधित्व करना, शब्दों, तस्वीरों, निजी और सामाजिक संवाद द्वारा आत्माभिव्यक्ति के लिए आत्मकथा की विधा को अपनाना। कहना न होगा कि वे अपने इस उद्देश्य में पूरी तरह सफल भी हुई हैं। उनकी कथा पाकिस्तानी समाज की आंतरिक तहों को उजागर करने में सफल है और इसीलिए 'बुरी औरत की कथा' है 'जो सच्ची है तथाईमानदारी से बात करने का खतरा उठा रही है। मल्लिका अमरशेखकी आत्मकथा 'मला उद्ध्वस्त व्यायंचय' (मुझे उद्ध्वस्त होना है - अंग्रेज़ी अनुवाद I want to destroy Myself-translated from Marathi by Jerry Pinto, Speaking Tiger Publishing House, 2016) ने प्रकाशित होते ही तहलकामचा दिया। मराठी के कवि और दलित पेंथर के अग्रणी नेता नामदेव ढसाल की प्रेमिका और बाद में पत्नी बनी

मल्लिका ने आत्मानुभवों को सबके सामने लाकर न सिर्फ निजी जीवन को सबके सामने व्यक्त करने का साहस किया बल्कि दलित राजनीति, उसके अंतर्विरोधों और उसके नेतृत्व से जुड़े व्यक्तित्व के दोहरे- तिहरे चरित्र के बारे में बेबाकी से लिखा। मल्लिका अमरशेख की बेबाकी ने दलित आंदोलन से जुड़े लोगों को उनका शत्रु भी बना दिया। मल्लिका के पिता शाहिर अमरशेख कम्युनिस्ट कार्यकर्ता, ट्रेड यूनियन और लोक गायकी से सम्बद्ध थे वे 1960 के दशक में महाराष्ट्र की राजनीति में सक्रिय भी थे। पिता की राजनैतिक सक्रियता ने मल्लिका को राजनीतिक दृष्टि से सचेतन बनाया साथ ही उम्र के सत्रहवें वर्ष में ही नामदेव ढसाल की कविताई और जुझारू व्यक्तित्व के सम्मोहन में ढसाल से विवाह का निर्णय ले लिया, लेकिन जीवन का यथार्थ कविता से नहीं चलता। यह जानना दिलचस्प हो सकता है कि प्रारम्भिक रोमानी आकर्षण के बाद मल्लिका ने जिसे नए सिरे से पहचाना वह नामदेव ढसाल अपने निजी जीवन में, सार्वजनिक चेहरे से बिलकुल अलग है -उसमें सभी कमज़ोरियाँ हैं। दलित नेतृत्व की ज़िम्मेदारी उठाते उठाते नामदेव कब अपनी पत्नी के प्रति इतने क्रूर बन गए कि वह उसी घर के दूसरे हिस्से में अलग रहने लगी, एक संतान के बाद दूसरी संतान को जन्म देने को तैयार नहीं। मल्लिका पति के सार्वजनिक जीवन में आए व्यतिक्रम के बारे में लिखती है -“कम्युनिस्ट के रूप में उसी के समाज द्वारा गतिरोध पैदा हुआ। जल्दी मिली सफलता की आँधी और असफलता के कारण अपने को फ्रस्ट्रेशन से बचा पाना नामदेव के लिए संभव नहीं हुआ, इन स्थितियों ने उसे बिलकुल बदल डाला”...आगे दलित कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए वह लिखती है -“देखो तुम्हारा नेता शराबी है, रंडीबाज़ है, वह व्यवहार नहीं जानता लेकिन क्रांति करने निकला है। ऐसे कार्यकर्ता से तुम प्रेम करते हो, वह गुंडा है, गुप्तरोग का शिकार है, उसके मित्र भी उसके जैसे हैं। वे काहे के पैंथर ‘। (गैर -दलित, शरणकुमार लिंबाले,पृष्ठ 187)

इन मुस्लिम स्त्रियों की आत्मकथाओं का परिविस्तार निज से लेकर समाज तक, परिवार से लेकर राजनीति तक फैला हुआ है,कहीं वे अभिव्यक्ति की नयी विधाओं की तलाश में सिर्फ आत्मकथा को मुकम्मल पाती हैं, जबकि कुछ जो कविता, गज़ल में अपनी बात ठीक उस तरह से नहीं कह सकीं, जिस ढंग से कहना चाहती थीं, वे आत्मकथा विधा को अपनाती हैं। औपनिवेशिक अतीत और उत्तर औपनिवेशिक वर्तमान के इतिहास -लेखन के लिए आत्मकथाएं दस्तावेज़ बन सकती हैं। जहां प्रारम्भ में ये स्त्रियाँ अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल दिखती हैं, साक्षर बनने के लिए, छपने की जद्दोजहद करती दिखाई देती हैं वहीं नब्बे के दशक के बाद उनमें बदलाव को रेखांकित किया जा सकता है, अब वे शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं, देश -विभाजन, विस्थापन ने उन्हें अनुभव -परिपक्व बना दिया है इसलिए अब वे अपने गद्य में पात्रों को रचती हैं इन स्त्रियों का आत्मकथा विधा मेंलेखन राष्ट्र -आख्यान से स्वयं को जोड़ने और इतिहास की धारा में स्वयं को जीवंत ऐतिहासिक चरित्रों के रूप में पहचनवाए जाने की कोशिश के रूप में देखा जाना चाहिए कहीं जीवन को, कहीं स्वयं को पात्र बनाती हैं, उनकी कथाओं में पहले की अपेक्षा तटस्थता, रूपबंध संबंधी प्रयोग, कथानक के बेहतर रचाव के प्रयासों को रेखांकित किया जा सकता है। कहीं-कहीं कथा और आत्मकथा का अंतराल परस्पर संघनित होता दीखता है, पहले से कहीं ज़्यादा बोल्डनेस के साथ निज को खोलकर रख देने की कोशिश होती है, स्वयं को कटघरे में रखना, आत्म पर व्यंग्य करना उसी रणनीति का हिस्सा है जिससे पारिवारिक और सामाजिक संसरशिप की बेड़ियाँ टूटती हैं। इसके साथ ही वैश्विक संदर्भ और घटनाएँ उसकी नज़र में हैं, मसलन अदा ज़ाफरी भले ही

निज को खोलकर अभिव्यक्त करने में हिचक जाती हों पर पश्चिम के स्त्रीवादी आंदोलनों पर पैनी नज़र रखती हैं, यहीं नहीं पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान में युद्ध के मसले को गंभीरता से उठाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप बांग्लादेश बना। इसी तरह किश्वर नाहीद अपनी कथा कहते हुए भी तीसरी दुनिया को परखती चलती हैं, जिसके आलोक में स्वयं को, लैंगिक असमानता पर आधारित विकासशील समाज का प्रतिनिधि मानती हैं। यहीं पर वे स्थानीयता का अतिक्रमण करके वैश्विक नागरिकता की दिशा में कदम बढ़ाती हैं।

प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू नई दिल्ली

धरोहर

स्मृतिशेष गंगाप्रसाद विमल

ओमप्रकाश सिंह

गंगाप्रसाद विमल सन् 1999 के अंत में भारतीय भाषा केंद्र ज. ने. वि. नई दिल्ली में प्रोफेसर (अनुवाद अध्ययन) के पद पर आए थे। वह समय 20 वीं सदी का अंत था। एक नई सदी अनेक नए नारों के साथ शुरू होने वाली थी। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में विमल जी के आने से पूर्व में उन्हें जानता तो था पर कभी उनसे मुलाकात नहीं हुई थी। एम.ए.की कक्षाओं में पढ़ने के दौरान अकविता और अकहानी जैसे शब्दों से हमारा परिचय हुआ था। उसी समय हमें यह भी मालूम हुआ था कि यह केवल शब्द नहीं साहित्यिक आंदोलन हैं। इन साहित्यिक आंदोलनों से गंगाप्रसाद विमल न केवल जुड़े हुए थे बल्कि इनके पुरस्कर्ताओं के रूप में भी परिगणित किए जाते हैं। कालांतर में मेरा परिचय उनकी साहित्यिक कृतियों से हुआ। उनकी लिखी कई रचनाओं को मैंने पढ़ा भी। यदि यह कहूँ कि मैंने उनकी सभी रचनाओं को पढ़ा है तो यह झूठ होगा।

भारतीय भाषा केंद्र में विमल जी 3 जून 2004 ई. तक रहे। इस बीच में वे केंद्र के अध्यक्ष भी रहे। इस दौरान विमल जी को जानने समझने के अनेक अवसर आए। उनसे पहली मुलाकात में ही यह साफ हो गया था कि सामने बैठा व्यक्ति साधारण नहीं है। उसमें कुछ ऐसा है जो उसे अन्य लोगों से अलग बनाता है और अपनी ओर खींचता है। वह तत्त्व क्या था? इसकी जानकारी तो धीरे-धीरे बाद में हुई। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आने से पूर्व वे उस्मानिया विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में लंबे समय तक अध्यापन कार्य कर चुके थे। केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक पद पर भी वे कार्य कर चुके थे। एक तरह से देखें तो उनका अनुभव संसार विविधवर्णी था। वह अध्यापक, प्रशासक, कवि, अनुवादक और लेखक के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके थे। वैसे यह उनका अकादमिक अनुभव संसार था। केवल अकादमिक अनुभव और योग्यता से बड़ा विद्वान तो बना जा सकता है पर व्यक्ति भी बड़ा बन जाएगा, ऐसा कहना संशययुक्त है। विमल जी के अनेक गुण एक तरफ तो उन्हें विद्वानों की कोटि में खड़ा करते थे और दूसरी तरफ उन्हें एक उदार मनुष्य भी बनाते थे। उनसे मिलने वाला हर इंसान जानता है कि थोड़ी देर की बातचीत में ही विमल जी सामने वाले व्यक्ति को अपना बना लेते थे। सहज भाव-स्वभाव, समानता का व्यवहार, किसी भी तरह की मुसीबत में साथ खड़े हो जाने का जज्बा, हर तरह की मदद की पेशकश, मदद भी

इस तरह की पता न चले, गप्पबाजी, झूठी बातें भी इस अंदाज में कहना ही विश्वास हो जाए और धीरे से हँस देना यह उनका अंदाज था। उनसे जुड़े हुए लोग इन बातों को ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं।

भारतीय भाषा केंद्र के तमाम प्रशासनिक कार्यों से जूझते हुए, लोगों से बातचीत करते हुए, फैकल्टी मीटिंग में लंबी-लंबी चलने वाली बहसों में भाग लेते हुए या ऐसे ही अन्य अवसरों पर मैंने कभी विमल जी को उत्तेजित होते हुए नहीं देखा। उनके इसी स्वभाव के कारण प्रोफेसर मैनेजर पांडेय उन्हें 'अजातशत्रु' कहते थे। जहां तक मुझे पता है भारतीय भाषा केंद्र में विमल जी की सबसे पुरानी घनिष्ठता केदारनाथ सिंह से थी। केदारनाथ जी उन्हें 'बच्चा' कह कर संबोधित करते थे। विमल जी एक बच्चे जैसा व्यवहार करते हैं यह उनकी मान्यता थी। उनकी यह मान्यता सही भी थी। भारतीय भाषा केंद्र जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के बाद केदारनाथ जी 'साकेत' में रहने लगे थे। भारतीय भाषा केंद्र में कक्षा शिक्षण का कार्य दोपहर 1:00 बजे तक पूरा हो जाता था। कुछ पाठ्यक्रम ऐसे थे जिनकी कक्षाएं दोपहर के भोजन के बाद होती थी लेकिन वे कक्षाएं परिचयात्मक (Introductory) या वैकल्पिक (Optional) होती थीं। इन कक्षाओं को केंद्र के नए अध्यापक पढ़ाते थे। अवकाश ग्रहण करने के बाद केदारनाथ सिंह की दोपहर के खाने के बाद आराम करने की आदत थी। हम सभी लोग इस बात को जानते थे, इसलिए उस अवधि में हम लोग केदारनाथ सिंह को फोन नहीं करते थे। विमल जी भी इस बात को जानते थे लेकिन हर दो-तीन दिनों के बाद वे केदारनाथ सिंह को दिन में 3:00 बजे के आसपास फोन करते थे। वह जमाना लैंडलाइन फोन का था। मोबाइल था पर उसका इस्तेमाल बुजुर्गों की पहुंच के बाहर था। फोन की घंटी सुनकर केदारनाथ जी थोड़ी देर में फोन उठाते। इधर से आवाज जाती- सर, मैं गंगाप्रसाद विमल बोल रहा हूँ। माफ करिएगा, मैंने आपको परेशान किया। इस समय आपसे बात करना बहुत जरूरी था, वरना मैं बाद में बात करता। हुआ यह है कि मेरा फोन नंबर बदल गया है। कृपया नोट कर लें। मेरा नया नंबर है..... झुंझलाते हुए केदार जी फोन पटक कर सो जाते। यह कार्य हर दो-तीन दिनों के बाद विमल जी करते। केदारनाथ जी झुंझलाते तो जरूर रहे होंगे पर कभी भी विमल जी के इस कारनामे पर वे डांट लगाते न सुने गए। उन्होंने विमल जी को ऐसा करने के लिए मना किया हो यह भी सुनने में नहीं आया।

प्रोफेसर विमल जब तक भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में रहे उनके चेंबर में अध्यापक और विद्यार्थी बिना किसी रोक-टोक के पहुंच जाते थे। कुछ लोग तो अपनी कोई समस्या लेकर जाते और कुछ लोग केवल गपशप के इरादे से। उनकी समस्याएं भी केवल विश्वविद्यालय से जुड़ी न होतीं। लोगों की बात सुनकर हर संभव मदद करना विमल जी के स्वभाव में शुमार था। मैं कई ऐसे विद्यार्थियों को जानता हूँ जो विमल जी से जुड़े थे और आर्थिक अभाव में थे। विमल जी भी उनकी समस्या से परिचित थे पर इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि विद्यार्थी को सीधे-सीधे आर्थिक मदद करने पर उसके स्वाभिमान को चोट पहुंचेगी। इसके निराकरण का रास्ता भी उन्होंने खोज रखा था। ऐसे विद्यार्थियों को वे कुछ न कुछ काम देते और कहते कि किसी प्रकाशक ने यह काम भेजा है। ऐसे ज्यादातर काम अनुवाद, प्रूफ रीडिंग, या एडिटिंग के होते थे। ऐसे काम विमल जी के यहां आते थे या मदद के लिए उन्होंने बहाना बना रखा था, इस पर से पर्दा

उठाना अब ठीक नहीं है। हां यह जरूर है कि ऐसे कार्यों का कभी कोई उपयोग या प्रकाशक को लौटते हुए मैंने कभी भी विमल जी को न देखा।

सेवा से मुक्त होने के बाद विमल जी की व्यस्तता काबिले तारीफ थी। दिल्ली शहर में कुछ स्थान ऐसे थे जो उन्हें विशेष प्रिय थे। साहित्य अकादमी वे अक्सर जाते थे। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर तो उनका प्रियस्थान था ही। घर की जिम्मेदारियों के निर्वहन के बाद वे इंडिया इंटरनेशनल सेंटर आ जाते और वहां की लाइब्रेरी में बैठकर काम करते। उनके लेखन और अनुवाद कार्य का काफी हिस्सा वही संपन्न हुआ है। अक्सर इंडिया इंटरनेशनल से उनका फोन आता। फोन पर उनकी आवाज सुनाई पड़ती, बंधु, आ जाइए, मौसम अच्छा है, चाय पीते हैं और गप्प करते हैं। कभी कभी फोन पर उनका संबोधन बदला होता—क्या प्रोफेसर, कहां हो! इंडिया इंटरनेशनल सेंटर आइए। प्रोफेसर सुधीर प्रताप को भी साथ ले आइए। हम लोग वहां पहुंचते और अक्सर यह पाते की विमल जी लाइब्रेरी के मुख्य द्वार पर खड़े हैं। वहां से हम लोग एनेक्सीया सामने की कैंटीन में जाकर बैठते। देश जहान की तमाम बातें होती। बातों का सिलसिला घर-परिवार, स्वास्थ्य से शुरू होकर साहित्यिक गतिविधियों पर आकर अटक जाता।

साहित्यिक आयोजनों में विमल जी की खास रुचि थी। ऐसे कार्यक्रमों को आयोजित करने के लिए वे केवल सलाह भर ही नहीं देते थे। कहां से और किससे संसाधन प्राप्त होगा वे पहले से ही सोच कर रखते थे और खुद साथ लेकर वहां जाते थे। विमल जी के कारण दिल्ली के ही नहीं देश से बाहर के भी कितने लोगों से परिचय मेरा हुआ, इसे मैं अपनी एक उपलब्धि के रूप में देखता हूं।

गंगाप्रसाद विमल के रचना संसार और उनकी साहित्यिक उपलब्धियों पर चर्चा करना या उनका मूल्यांकन करना न तो यहां संभव है और न ही ऐसा कोई मकसद है। हाँ, मैं यह जरूर कहना चाहूंगा कि उनका रचना संसार वैविध्यपूर्ण और बड़ा है। अब तक उनके 6 कहानी संग्रह, 4 उपन्यास, 1 नाटक, 4 आलोचनात्मक पुस्तकें, 7 संपादित पुस्तकें, 14-15 अनुवाद की पुस्तकें प्रकाशित हैं। समय-समय पर वे प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में भी लिखते रहें, उनके इन लेखों का विवरण देना स्वतंत्र शोध का विषय होगा। यहां एक बात का उल्लेख मैं जरूर करना चाहूंगा। विमल जी का जन्म उत्तरकाशी (उत्तराखंड) में हुआ था। जाहिर है पहाड़ और वहां के जन-जीवन और सौंदर्य से उनका गहरा लगाव था। इनकी अनेक रचनाओं में पहाड़ी जीवन की पीड़ा और यातनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है। साथ ही उनकी रचनाओं में उत्तराखंड की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा का चित्रण ही नहीं उसके संरक्षण की आवश्यकता पर भी छटपटाहट दिखाई देती है। पहाड़ों से उनका गहरा लगाव था और वे पहाड़ों के चितेरे रचनाकार हैं। उनके साथ बातचीत करते हुए अक्सर उनकी यह चिंता स्वर ले लेती थी।

विमल जी का अंतिम कहानी संग्रह 2015 ई० में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह का शीर्षक है – ‘मैं भी जाऊंगा’। ऐसा लगता है कि अपने जीवन के अंतिम पड़ाव के बारे में वे काफी समय से सोच विचार कर रहे थे पर इतनी जल्दी जीवन लीला समाप्त हो जाएगी, इसका अंदाजा उन्हें भी नहीं था। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति के बाद वे अपने हर साहित्यिक कार्य-योजना की चर्चा हम सबसे जरूर करते थे।

ऐसे ही, एक दिन उन्होंने बताया कि नेशनल बुक ट्रस्ट उनसे हिंदी की प्रारंभिक कहानियों का एक संकलन तैयार करने के लिए कह रहा है। विमल जी ने ऐसे ही एक और संकलन का जिक्र करते हुए कहा कि उससे अच्छा और अलग होना चाहिए। मैंने विमल जी को सरस्वती पत्रिका का हीरक जयंती अंक दिखाया तो उन्हें उस संकलन की असलियत का पता चल गया। कुछ ही समय बाद विमल जी द्वारा संकलित संपादित हिंदी की प्रारंभिक कहानियों का संग्रह नेशनल बुक ट्रस्ट से छपा और पर्याप्त चर्चित हुआ।

विमल जी की योजना भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवन और साहित्यिक योगदान पर उपन्यास लिखने की थी। इसकी चर्चा वे अक्सर किया करते थे। जहां तक मुझे ज्ञात है कि इस कार्य के लिए उन्होंने पर्याप्त सामग्री इकट्ठा कर ली थी। इसी योजना के तहत वे कलकत्ता में प्रतिभा जी से भी मिल आए थे। बाबू शिवनंदन सहाय द्वारा लिखित भारतेंदु हरिश्चंद्र की जीवनी से भी वे नोट ले चुके थे। विमल जी ने कई पत्र-पत्रिकाओं में छद्म नाम से भी लिखा है। अनिल कुमार घई, दिवाकर दत्त, उर्वी दत्त, फणतलपक, नागेश्वर आदि नामों से लिखा गया उनका लेखन पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है। उनके ऐसे लेखन के संकलन से निश्चय ही कुछ नए तथ्य सामने आएंगे। वे आत्मकथा पर भी कार्य कर रहे थे। उनके अधूरे कार्य केवल सूचना भर ही रह गए हैं। यह भी पता नहीं कि इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की लाइब्रेरी में पड़े उनके कागजात अब कहाँ हैं।

यह संयोग ही कहा जाएगा कि विमल जी लंका नहीं जाना चाहते थे। लंका यात्रा से कुछ दिन पूर्व ही पीएच.डी. की मौखिकी के लिए काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी चलने का उनका कार्यक्रम निश्चित हो चुका था। यात्रा के लिए टिकट भी आ गया था। वह बनारस चलना भी चाहते थे। कई बार वे लंका न जाने के अपने निर्णय और वहां ले जाने के लिए कनुप्रिया के जिद की चर्चा कर चुके थे। उन्हें विश्वास था कि वे अनुप्रिया को मना लेंगे। मुझे याद है कि बनारस जाने की टिकट का कैंसिलेशन 19 दिसंबर को कराया गया था। विमल जी बनारस तो न जा सके पर लंका की यात्रा उनके जीवन की अंतिम यात्रा साबित हुई। विमल जी के साहित्यिक अवदान के मूल्यांकन के ठीक-ठीक प्रयास अभी शुरू नहीं हुए हैं। कुछ पत्रिकाओं ने उन पर केंद्रित अंक निकालकर इस कार्य का शुभारंभ कर दिया है। उनकी साहित्यिक मान्यताओं से मतैक्य की बात अलग है पर व्यक्ति के रूप में विमल जी निश्चय ही अद्वितीय थे।

अध्यक्ष, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू नई दिल्ली

भारतीय समीक्षा और नामवर सिंह

जानेंद्र कुमार संतोष

हिन्दी के आलोचना क्षितिज पर नामवर सिंह का उदय एक दृष्टि से सम्भवतः विश्व साहित्य इतिहास की अभूतपूर्व और असाधारण घटना है। हिंदी में पहली बार और सम्भवतः किसी भी भाषा के इतिहास में यह अद्भुत स्थिति पहली बार बनी कि साहित्य का केन्द्र रचनाकार नहीं बल्कि समीक्षक हो गया। आचार्य शुक्ल अपने समय में आलोचना के एकल पर्याय थे, बावजूद इसके समकालीन विमर्श में उनकी केन्द्रीय स्थिति नहीं थी। ऐतिहासिक तथ्य तो यही है कि समकालीन रचनाकारों ने आचार्य शुक्ल की आलोचना दृष्टि को स्वीकृति प्रदान नहीं की थी और उनके लिए आचार्य शुक्ल की साहित्य चिन्ताएँ बहुत महत्वपूर्ण और दिशा-निर्देशक नहीं थीं। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा महत्वपूर्ण तो थे, पर केन्द्रीय नहीं थे।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी परिदृश्य में थोड़े समय के लिए अज्ञेय केन्द्रीय व्यक्ति प्रतीत होते हैं। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की सबसे असाधारण, प्रभावशाली और निर्णायक घटना थी- रचनाकार अज्ञेय का साहित्य के केन्द्र से विस्थापित होना और आलोचक नामवर सिंह का केन्द्र नियामक होना। समीक्षक नामवर सिंह के उदय से केवल अज्ञेय विस्थापित नहीं हुए, बल्कि देखते ही देखते साही, भारती, नगेन्द्र, लक्ष्मीकान्त वर्मा और यहाँ तक कि रामविलास शर्मा सा प्रकाशपुंज भी मद्धिम प्रतीत होने लगा। अब हिंदी साहित्य की आकाशगंगा का ध्रुव तारा कोई और नहीं समीक्षक नामवर सिंह थे और साहित्य मन्दाकिनी में नामवर के अर्थ प्रकाश से आलोकित मुक्तिबोध, निर्मल, भीष्म, कृष्णा, उषा, धूमिल आदि नूतन तारे जगमगाने लगे।

साहित्य आकाशगंगा की इस अभूतपूर्व, असाधारण और विलक्षण प्रक्रिया पर राजेन्द्र यादव ने टिप्पणी करते हुए कहा है कि "लेकिन मैं समझता हूँ कि ये बहुत बड़ा दुर्भाग्य भी है जहाँ यह गौरव और गर्व की बात है, वहाँ दुर्भाग्य की ये बात है कि दुनिया के साहित्य में कभी आज तक नहीं हुआ कि एक आलोचक उतना, इस शीर्ष स्थिति पर बैठा हो जहाँ, रचनाकार 'इरेलेवैट' हो जाए।"

राजेन्द्र यादव ने आलोचक की स्थिति में आए इस अभूतपूर्व परिवर्तन को तो सही रेखांकित किया है, पर इस प्रक्रिया और उसके परिणाम को लेकर गलत फ़हमी में प्रतीत होते हैं, जब खिन्नता और हताशा के स्वर में चिन्ता व्यक्त करते हैं कि "आलोचक जब शीर्ष पर होता है, जब ऐसी स्थिति हो जाती है तो वह रचना को खा जाता है। रचनाशीलता उसकी 'कंसेंट' की और 'एप्रीसिएशन' की मोहताज हो जाती है। यही आज हर लेखक की इच्छा है कि नामवर जी उसकी रचना पर दो शब्द बोल दें। इस तरह का बड़ा हो जाना जहाँ एक गर्व और गौरव का विषय है, वहाँ खतरा भी है।"

राजेन्द्र यादव यदि नामवर सिंह और दूसरे आलोचकों की आलोचना-प्रक्रिया के सूक्ष्म अन्तरों को समझ पाते तो नामवर सिंह के शीर्षस्थ होने के वस्तुगत कारणों को भी समझ जाते और उनके मन में विद्यमान रचनात्मक संकट की आशंका का भी निवारण हो जाता। नामवर सिंह केन्द्रीय व्यक्तित्व हैं, केवल इस कारण नहीं कि वे रचनाकारों से ज्यादा विद्वान हैं। सौभाग्य से हिंदी के सारे बड़े आलोचक विद्वान ही हैं। नामवर सिंह और दूसरे बड़े आलोचकों में अन्तर विद्वत्ता के कारण नहीं है, तात्त्विक भिन्नता की तो दूसरी ही वजह है।

हिन्दी के अन्य किसी भी आलोचक की तुलना में नामवर सिंह व्यवहारतः सबसे ज्यादा रचना-केन्द्रित आलोचक हैं और यही वह मूलभूत कारण है जो उनको अन्य आलोचकों से विशिष्टता प्रदान करता है। साहित्य की आन्तरिकता, स्वायत्तता, निजता और बुनावट की सबसे सूक्ष्म समझ नामवर सिंह में है-यह कथन या सपाट वक्तव्य नहीं है। नामवर सिंह में न साही के समान समाज निरपेक्षता है और न रामविलास शर्मा की तरह विचारधारा और नैतिकता का अतिरेक। तकनीकी श्रेष्ठता और नैतिक-सामाजिक शक्ति के बीच उचित सन्तुलन ही वह कारण है जो नामवर सिंह को हिंदी के अन्य शीर्ष आलोचकों से अलग करता है। वहीं रामविलास शर्मा की आलोचना में नैतिक सिद्धान्त ज्यादा मुखर प्रतीत होता है और रचना का अर्थ पृष्ठभूमि में दबा महसूस होता है।

नामवर सिंह ने अपनी रचना-केन्द्रित आलोचना दृष्टि पर कहा है कि "रूप विश्लेषण से अन्तर्वस्तु की ओर अन्त में समग्रतः मूल्य निर्णय।" जबकि आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा की आलोचना का अधिकांश भाग मूल्य-निर्णयपरक ही है। ये दोनों शीर्ष आलोचक कला पर अतिरिक्त नैतिकता को आरोपित करते प्रतीत होते हैं। नामवर सिंह भी निःसन्देह रूप से मूल्य निर्णय देते हैं, पर रचना की बुनावट और अर्थ को स्वयं समझने और पाठकों को सम्प्रेषित करने के उपरान्त। आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा के समान नामवर सिंह भी अपनी आलोचना में साहित्येतर समाजशास्त्रीय और राजनीतिक चेतना का प्रयोग करते हैं, पर इन आलोचकों से थोड़ी अलग नामवर सिंह की संस्कृति चेतना 'रचना' के मूल अर्थ का अतिक्रमण नहीं करती, बल्कि अन्तःअनुशासनात्मक ज्ञान के हर तरफ से रोशनी आकर अन्ततः रचना पर ही केन्द्रित होती है। और इसी कारण आलोचना में 'नामवर सिंह के निष्कर्ष रचना के निष्कर्ष' प्रतीत होते हैं। और यही वह बिन्दु है जहाँ आलोचक के प्रति रचनाकार और पाठक के मन में दुर्निवार आकांक्षा और अपरिहार्यता का भाव जमने लगता है।

नामवर सिंह की अपरिहार्यता की सबसे बड़ी वजह उनकी साहित्यिक समझदारी के प्रति एक आम विश्वास है। हिंदी में एकमात्र नामवर सिंह ही ऐसे आलोचक हैं जिनके बारे में कोई रचनाकार यह दावा नहीं कर सकता है कि नामवर सिंह को उसकी रचना की समझ नहीं है। जहाँ आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा की समकालीन साहित्यिक समझ सन्दिग्ध और अपर्याप्त प्रतीत होती है, वहीं पिछले साठ-सत्तर वर्षों में सर्जित कोई भी रचना या रचनाकार यह दावा नहीं कर सकता है कि नामवर सिंह उसकी सर्जनशीलता की बुनावट और अर्थ को ग्रहण करने में असमर्थ हैं, भले ही नामवर सिंह ने उसे रचनात्मक स्वीकृति प्रदान की हो या अस्वीकृत

किया हो। यह सही है कि रचनाकारों के सन्दर्भ में नामवर सिंह के मूल्यांकन और स्वीकृति में विचारधारा और राग-द्वेष का प्रभाव रहा है, पर आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा से नामवर सिंह की भिन्नता इस बात में है कि जहाँ आचार्य शुक्ल का छायावाद विरोध, कहीं न कहीं उनकी आधुनिक कविता की अपर्याप्त समझ से जुड़ा था और रामविलास शर्मा का नई कविता का प्रतिरोध भी कहीं न कहीं उनकी कविता की अधूरी समझ के कारण था, वहीं नामवर सिंह के सन्दर्भ में स्वयं अज्ञेय, भारती, राजेन्द्र यादव या अशोक वाजपेयी यह कहने का साहस नहीं रखते कि नामवर सिंह को उनके साहित्य की समझ नहीं है।

हिन्दी आलोचना में यह पहली बार हुआ कि पूर्वग्रहों के बावजूद समीक्षक की समझदारी असन्दिग्ध बनी रही और अस्वीकृत रचनाकारों के मध्य भी आलोचक की अपरिहार्यता बनी रही, क्योंकि यह समीक्षक, प्रवचनकर्ता या न्यायाधीश नहीं था, बल्कि रचना को समझने वाला सहृदय मर्मज्ञ पाठक था। तो यह आकस्मिक नहीं है कि इस समझदार हमसफर के इर्द-गिर्द रचनाकारों और पाठकों का कारवाँ बनता गया। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास को यदि सूक्ष्मता से देखा जाए तो केन्द्रीय व्यक्तित्व द्वारा रचनाशीलता को खा जाने की राजेन्द्र यादव की आशंका मरीचिका प्रतीत होती है। वास्तविकता तो यह है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का विकास वस्तुतः नामवर सिंह द्वारा स्वीकृति और अस्वीकृति के आलोचनात्मक संघर्ष का दस्तावेज है। इस काल की सबसे बड़ी रचनात्मक सच्चाई तो यही है कि कुछ अपवादों को छोड़कर नामवर सिंह द्वारा स्वीकृत रचनाकारों को ही हिन्दी-लोक में प्रतिष्ठा मिली है और जिन स्वघोषित महान रचनाकारों को नामवर सिंह ने वैचारिक, सामाजिक या रचनात्मक कारणों से अस्वीकृत किया, वे रूठी रानी-सी प्रतीत होते हैं। समकालीन महान और सम्भावनाशील रचनाशीलता की यह गहरी सतत पहचान ही नामवर के विरोधियों को 'अचूक अवसरवादिता' प्रतीत होती है।

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि नामवर सिंह ने अपनी विचारधारा के पूर्वग्रहों के कारण जहाँ रेणु जैसे साहित्यकार को अपेक्षित महत्त्व प्रदान नहीं किया है, वहीं व्यक्तिगत सम्बन्धों के दबाव में उदारता या कृतज्ञतावश कुछ औसत रचनाकारों को अतिरिक्त प्रोत्साहन देते प्रतीत होते हैं। इन अपवादों के बावजूद यह निर्विवाद है कि समकालीन रचनाशीलता को उर्वर विस्तार देने में नामवर सिंह की भूमिका एक 'मिशनरी' की प्रतीत होती है।

नामवर सिंह की केन्द्रीयता के दूसरे कारण भी हैं। जहाँ दूसरे आलोचक विशेष कालखंड या प्रवृत्ति विशेष या रचनाकार विशेष के आलोचक हैं, वहीं नामवर सिंह साहित्य मात्र के समीक्षक प्रतीत होते हैं। हिंदी या भारत के किसी भी दूसरे आलोचक की तुलना में नामवर सिंह की समीक्षा का क्षेत्र ज्यादा विस्तृत रहा है। हिंदी में नामवर सिंह अकेले ऐसे आलोचक हैं, जो कालिदास से लेकर आधुनिक कविता की अद्यतन रचनाशीलता की अर्थ-मीमांसा में सक्षम हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भले ही 'अखिल भारतीय दृष्टि' का आदर्श घोषित किया है, पर उनकी अखिल भारतीयता सिर्फ संस्कृत और अपभ्रंश तक सीमित प्रतीत होती है। व्यवहार में

केवल नामवर सिंह ने ही हिंदी साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं के मध्य आलोचनात्मक सेतु का सांस्कृतिक कार्य किया है।

मराठी लेखक नारायण सुर्वे ने सही लक्षित किया है कि एकमात्र 'ऐसा आलोचक है, जो सिर्फ हिंदी कविता की बात नहीं करता, वह सम्पूर्ण भारतीय कविता की बात करता है। पूरी दुनिया की कविता का सन्दर्भ रखता है।' नामवर सिंह ने न केवल संस्कृत और अपभ्रंश की जीवन्त परम्परा की समीक्षा की है बल्कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की रचनाशीलता का भी प्रामाणिक ढंग से विश्लेषण कर हिंदी जाति की बौद्धिकता को अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृति दिलाई है। जिस तरह शंकराचार्य जैसे दार्शनिकों और भक्त कवियों ने भारत को सांस्कृतिक एकता के धागे से बाँधने का महान कार्य किया था, उसी तरह नामवर सिंह ने भी अपनी उपस्थिति और आलोचना-कर्म से भारतीय साहित्य की अवधारणा को चरितार्थ करते हुए, सांस्कृतिक एकता की भावना को मजबूत बनाने का राष्ट्र-सापेक्ष कार्य किया है।

महत्त्वपूर्ण यह भी है कि भारतीयता का यह आग्रह जहाँ जयशंकर प्रसाद का अन्धबिन्दु प्रतीत होता है, वहीं नामवर सिंह की भारतीयता विश्व-दृष्टि के समन्वय से ज्यादा यथार्थवादी और आलोचनात्मक प्रतीत होती है। नामवर सिंह ने अपनी सुदीर्घ समीक्षा यात्रा में हिंदी पाठकों को शेष विश्व की महान रचनाओं और प्रवृत्तियों से वस्तुगत परिचय कराके हिंदी पाठकों के भाव और ज्ञान को समृद्ध करने का उदात्त कार्य किया है। प्रतीत होता है कि यह आलोचक नहीं बल्कि माउंटने ईगल है जिसकी ऊँची उड़ान और गहरी दृष्टि से कुछ ओझल नहीं रह सकता है। संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं की बहुमुखी महान परम्पराओं से लेकर अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, लैटिन और एशियाई भाषाओं की रचनाशीलता और बौद्धिकता पर अचूक दृष्टि रखने वाला, सम्भवतः एक और अकेला आलोचक, अविश्वसनीयता का भाव जगाता है।

इस लम्बी और विस्तृत समीक्षा यात्रा की वृत्तान्त शैली भी वैविध्यपूर्ण है। आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा की भाषा, शैली और पदावली रचना और रचनाकाल से अप्रभावित, आद्यन्त अपरिवर्तित और आवृत्तिमयी प्रतीत होती है। वहीं रचना की केन्द्रीयता के कारण नामवर सिंह की सभी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की भाषा और शैली एक-दूसरे से और भिन्न रचनानुकूल प्रतीत होती हैं। शैली और भाषा का यह वैविध्य दृष्टि और विवेक के विस्तार का सूचक है। सभी बड़े आलोचकों की तरह नामवर सिंह ने भी आलोचना के अभिभूत कर देनेवाले मुहावरे गढ़े हैं, पर नामवर सिंह की अपराजेयता का वास्तविक कारण यह है कि वे अपने बनाए किसी भी मुहावरे पर आत्ममुग्ध होकर उसमें कैद नहीं होते। नामवर सिंह में अपने मुहावरों की आत्म-परीक्षा करने का नैतिक और बौद्धिक साहस रहा है। इसी कारण वे किसी मुहावरे के अन्धबिन्दु के शिकार हुए बिना अपने पूर्व निर्मित मुहावरों को गढ़ते-मढ़ते-तोड़ते प्रतीत होते हैं। 'रेणु' और 'अज्ञेय' का पुनःस्मरण नामवर इसी आत्म-परीक्षा के कारण करते हैं। इसी को कुछ आलोचक नामवर सिंह का पक्ष-परिवर्तन, अवसरवादिता और अन्तर्विरोध समझते हैं, जबकि यह प्रक्रिया आलोचक की गहरी नैतिक आत्म-समीक्षा से जुड़ी है-अर्थात् अपने ही पूर्व निर्णय की अनवरत पीड़ादायक आत्म-परीक्षा! इस आत्म-समीक्षा की सतत प्रक्रिया के कारण ही

नामवर सिंह अभी तक अपरिहार्य बने हुए हैं और हर लेखक की आज भी आकांक्षा है कि 'नामवर जी उसकी रचना पर दो शब्द बोल दें।'

हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न दौर में अनेक रचनाकारों और आचार्यों ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से हिंदी रचनाशीलता के साथ-साथ उसकी साहित्येतर गतिविधियों को भी प्रभावित किया है। इस दृष्टि से भारतेन्दु और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का अध्ययन किया भी गया है। पर हिंदी साहित्य के इतिहास में नामवर सिंह जैसी प्रभावकारी उपस्थिति अन्य किसी की प्रतीत नहीं होती है। 'भारतेन्दु युग' भारतेन्दु-केन्द्रित था, पर वह युग आधुनिक हिंदी का निर्माण काल था। नई हिंदी की गतिविधियों के सीमित होने तथा भारतेन्दु के अल्पायु होने के कारण उनका प्रभाव हिंदी भाषा और साहित्य पर ही अधिक था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रभाव भाषायी परिष्कार और शुद्धि पर ही अधिक था। इनके विपरीत नामवर सिंह का कर्मक्षेत्र ज्यादा विविधतापूर्ण एवं विस्तृत रहा है। आम पाठक केवल आलोचक नामवर सिंह को जानते हैं, पर नामवर सिंह का कर्मक्षेत्र (लेखन और व्याख्यान के अतिरिक्त) हिंदी के किसी भी दूसरे साहित्यकार की तुलना में ज्यादा जटिल, विवादित और महत्वपूर्ण रहा है।

नामवर सिंह के सशक्त हस्तक्षेप के कारण ही विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग 19मध्यकालीन काव्य और रस की परम्परागत कूपमंडूकता से मुक्त होकर ज्ञान के दूसरे अनुशासनों के पाठ्यक्रम के समकक्ष हो सके हैं। यह दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि जोधपुर और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के नामवर निर्मित हिंदी पाठ्यक्रम ने अपने समय की हिंदी बौद्धिक मानसिकता को मथ के रख दिया था। विश्वविद्यालयों का वर्तमान हिंदी पाठ्यक्रम नामवर सिंह के बनाए पाठ्यक्रम का ही संशोधित, परिवर्द्धित या विकृत रूप है। महत्वपूर्ण यह है कि नामवर सिंह ने अपने संघर्षों से पाठ्यक्रम का एक ऐसा गतिशील एवं सम्भावनापूर्ण 'मॉडल' प्रस्तुत किया है जो आगे भी हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा। नामवर सिंह ने विश्वविद्यालयों के उच्च हिंदी पाठ्यक्रम को जहाँ ज्ञानात्मक और विधागत विस्तार दिया, वहीं संघ लोक सेवा आयोग के पहले हिंदी पाठ्यक्रम को अपेक्षाकृत सरल, संक्षिप्त और पारदर्शी बनाकर हिंदी वालों के लिए सिविल सेवा का रास्ता सुगम कर दिया था। नामवर सिंह द्वारा निर्मित संघ लोक सेवा आयोग का हिंदी पाठ्यक्रम परिवर्तित होने से पहले तक हिंदी प्रतियोगियों का सुरक्षित किला प्रतीत होता था। नामवर सिंह के निर्देशन में बनी एन.सी.आर.टी. की हिंदी पुस्तकें अभी भी अपनी प्रासंगिकता रखती हैं।

हिन्दी के अधिकांश साहित्य साधक जहाँ ऐकान्तिक साहित्य साधना में सिद्धि और मुक्ति तलाशते प्रतीत होते हैं, वहीं नामवर सिंह ने अपनी बहुस्तरीय सक्रियता से हिंदी की प्रत्यक्ष सेवा की है। हिंदी में बड़े-बड़े रचनाकार और विद्वान हुए हैं, इसके बावजूद विश्वविद्यालय के अधिकांश हिंदी अध्यापक और छात्र एक हीनता ग्रन्थि से ग्रसित रहते हैं। नामवर सिंह ने अपने लेखन, अध्यापन और विशेषकर व्याख्यानों द्वारा हिंदी अध्यापकों और छात्रों के बीच जो आत्मगौरव का भाव जगाया है, उसका स्मरण तब तक रहेगा जब तक हमें आत्म-सम्मान की जरूरत महसूस होती रहेगी।

जो लोग नामवर सिंह के कम लिखने का रोना रोते हैं, उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि गैर-हिन्दी अध्यापक और छात्र हिंदी आलोचना की पुस्तक कम ही पढ़ते हैं। नामवर सिंह ने हिंदी वालों के लिए भले ही कम मात्रा में लिखा है पर दूसरे अनुशासनों और भाषाओं से सम्बन्धित व्याख्यानों में उनकी अद्वितीय भागीदारी ने ही उनको हमारे समय का बौद्धिक अग्रदूत बनाया है। यह उनके नवोन्मेषित व्याख्यानों का ही परिणाम है कि विश्वविद्यालयों के दूसरे विभागों और गैर-हिन्दी क्षेत्रों में नामवर सिंह ज्यादा सम्मानित और प्रभावशाली प्रतीत होते हैं, क्योंकि हिंदी विभागों और हिंदी क्षेत्र में बहुत सी रूठी रानियाँ और महत्वाकांक्षी 'सलीम' हैं जो अकबर की दीर्घजीवी प्रभावशीलता से उपेक्षित महसूस करते हैं। यहाँ हम कुलपतियों और प्रोफेसरों की विभिन्न नियुक्तियों में नामवर सिंह की भूमिका पर चर्चा नहीं करेंगे।

हिन्दी के कुछ हस्ताक्षर केवल अपने सम्पादन-कौशल और क्षमता के कारण अविस्मरणीय हैं। यह कहना मुश्किल है कि आलोचक नामवर सिंह और सम्पादक नामवर सिंह में अधिक महत्वपूर्ण कौन है ? यहाँ हम नामवर सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तकों की चर्चा नहीं कर रहे हैं, क्योंकि वह नामवर सिंह के आलोचना कर्म का ही विस्तार है। यहाँ हम 'आलोचना' पत्रिका के सम्पादक नामवर सिंह का उल्लेख कर रहे हैं। तमाम उतार-चढ़ावों के बावजूद 'आलोचना' को आधी सदी से ज्यादा समय से हिंदी साहित्य की सर्वाधिक सम्मानित और गौरवशाली पत्रिका बनाने का श्रेय नामवर सिंह के सम्पादक व्यक्तित्व को जाता है। 'आलोचना' स्वातंत्र्योत्तर भारत की हिंदी की बौद्धिक उपलब्धि का दस्तावेज प्रतीत होती है। नामवर सिंह ने ही 'आलोचना' को ऐसी पत्रिका बनाया है जिसमें एक लेख का छपना, एक मोटी पुस्तक लिखने से ज्यादा महत्वपूर्ण एवं आकर्षक रहा है। अभी भी 'आलोचना' में छपना लेखक की बौद्धिक स्वीकृति का प्रमाण-पत्र माना जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य बहुमुखी प्रवृत्तियों, वादों, विधाओं, विमर्शों और प्रतिभाशाली रचनाकारों का साक्षी रहा है। आधी सदी से ज्यादा की इस विकासयात्रा में किसी रचनाकार, साहित्यिक प्रवृत्ति, साहित्यिक रचना या साहित्यिक घटना की उतनी सतत केन्द्रीयता नहीं रही है, जितनी नामवर सिंह की ! वास्तव में हिंदी साहित्य का यह लम्बा काल 'नामवर युग' प्रतीत होता है ! आधुनिक भारत के राजनीतिक इतिहास में भी किसी राजनीतिक पुरुष का इतना लम्बा केन्द्रीय दौर नहीं रहा है! राजनीति का गाँधी युग भी इतना लम्बा और केन्द्रीय प्रतीत नहीं होता, जितना साहित्य का नामवर युग! भारत की राजनीति में सत्ता परिवर्तन होता रहा है, पर नामवर सिंह की केन्द्रीय सत्ता अविचलित प्रतीत होती है। नामवर की साहित्यिक सत्ता का राजनीतिक सत्ता से सम्बन्ध अवश्य रहा है, पर उसकी केन्द्रीयता राजनीतिक बदलावों से अप्रभावित रही है। सौभाग्य से राजनीतिक सत्ता और साहित्यिक सत्ता में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध नहीं होता, वरना राज्यपालों, कुलपतियों और संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों द्वारा एक अध्यापक की केन्द्रीय साहित्यिक सत्ता का अपहरण कब का हो चुका होता। राजनीति और साहित्य में एक तात्त्विक विरोधाभास प्रतीत होता है। राजनीति किसी औसत कद को स्वीकार कर सकती है, पर साहित्य कभी किसी औसत व्यक्ति का नेतृत्व स्वीकार नहीं करता है। यह

साहित्य और राजनीति का तात्त्विक अन्तर है। नामवर सिंह को शीर्षस्थ नामवर उनकी प्रतिभा और लोकमानस ने बनाया है, इसी कारण यह केन्द्रीयता स्थायी प्रतीत होती है।

आरम्भिक रचनाशीलता के बावजूद नामवर सिंह विशुद्ध आलोचक प्रतीत होते हैं। इस तथ्य में नामवर सिंह के प्रति एक व्यंग्य भी है, जिसमें यह मान्यता निहित है कि सर्जनात्मक प्रतिभा आलोचनात्मक प्रतिभा से श्रेष्ठ होती है। अंग्रेजी के प्रोफेसर राजनाथ ने विशुद्ध आलोचना और सर्जनात्मक प्रतिभा के तुलनात्मक महत्त्व और उसके अन्तर को स्पष्ट करते हुए एक गहरे पर उपेक्षित सत्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि "हमने अभी इस बात को पूरी तरह महसूस नहीं किया है कि आलोचनात्मक प्रतिभा सर्जनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा कहीं अधिक विरल होती है। इस कथन की प्रामाणिकता के लिए यदि हम अंग्रेजी साहित्य का इतिहास उठाकर देखें तो पाएँगे कि हर युग में कलाकार तो अनेक हुए हैं, किन्तु महान आलोचक नहीं। अंग्रेजी भाषा में बड़े सर्जक और साहित्य चिन्तक तो अनेक हुए हैं, पर महान समीक्षक तो केवल फ्रेंक रेमंड लीविस ही माना जाता है। इससे साहित्य समीक्षक की महत्ता तो प्रमाणित होती ही है, इस आम मान्यता का खंडन भी होता है कि महत्त्व की दृष्टि से समीक्षक का स्थान गौण है और वह सर्जनात्मक साहित्य का परजीवी भर होता है।"

जब तक मानव जाति और उसके शब्द अस्तित्ववान हैं, तब तक रचनाशीलता की सम्भावना रहेगी। पर यह प्रश्न नियति से मुठभेड़ करने जैसा है कि नामवर सिंह के बाद हिंदी और भारतीय भाषाओं की आलोचना का क्या होगा? यह तो तारीखी हकीकत है कि नामवर भारतीय आलोचना के चरमोत्कर्ष हैं—अर्थात् आलोचना का अन्त ! उत्तर-आधुनिक मुहावरे में कहें तो अर्थ यह होगा कि आलोचना ने अपना चरम विकास पा लिया है और इसके आगे विकास की सम्भावना भी नहीं है। उत्तर आधुनिकता ने इतिहास, विचारधारा, लेखक, आलोचक आदि की मौत की भविष्यवाणी की थी। सौभाग्य से उसकी अधिकतर भविष्यवाणियाँ असत्य होने के लिए अभिशप्त हैं ! पर दुर्भाग्य से उसकी 'आलोचक की मौत' की घोषणा भारतीय परिदृश्य में सही होती प्रतीत हो रही है ! उत्तर-आधुनिक अर्थ में नहीं, बल्कि इस गौरवपूर्ण और साथ ही त्रासद अर्थ में कि पहला और अन्तिम अखिल भारतीय भाषाओं के आलोचक सिर्फ नामवर सिंह हैं!

यह निबन्ध उनके लिए है ही नहीं, जिनको यह बताने की आवश्यकता हो कि नामवर सिंह अन्तिम आलोचक क्यों और कैसे हैं ? और नामवर के बाद क्यों नहीं? और यदि इस प्रश्न का उत्तर देना ही पड़े तो केवल यही बात दुहराई जा सकती है कि जिस प्रकार संस्कृत में अभिनवगुप्त की अकेली और असाधारण उपस्थिति है, उसी प्रकार आधुनिक भारतीय साहित्य में नामवर सिंह की अकेली और असाधारण उपस्थिति है।

इतिहास, समाज, दर्शन और साहित्यालोचन की हजार वर्षों की प्रतीक्षारत आँखों ने एक और सिर्फ एक अभिनवगुप्त को ही देखा है ! नामवर सिंह के बाद क्या हमें भी हजार वर्षों की प्रतीक्षा करनी होगी?

सहायक प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू नई दिल्ली

महान गुरु और महत्तर कवि : केदारनाथ सिंह

देवशंकर नवीन

सामाजिक मनुष्य एवं मानवीय समाज के पक्षपाती कवि प्रो. केदारनाथ सिंह से मेरी पहली मुलाकात सन् 1991 में हुई। उससे पूर्व उनके कविता-संग्रह अभी बिल्कुल अभी (1960), जमीन पक रही है (1980), यहाँ से देखो (1983), अकाल में सारस (1988) और आलोचनात्मक कृतियाँ कल्पना और छायावाद (1960 के आसपास) एवं आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब विधान (1971) से मेरा परिचय हो चुका था। अकाल में सारस के लिए उन्हें सन् 1989 के साहित्य अकादमी सम्मान से सम्मानित किया जा चुका था। अपने लेखकीय वक्तव्य में उन्होंने पड़रौना के दिनों की एक घटना का उल्लेख किया था। वहाँ के जिस डिग्री कॉलेज में वे प्राचार्य थे, उसके छात्रों के दो समूहों का आपसी संघर्ष किसी कारण साम्प्रदायिक संघर्ष में तब्दील हो गया था। घटना की गम्भीरता के कारण स्थानीय प्रशासन को दखल देना पड़ा था। भीड़ को सम्बोधित करते हुए प्रशासन ने दोनों पक्षों से कहा कि अपना-अपना पक्ष रखने के लिए दोनों समूह अपने एक-एक प्रतिनिधि का नाम पर्ची में लिखकर दें। प्राचार्य के कार्यालय में बैठे अधिकारियों ने पर्ची खोली तो हिन्दुओं ने अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रो. केदारनाथ सिंह का नाम लिखा था। मुस्लिम समुदाय की पर्ची खुलने पर सब के सब हैरत में रह गए। क्योंकि उसमें भी केदार जी का ही नाम लिखा था। केदार जी उस घटना से विह्वल हो गए थे। अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा कि मेरे लिए इससे बड़ा सम्मान जीवन में और क्या होगा?

ऐसे श्रेष्ठतर कवि के काव्य-कौशल और कविता सम्बन्धी धारणाओं से मेरे जैसे असंख्य पाठक परिचित हो चुके थे। 'तुम आई' (सन् 1967), 'हाथ' (सन् 1980), 'जनहित का काम' (सन् 1981), 'दाने', 'नीम' (सन् 1984), 'हक दो', 'नमक' (सन् 1990) जैसी कालजयी कविताओं ने तो पत्थर तक को साहित्यानुरागी बना दिया था, मैं तो साहित्य का ही छात्र था। केदार जी की कविताओं के प्रति ऐसा सम्मोहन मुझमें गत शताब्दी के नौवें दशक के पूर्वार्द्ध में ही हुआ था। उन्हीं दिनों मैंने राजकमल चौधरी की तीन कहानियाँ 'जलते हुए मकान में कुछ लोग', 'एक चम्पाकली: एक विषधर', और 'वैष्णव' पढ़ी भी थी। राजकमल की कविताओं से मेरा परिचय इसके बाद ही हुआ। इन दो घटनाओं ने मेरे सोच-विचार की दिशा बदल दी थी। मैं विज्ञान छात्र था। उसे छोड़कर साहित्य में एम.ए. करने लगा। एम.ए. पास करने के बाद 'राजकमल चौधरी: जीवन एवं साहित्य' विषयक पीएच.डी. के कारण मैं राजकमल-साहित्य में केन्द्रित अवश्य हो गया; किन्तु केदारनाथ सिंह की कविताओं की मोहकता सदैव आकर्षित करती रही।

अब तक मनुष्य और समाज को देखने की मुझे दो-दो आँखें हो गई थीं। दोनों आँखों की अपनी-अपनी उज्ज्वलता और विलक्षणता थीं। इन कविताओं ने मेरी जीवन-दृष्टि, रचनाधर्मिता और साहित्यिक समझ का

परिष्कार कर दिया था। 'कोमल स्वर की आक्रामकता' का सूत्र इन्हीं कविताओं से समझा था 'तुम आईं/जैसे छीमियों में धीरे-धीरे/आता है रस/जैसे चलते-चलते एड़ी में/काँटा जाए धँस/।और अन्त में/जैसे हवा पकाती है गेहूँ के खेतों को/तुमने मुझे पकाया/और इस तरह/जैसे दाने अलगाये जाते हैं भूसे से/तुमने मुझे खुद से अलगाया' पढ़ते हुए मैं मुग्ध हो उठा था। 'छीमियों में धीरे-धीरे रस के आने', 'फसल की तरह प्रेमी को हवा में पकाने' और 'भूसे से दाने की तरह खुद से अलगाने' की क्रियाओं के मोहक बिम्ब ने मुग्ध कर रखा था। जीवन, जगत, प्रकृति, कृषि-कर्म के गहन मर्म से जुड़े इस कवि की संवेदना के बारे में सोचता रहता था कि छीमियों में रस भरने का ऐसा अमूर्त रूपक इस कवि ने कितने और किस तरह के चिन्तन से गढ़ा होगा। 'उसका हाथ/अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा/दुनिया को/हाथ की तरह गरम और सुन्दर होना चाहिए' जैसी पंक्तियों ने मन-मस्तिष्क में उजालों का उत्सव ला दिया था। 'उसके हाथ' का स्पर्श पाते ही दुनिया का स्मरण हो आने, और दुनिया के उस हाथ की तरह गरम और सुन्दर होने के कवि-चिन्तन ने मुझे असीम काव्य-दृष्टि से भर दिया था। इस 'हाथ' और 'उसके हाथ' के अर्थ-गौरव ने मेरी चिन्तन-पद्धति से इतना व्यायाम कराया कि कई बार सोचते-सोचते, अर्थ-दोहन करते-करते थक-सा जाता। इस थकान के बाद तनिक रुककर जब फिर इस छोटी-सी कविता में वापस आता, तो बड़ी शान्ति मिलती। फिर से उसमें डूबने का मन करता। कवि के विराट चिन्तन के आगे नत हो जाता। एक प्रेमाकुल मन से जीवन और जगत की इतनी वृहत् यात्रा कराकर पूरे अनुभव को इतनी छोटी-छोटी पंक्तियों में भर देने का केदार-कौशल निश्चय ही किसी नई संज्ञा की माँग करता था।

अध्यवसाय की उस छोटी-सी दुनिया में मुझे ऐसा अर्थ-गौरव अन्यत्र नहीं मिलता। इस महान कवि को नजदीक से देखने की लालसा से भर उठता। 'हाथ' और 'उसके हाथ' के इस बिम्ब की काव्य-व्यंजना मुझे दूर तक ले जाती। अपने कोशीय अर्थ की सीमा लाँघकर यह 'हाथ' अपने तमाम सार्थक उपक्रमों तक पहुँच जाता और दुनिया के शुभद अंशों की रचना करता-सा दिखता। मितभाषी दिखनेवाली केदारनाथ सिंह की ये कविताएँ व्यंजना में सदैव विराट और मुँहजोड़ दिखतीं। उसका कारण सम्भवतः शब्द-प्रयोग का कौशल होता, जिसमें वे शब्दों या पदों को हमेशा कोशीय-अर्थ की सीमा तोड़ देने को मजबूर कर देते। और चमत्कार यह कि किसी को कानोकान खबर नहीं होती कि हुआ क्या है? अर्थ भरा जा रहा है, लेकिन जैसे छीमियों में धीरे-धीरे रस भर आता है!

उन्हीं दिनों समाज के उद्दण्ड लोगों के मुँह से दृष्टि-बाधित लोगों को 'अन्धा' कहते भी सुनता था, अब भी कहते हैं। खुद मेरी दाईं आँख में तनिक बाँकपन था, जिस कारण लोग मुझे 'काना' कहकर चिढ़ाते थे। उस निजी दर्द में मैं तमाम दृष्टि-बाधित लोगों का दर्द महसूस करता था। मगर राजकमल चौधरी और केदारनाथ सिंह की कविताओं को पढ़ते हुए मुझे उन्हीं दिनों स्पष्ट हो गया था कि 'अन्धा' या 'काना' शब्द असल में उन दृष्टि-बाधित लोगों अथवा मेरे जैसे लोगों के लिए नहीं, उन तमाम लोगों के लिए हैं, जो दुनिया को राजकमल चौधरी और केदारनाथ सिंह जैसे लोगों की तरह नहीं देखते।

बारिश के बाद जब मेघ खुल जाए तो खेत की मेड़ पर रखे हल की भीगी लकड़ी पर आदतन चोंच मारती चिड़िया को घनेरो लोगों ने देखा होगा। 'जनहित का काम' शीर्षक कविता पढ़कर कहना पड़ेगा कि दृष्टि-बाधित व्यक्ति अपनी अक्षमता के कारण बेशक उस दृश्य को न देख पाए, पर चक्षुधारी तो सक्षम होते हुए भी नहीं देख पाते थे। केदार जी ने इसे यूँ देखा कि 'मेह बरसकर खुल चुका था/खेत जुतने को तैयार थे/एक टूटा हुआ हल मेड़ पर पड़ा था/और एक चिड़िया बार-बार बार-बार/उसे अपनी चोंच से/उठाने की कोशिश कर रही थी/मैंने देखा और मैं लौट आया/क्योंकि मुझे लगा मेरा वहाँ होना/जनहित के उस काम में/दखल देना होगा।' केदार जी के इस तरह देखने के करतब को लोग बेशक फैंपटेसी कहें, पर यह उनका दोहरा दोष होगा। उनमें देखने की क्षमता तो नहीं ही है, किसी के दिखा देने पर उसे समझने की क्षमता भी नहीं है। उस टूटे हुए हल पर छोटी-सी चिड़िया की छोटी-सी चोंच से बार-बार होती जोर-आजमाइश में कवि, भावकों को प्रेरणा देते दिख रहे हैं कि यहाँ जनहित के सारे उपादान हैं, मेह बरसकर खुल चुका है, खेत जुतने को तैयार है, मेड़ पर एक हल भी पड़ा हुआ है, जनहित के वाजिब काम अर्थात् खेत की जुताई हो सकती है, पर ऐन मौके पर वहाँ कोई जन नहीं है, वह जगह निर्जन है, और ऐसी निर्जनता में एक चिड़िया अपनी क्षीणप्राय शक्ति के बावजूद अपनी चोंच से हल उठाने की कोशिश कर रही है, जनहित का काम कर रही है, जनशक्ति के आलस्य-भाव को चिढ़ा रही है, इस जनहित में किसी जन को दखल नहीं देना चाहिए, कवि को भी नहीं।

सन् 1984 में लिखी मात्र तिरपन शब्दों की एक महान कविता 'दाने' में खलिहान से विदा होते दानों का विद्रोह उन्होंने देख लिया था। मण्डी न जाने की जिद पर डटे, किसानों को भविष्य के खतरों से सावधान कर रहे दाने कह रहे थे हम मण्डी नहीं जाएँगे/जाएँगे तो फिर लौटकर नहीं आएँगे/अगर लौट कर आए भी/तो तुम हमें पहचान नहीं पाओगे। ' यह भारतीय समाज की दुर्वह जीवन-दशा का समय था, जब जनजीवन का आर्थिक-ढाँचा चरमराया हुआ था; सूखा, बाढ़, दुर्भिक्ष, आपातकाल और सिलसिलेवार चुनाव-पर्व की राजनीतिक अनस्थिरताओं ने उनकी कमर तोड़ दी थी। भारतीय राजनीतिज्ञ आम जनता की दुख-दुविधाओं का संज्ञान लेने को राजी नहीं थे। दलगत शत्रुता में पहले से मदान्ध राजनेता कुछ और उग्र हो उठे थे। स्वयं को जनसेवक घोषित करनेवाले राजनीतिकर्मी राष्ट्र, जन और जनतन्त्र की सारी संवेदनाओं को ताख पर रखकर कुर्सी के तिकड़म में व्यस्त थे। आपराधिक राजनीति और राजनीतिक अपराध का बोलबाला था। सन् 1980 के दशक में जनजीवन से विमुख इन राजनीतिक विसंगतियों ने भारतीय जनजीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया था। लाल बहादुर शास्त्री द्वारा दिए गए 'जय-जवान जय-किसान' के नारे और चौधरी चरण सिंह द्वारा किसानों की पक्षधरता के बावजूद किसानों की वास्तविक दशा में कोई सुधार नहीं हुआ था। खलिहान से मण्डी जाते हुए दानों से किसानों के मन में स्थिति-सुधार का कोई भ्रम अवश्य हुआ था, पर वह एक घातक स्थिति थी। असल में राजनीतिज्ञों द्वारा पैदा की गई छलना को सामान्य लोग नहीं पहचान पाते; गहरी जीवन-दृष्टि और जन-जन से निजी सरोकार रखनेवाले महान कवि ही देख पाते हैं। केदारनाथ सिंह ने देख लिया था। उन्हें किसानों के प्रति दानों का वह अनुराग और कृतज्ञताबोध स्पष्ट दिख गया था। उनके वे दाने मण्डी नहीं जाना चाहते थे; क्योंकि वे दाने अपने उत्पादकों की सेवा में अपनी मौलिकता में खुद को खर्च करना चाहते थे; मण्डी जाकर, घाट-घाट का चक्कर लगाकर, बदले हुए स्वरूप में फिर अपने उत्पादकों के पास आकर अजनबी नहीं होना

चाहते थे; अपने उत्पादकों को लूटकर स्वरूप बदलने वाले पूँजीपतियों का कोष भरना नहीं चाहते थे। इस छोटी-सी कविता में कवि केदारनाथ सिंह ने किसानों को बाजार और अर्थतन्त्र का शिकार होते देखा। इतनी सहजता से, इतने कम शब्दों में, इतनी बड़ी अर्थ-ध्वनि उत्पन्न करना एक महान काव्य-कौशल और तत्त्वदर्शी चिन्तन का सूचक है। उन्हें आधुनिकता अथवा विज्ञान से कोई वैर नहीं था, पूरे जीवन उन्होंने तमाम जनोपयोगी आधुनिकता और जनहितकारी वैज्ञानिक आविष्कार का स्वागत किया। किन्तु विज्ञान और आधुनिकता के किसी आचरण से मनुष्य और प्रकृति की मूल-वृत्ति पर, उसकी सहजता-तरलता पर जब-जब उन्होंने आघात होते देखा, वे तिलमिला उठे। 'दाने' कविता में सम्भवतः उन्हें इसीलिए इतना दर्द हुआ।

सन् 1991 में ऐसे कवि केदारनाथ सिंह को पहली बार अपने इण्टरव्यू में बैठे देखकर मन तोष से भर उठा था। सोचा कि मेरा चयन हो चाहे न हो, केदारनाथ सिंह को इस तरह आमने-सामने बैठा देखना किसी उपलब्धि से कम नहीं। यह मुग्धता इतनी जबर्दस्त थी कि अब स्मृति पर जोर डालकर भी याद नहीं कर पा रहा हूँ कि इण्टरव्यू में केदार जी ने क्या सवाल किया था, शायद कोई सवाल नहीं किया था। अधिकांश सवाल तो नामवर जी ने ही किया था, केदार जी तो हर सवाल के मेरे जवाब पर मुस्कराते रहे थे। नामवर जी से मेरी पहली भेंट उससे महीने-डेढ़ महीने पूर्व हो चुकी थी, देर तक बातचीत भी हुई थी। इस बार उनसे दुबारा भेंट हो रही थी। इण्टरव्यू ठीक ही हुआ, डायरेक्ट पीएच.डी. में नामांकन हेतु मेरा चयन हुआ, नामांकन भी हो गया। परिसर के महान लोगों में नामवर सिंह से मिल आने का मेरा धाक खुल चुका था। प्रो. मैनेजर पाण्डेय से भी मिलना-जुलना शुरू हो चुका था। केदार जी से निकटता नहीं हो पाई थी। चलते-चलाते उन्हें कई बार नमस्ते करता था, अभयदान की मुद्रा में जब वे अपनी दाईं तलहत्थी सीने तक लाकर हिलाते और मुस्कराते हुए आशीर्वाद देते, तो प्रतीत होता कि कोई बड़ी-सी चीज मिल गई है। वह चीज क्या होती थी, इसका आकलन आज तक नहीं कर पाया हूँ। डायरी लिखने की आदत रही होती तो हिंदी साहित्य या कहें कि भारतीय साहित्य के इस अनमोल रत्न से अपनी पहली भेंट की तिथि ढूँढ पाता; पर ऐसा सम्भव नहीं।

सन् 1991 के मानसून सत्र की कोई तिथि थी। भारतीय भाषा केन्द्र में पीएच.डी. के गाइड तय होने की बात आई, नामवर जी ने घर पर बुलाया और कहा कि अपने लिए एक गाइड चुन लीजिए और उनसे बात कर लीजिए। मैंने कहा कि चुनने की औकात यद्यपि मुझे है नहीं पर चुन लिया है; बात अभी कर लेते हैं! लम्बी चर्चा हुई, नामवर जी ने कहा कि मेरे साथ आपको दिक्कत हो जाएगी, थोड़े ही दिनों बाद आपको गाइड बदलना पड़ेगा, इसलिए अभी ही तय कर लीजिए, ताकि आनेवाले परिवर्तन से आप बच सकें। चर्चा समाप्त करते हुए नामवर जी ने संकेत किया कि केदार जी से बात करके देखिए, वे मान गए तो आपके लिए अच्छा होगा।

उल्लेख करूँ कि शुरू-शुरू में दिल्ली के शिष्टाचार में स्वयं को समायोजित करने में मुझे बड़ी तकलीफ हुई। मैं था ठेठ बिहारी, बिहार में बड़ों के लिए 'बाबू' लगाकर सम्बोधन देने का पाठ सीखा था; जैसे केदार बाबू, नामवर बाबू। यहाँ पर सारे लोग 'जी' लगाकर सम्बोधन देते थे; जैसे केदार जी, नामवर जी। काफी दिनों तक अजीब-सा लगता था; इस तरह की पुकार मुँह में बस ही नहीं पाती थी; फिर भी यहाँ का होकर रहना था तो

करना ही पड़ा और मैं केदार जी के घर 16, दक्षिणपुरम पहुँच गया। वैसे तो जेएनयू के आवासीय परिसर का अधिकांश घर शान्त ही रहता है, पर उस घर के दरवाजे पर खड़ा होते हुए एक अलग-सी शान्ति महसूस हुई थी। बन्द रहने के बावजूद उस घर के दरवाजे में एक मोहक आकर्षण, अपनापन, आलिंगन-भाव, स्वीकार और उदारता थी। घण्टी बजाई, एक सुन्दर-सी युवती ने दरवाजा खोला, बिना कुछ पूछे-आछे भीतर ले गई। सौम्यता, नीरवता और सादगी से परिपूर्ण बड़े-से हॉल में डाइनिंग टेबल पर एक भव्य व्यक्तित्व का नौजवान जलपान कर रहा था। नजर पड़ते ही उन्होंने अभिवादन किया और नाश्ते का आग्रह किया। ऐसे भव्य-दिव्य-सभ्य व्यवहार से मैं मुग्ध हो उठा था। धन्यवाद सहित मैंने जलपान के लिए शालीनतापूर्वक मना किया और युवती के इशारे का अनुसरण करते हुए सोफे पर बैठ गया। बगल में बैठी एक सौम्य, शान्त बुजुर्ग महिला हाथ में रिमोट लिए टी.वी.देखने में तल्लीन थीं; एक नजर मेरी ओर डालीं, जैसे मेरे बैठने को अनुमोदन दे रही हों, और फिर टी.वी.देखने में तल्लीन हो गईं। सारा कुछ एक यान्त्रिक अनुशासन में होता चला जा रहा था। बिना किसी आग्रह-निवेदन के। मेरे कहे बिना वह युवती ऊपर के मंजिल की ओर चली गई। दो पल बाद आहट सुनकर मैंने पीछे की ओर नजर दौड़ाई तो कवि केदारनाथ सिंह सीढ़ियों से उतरते दिखे। तत्काल खड़े होकर मैंने प्रणाम कहा, उन्होंने उसी अनुपम मुद्रा में आशीर्वाद देते हुए बैठने को कहा। बगल के सिंगल सीटर सोफे पर खुद बैठे। मैंने अपना परिचय देना शुरू ही किया कि मोहक मुस्कान के साथ उन्होंने कहा जानता हूँ, यहाँ तुम्हारा चयन डायरेक्ट पीएच.डी. में हुआ है, तुम मैथिली और हिंदी में लिखते भी हो, तुम्हारा इंटरव्यू बहुत अच्छा हुआ था, नामवर जी बड़े प्रसन्न थे। मैंने तपाक से अपना बड़बोलापन यहाँ निकाल डाला, पूछ बैठासर, आप प्रसन्न नहीं हुए? केदार जी ने अपनी मुस्कान को थोड़ा और खिलाया, और कहा कि मेरे कहे का अर्थ यह नहीं होता! फिर उन्होंने मेरे बगल में बैठी बुजुर्ग महिला की ओर देखकर बताया मेरी माँ हैं। मैंने उनके पैर छुए। उन्होंने सिर पर हाथ रखा। बड़ा शीतल था वह स्पर्श। पल भर के लिए लगा कि किसी मजबूत सुरक्षा की छाया में बैठा हूँ। फिर केदार जी ने जलपान कर रहे उस युवक और दरवाजा खोलने वाली उस युवती का परिचय दिया। वे केदार जी के पुत्र सुनील (अभी भारत सरकार के खाद्य आपूर्ति एवं उपभोक्ता मामले विभाग में स्पेशल कमिश्नर) और केदार जी की अत्यन्त दुलारी बेटि रॉली (मूल नाम डॉ. रचना सिंह, अभी दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दू कॉलेज में हिंदी की अध्यापिका) थीं। बाद के दिनों में तो दादी, सुनील जी और रॉली से निरन्तर मिलना-जुलना होता रहा। परिचय सत्र समाप्त होते ही केदार जी ने पूछा बताओ, किस उद्देश्य से आए? मैंने कहा सर पीएच.डी. से सम्बन्धित कुछ बात करनी है। केदार जी सोफे से उठते हुए बोले आजाओ, उधर कमरे में बात करते हैं!

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उन्होंने एक सवाल किया तुम्हारी मैथिली में भी मेरे नाम का कोई कवि है न? मैंने कहा जी, केदार कानन, मित्र हैं मेरे, उनके पिता भी बहुत बड़े कवि थे, रामकृष्ण झा 'किसुन'। कोई जिज्ञासा करने के बाद वे बिल्कुल बच्चे की तरह हो जाते थे। अब किसुन जी के बारे में जिज्ञासा हो गए। कई बातें पूछीं। इस बीच हम दोनों उनके ऊपर के कमरे में आ गए थे। केदार जी फिर पुराने प्रसंग पर लौटे हाँ, बताओ क्या बात करनी है? कोई भूमिका बनाए बगैर मैंने सीधे कहा मुझे आपके निर्देशन में पीएच.डी. पूरी करने की अभिलाषा है, आप स्वीकृति दें। केदार जी कुनमुनाने लगे। बोले मेरे पास भीड़ बहुत है, सेंटर में कुछ लोगों के पास जगह है,

उनसे बात करके देखो। वे लोग मेहनती भी हैं, तुम्हें सुविधा होगी। मैं थोड़ा आहत तो हुआ, मगर घबड़ाया नहीं। मैं होठों-होठों में बुदबुदाया मेहनती गाइड का मुझे क्या करना है, थिसिस तो मैं लिखूँगा! फिर प्रत्यक्ष रूप से कहा सर, सुना है यहाँ के शोधार्थी पीएच.डी. मैं छह वर्षों तक डटे रहते हैं, शायद इस आशंका में आप मुझे मना कर रहे हैं। मैं आपको वचन देता हूँ कि न्यूनतम समय पूरा होते ही मैं शोध-प्रबन्ध जमा कर दूँगा। मैं यहाँ समय काटने नहीं आया हूँ। छह वर्षों की तदर्थ व्याख्याता पद की नौकरी त्यागकर आया हूँ। मेरे पास 'काटने' के लिए समय नहीं है। सेवानिवृत्त अल्पवृत्तिभोगी शिक्षक पिता की सन्तान हूँ। परिवार के भरण-पोषण का दायित्व मेरे कंधों पर है। नामवर जी पहले ही मना कर चुके हैं। आप मेरा निवेदन स्वीकारेंगे, तो मैं यहाँ पीएच.डी. करूँगा, वर्ना वापस चला जाऊँगा। एक पीएच.डी. तो है ही मेरे पास! एक साँस में यह सब कह लेने के बाद केदार जी फिर मुस्कुराए और बोले इतनी जल्दी नकारात्मक नहीं होना चाहिए। बोलो, विषय क्या रखोगे? मेरी तो बाछें खिल गईं। मैंने कहा आप कुछ इशारा करें तो ठीक, वर्ना कुछ सोचकर फिर मिलूँगा। वे बोले तुलनात्मक साहित्य पर कुछ सोचो। मैथिली-हिन्दी कविताओं पर तुलनात्मक दृष्टि से कभी सोचा है? मैंने कहा नागार्जुन और राजकमल चौधरी की दोनों भाषाओं की रचनाएँ पढ़ते हुए ऐसे विचार कभी-कभी मन में आए हैं, पर थिसिस की दिशा में ऐसा सोचा नहीं कभी।

वे बोले अपने उसी विचार को विस्तार दो। मैंने कहा कि यह विस्तार भी तो अधिक पीछे नहीं जा सकता! वे बोले सही कह रहे हो, ठीक से विचार करने के लिए विषय को सीमित करना जरूरी होगा। ऐसा करो, साठ के बाद की हिन्दी-मैथिली कविताओं के तुलनात्मक अध्ययन पर विचार करो। प्रसन्न मन से वापस आया। सिनाप्सिस की तैयारी करने लगा। कुछेक दिन बाद सिनाप्सिस लिखकर ले गया। उलट-पलट कर उन्होंने देखा और कहा इसे छोड़ जाओ। एक सप्ताह बाद मिलो। इस बीच कोई को-गाइड के नाम पर विचार करो। मैं फिर ठमक गया। अब को-गाइड कहाँ से लाऊँ? उन्होंने मेरी चिन्ता भाँपते हुए कहा कोई मैथिली का जानकार चाहिए। मैंने कहा सर, ऐसा दिल्ली में सम्भव नहीं है। क्योंकि यहाँ उपलब्ध दो लोग—डॉ. गंगेश गुंजन और श्री मंत्रेश्वर झा हैं; और बाबा वैद्यनाथ मिश्र यात्री (नागार्जुन) हैं, जो कभी-कभी दिल्ली आकर रहते हैं। पर इन तीनों की कविताओं पर थिसिस में चर्चा होगी। इसलिए इन्हें तो को-गाइड नहीं बनाया जा सकता! केदार जी ने तनिक लम्बी साँस खींचकर कहा चिन्ता छोड़ो! कोई समस्या आई, तो मैं ही दावा करूँगा कि मुझे मैथिली आती है! मैं प्रमुदित मन से लौट आया और सप्ताह भर बाद फिर पूछने गया तो वे नीचे के हॉल में सोफे पर बैठे टी.वी.देख रहे थे। कोई क्रिकेट मैच चल रहा था। मैंने नमस्ते कहा, उन्होंने अपने उसी स्थाई अन्दाज और शाश्वत मुस्कान के साथ आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठाया। नजर उनकी मगर टी.वी.से ही चिपकी थी। सचिन तेन्दुलकर धुआँधार बल्लेबाजी कर रहे थे। उन्होंने बैठने का इशारा किया। बगल के सोफे पर मैं भी बैठ गया और टी.वी. देखने में उनका सहयात्री हो गया। दो तीन मिनट बाद कोई ब्रेक हुआ, तब केदार जी मेरी ओर मुखातिब हुए और स्पष्टीकरण देते जैसे बोले यही एक खेल है, जो मुझे पकड़ता है। तुम्हें भी अच्छा लगता है?। तथ्यतः सचिन तेन्दुलकर की बल्लेबाजी मुझे अतिशय अच्छी लगती थी, मगर इस तरह आसन लगाकर खेल देखता रहूँ, ऐसी लालसा मुझमें सचिन के अलावा किसी खेल के किसी खिलाड़ी ने नहीं जगाई। हाँ, वॉलीबॉल के एक युवा खिलाड़ी अचल तिर्की ने डालटनगंज में उसी तरह मुग्ध किया था। मैं कह नहीं सकता कि

इसमें दोष खेलों के बारे में मेरे अज्ञान का था, या कि गरीबी के कारण उस समय तक टी.वी.के साथ मुझमें अपनापे के अभाव का। किन्तु केदार जी को क्या कहता? कुछ इस तरह बुदबुदाया कि मेरी हाँ या ना, कुछ भी स्पष्ट न हो। उन्होंने मगर मेरी उस बुदबुदाहट में 'हाँ' ही ढूँढी (वे तो स्वभाव से सकारात्मक व्यक्ति थे, किसी के दुर्दान्त नकारात्मक प्रसंग को भी अपनी व्याख्या से सकारात्मक बना देते थे), और फिर दो चार जुमले क्रिकेट की तारीफ में देने के बाद मुद्दे पर लौटे और कहा बहुत ही सुगढ़ मसौदा तैयार किया है तुमने, इसे सेण्टर में जमा कर दो। लिखा हुआ तो साफ-सुथरा है। सुन्दर लिखावट भी है तुम्हारी। इसी पर दस्तखत कर दूँ?। खुशी और संकोच के मारे मुस्कराकर मैंने पलकें झुका लीं। उन्होंने कहा ऊपर चले जाओ, टेबल पर रखा हुआ है, ले आओ। मैं कूदता हुआ-सा ऊपर जाकर उनके स्टडी रूम से सिनॉप्सिस ले आया। दस्तखत के लिए उनकी ओर बढ़ाया। दस्तखत के बाद मुझे वापस देते हुए उन्होंने आश्वस्ति दी कि विषय पास हो जाएगा, जाओ अब पढ़ो-लिखो। उस दिन उस घर से निकलते समय मैंने पहली बार केदार जी के पैर छुए थे और उन्होंने सिर पर हाथ रखा था। पीछे के जीवन में जितने झंझावात झेले थे और जितनी थकान जीवन में भर गई थी, उसका अधिकांश कुछेक माह पूर्व प्रो. नामवर सिंह के सहज व्यवहार से दूर हो गया था; उस दिन बची-खुची दुराशा विलुप्त हुई-सी लगी। दरवाजे से बाहर आकर स्वयं को ताकतवर-सा महसूस करने लगा।

जेएनयू में डाइरेक्ट पीएच.डी. में दाखिल होने की वजह से केदार जी अथवा नामवर जी की कक्षा में बैठने का सौभाग्य मुझे कभी नहीं मिला। कक्षा में दिए गए इनके व्याख्यानों की अगाध प्रशंसा वरिष्ठ-कनिष्ठ अध्येताओं से सुन-सुनकर मन कचोटता रहता था, किन्तु संगोष्ठियों में इनके व्याख्यान सुनकर उसकी भरपाई कर लेता था। जेएनयू में पीएच.डी. के अध्येताओं की कक्षा नहीं लगती, इसलिए सेण्टर में कम ही जाता था। पुस्तकालय से कमरे तक की दूरी में दिनचर्या पूरी हो जाती थी। शोध-निर्देशक की आधिकारिक अनुमति के बिना उन दिनों जेएनयू के शोधार्थियों के जीवन की हवा भी टस्स से मस्स नहीं होती थी। पर अपने शोध-निर्देशक प्रो. केदारनाथ सिंह की इन अनुमतियों के लिए सेण्टर जाने की अनिवार्यता मुझ पर कभी लागू नहीं हुई। कावेरी छात्रावास में रहता था, सामने में एक फर्लांग से भी कम की दूरी पर गुरु-मन्दिर; जो भी समस्या सामने आती, सुबह-सुबह घर जाकर निराकरण करवा आता। सेण्टर आकर बात करने की अनिवार्यता का न तो उन्होंने कभी अपने किसी वक्तव्य में संकेत किया और न ही घर आ जाने के मेरे आचरण पर कभी कोई असहजता प्रकट की। वहाँ के घरेलू वातावरण से मैं भी तनिक ताजा हो जाता। कभी-कभार गुरुजी घर पर न मिलते, तो भी निराशा नहीं होती। परिचय हो जाने के बावजूद सुनील जी और रचना से औपचारिक बातों से अधिक कोई चर्चा नहीं होती; पर दादी जी तो नेहपूर्वक पारिवारिक बातें करतीं। वस्तुतः उनकी गहन मानवीय जिज्ञासाओं से केदार जी की कविताई को जानने में मुझे बड़ा सहयोग मिला। वे मेरे पारिवारिक जीवन, पारिवारिक संरचना और सामाजिक परिस्थितियों पर इस अनुराग से जिज्ञासा करतीं कि मैं विहवल हो उठता। वे भोजपुरी में पूछतीं, मैं हिंदी में जवाब देता। कुछ देर बतियाकर वापस आ जाता।

तथ्यतः अच्छा मनुष्य होना अच्छे गृहस्थ होने की पहली शर्त है। अच्छा मनुष्य हुए बिना कोई अच्छा कवि तो क्या, कुछ भी अच्छा नहीं हो सकता। अच्छा माता-पिता, न अच्छा शिक्षक, उपदेशक, नेता, अभिनेता,

अधिकारी, पत्रकार। कुछ भी अच्छा नहीं हो सकता। केदार जी चूँकि मनुष्य अच्छे थे, इसलिए वे अच्छे पुत्र भी थे, अच्छे पिता भी और अच्छे कवि, चिन्तक, अध्यापक, दोस्त तो थे ही। यद्यपि उन्हें पारिवारिक चौपाल बिठाकर गप्पें लड़ाते मैंने कभी नहीं देखा; पर माता-पिता के लिए ऐसी भक्ति, सन्तानों के लिए ऐसा प्यार, शिष्यों के लिए इतना स्नेह किसी पौराणिक कथा में ही सम्भव है। जिस दिन उनके घर में पहली बार गया था, उनकी बेटी और बेटे ने मुझे पहली बार देखा था, बिना किसी पूर्व परिचय के मेरे साथ इतना अनुरागमय व्यवहार कैसे किया? निश्चय ही वह उनके श्रेष्ठतर लालन-पालन और पारिवारिक आचार-विचार का हिस्सा था। शिष्यों के प्रति उमरे स्नेहासिक्त व्यवहार सम्भवतः उनके प्रेममय पारिवारिक वातावरण का ही विस्तार था। कोई-कोई पुराने जेएनयूआइट यह किस्सा भी सुनाते हैं कि वे कहीं केदार जी मिले, अपना परिचय देते हुए कहा कि मैंने अमुक वर्ष में भारतीय भाषा केन्द्र से पीएच.डी. की है। इस पर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूछा कि गाइड कौन थे? उस व्यक्ति ने कहासर, आपके ही साथ तो था मैं! इस जवाब के बाद केदार जी झोंप गए। पर मैं समझता हूँ कि ऐसे किस्से सुनाने वालों को तनिक अपने व्यवहार के बारे में भी सोचना चाहिए। केदार जी की स्मृति में वे खुद को दर्ज नहीं कर पाए, तो इसमें उनका क्या कसूर? कुछ लोग उन दिनों ऐसे किस्से भी सुनाते थे कि केदार जी अपने शोधार्थियों की थिसिस पढ़ते नहीं हैं। पर मैं अपना अनुभव कह सकता हूँ। सितम्बर-अक्टूबर 1995 में कभी अपने शोध-प्रबन्ध का तीन अध्याय लिखकर उन्हें देने गया। उनके आवास पर ही। मसौदा हस्तलिखित था। उन दिनों कम्प्यूटर का चलन नहीं के बराबर था। सभी शोध-प्रबन्ध टाइपराइटर पर टंकित होते थे। मसौदा हाथ में लेते हुए उन्होंने कहा तीन-तीन अध्याय एक साथ! इसे देखने में समय लगेगा। दो हफ्ते बाद ले जाना! मैं वापस आ गया। दो हफ्ते बाद गया, तो वे डाइनिंग हॉल में ही बैठे थे, मुझे देखते ही बैठ जाने का संकेत किया, और ऊपर जाकर अपने स्टडी रूम से मेरा लिखा मसौदा ले आए। मुझे सौंपते हुए बोले देख लिया है, अच्छा लिखा है, कहीं-कहीं निशान लगे हैं, उनका निवारण कर लेना। तीन बातों का विशेष ध्यान रखना। पहला अध्याय बहुत बड़ा है। उसके आरम्भिक उन्नीस पृष्ठ में तुमने तुलनात्मक साहित्य के उद्भव-विकास का गीत गाया है। वह निरर्थक नहीं है। पर उसका उपयोग कहीं और कर लेना, यहाँ वह पृष्ठों का अपव्यय होगा। दूसरी बात यह कि एक जगह तुमने नामवर जी के मत का किंचित खण्डन किया है, सम्भव है कि तुम्हारे परीक्षक काशीनाथ जी (जो नहीं हुए) हो जाएँ। तो क्या वाइवा में अपना पक्ष मजबूती से रख सकोगे? तीसरी बात यह कि नागार्जुन प्रगतिशील धारा के कवि हैं, मैथिली में तुमने यात्री की चर्चा 'नव कविता' में की है; क्या मैथिली की नव कविता हिंदी की नई कविता से अलग है? ऐसा कैसे सम्भव है कि कोई द्विभाषी कवि भाषा के बदलाव से वैचारिकता बदल दे। इन सभी बिन्दुओं पर गम्भीरता से विचार कर लेना। अब कोई अध्याय दिखाने की जरूरत नहीं है। पूरी थिसिस बाइण्ड कराके ही लाना। इतने विवरण के बाद भी किसी को लगे कि केदार जी थिसिस पढ़ते नहीं थे, तो उनके लिए क्या कहा जाए!

उनके शिष्यों को अक्सर ऐसा भ्रम होता रहता था कि वे सबसे अधिक उसी को चाहते हैं। ऐसा भ्रम मेरी जानकारी में हिंदी के दो और लोगों के साथ होता था नागार्जुन और राजेन्द्र यादव के साथ। तीनों ही महर्षि अपने अनुवर्तियों को इतना प्यार देते थे कि हर कोई उनके निकटतम होने के मुगालते में रहते। मैं यद्यपि इतना संयम और विश्वास अवश्य रखता कि उनके हृदय में मैंने जो जगह बनाई है, उसमें कमी-बढ़ोतरी मेरे ही

आचरण से हो सकती है, कोई दूसरा प्रयास करके भी मुझे उनसे दूर नहीं कर सकता। अनासक्त प्राणी थे। राह चलते ऐसा कई बार हुआ कि मैंने उन्हें सामने से आते हुए बाद में देखा, उन्होंने पहले देख लिया, मेरी नज़र जब तक उन पर पड़े और मैं उन्हें नमस्ते करूँ, तब तक तो वे आशीर्वाद दे चुके होते थे। नजदीक आ जाने पर पूछते काफी दिनों से तुम्हें कैम्पस से अनुपस्थित नहीं देखा। घर नहीं गए क्या? अपने शोधार्थियों से ऐसा सवाल, गाँव-घर के प्रति उनके अपने लगाव से तो जुड़ता ही है, साथ-साथ इस बात की तरफ भी इशारा करता है कि उन्हें हर नौजवान के गृहानुराग की चिन्ता रहती थी। किसी से परिचय कराते समय प्रशंसा में इतने उदार हो जाते हमलोग संकोच से भर जाते। सन् 1991 के अधोकाल अथवा सन् 1992 के प्रारम्भ में कुछ फ्रीलांस काम माँगने में साहित्य अकादमी गया था। दिल्ली में रहकर अपनी खर्ची जुटाने और घर-परिवार को भी समर्थन देने का दायित्व मेरे ऊपर ही था। इसलिए अखबार-पत्रिकाओं से लिखने या कि अनुवाद करने का काम माँगता रहता था। उन दिनों साहित्य अकादमी की पत्रिका 'इण्डियन लिट्रेचर' के सम्पादक मलयालम के सुपरिचित कवि के.सच्चिदानन्दन थे। 'समकालीन भारतीय साहित्य' के सम्पादक गिरिधर राठी से तो परिचय हो चुका था, उसमें लिखने भी लगा था। सोचा यहाँ भी परिचय कर लूँ। मैं ज्यों ही उनके चैम्बर में घुसा, देखा कि केदार जी वहाँ बैठे हुए हैं। मैं उल्टे पाँव भागा। केदार जी आवाज देते रहे, मैं तो निकलकर बाहर बैठ गया। इतने में एक स्टाफ ने आकर कहा कि आपको भीतर केदार जी बुला रहे हैं। मैं भीतर गया। दोनों को नमस्ते किया। सच्चिदानन्दन जी ने बैठने का आग्रह किया। मैं बैठ गया। अब केदार जी लगे मेरी तारीफ का पुल बाँधने। ये मैथिली और हिंदी के बहुत ही ऊर्जावान रचनाकार हैं। सौभाग्य से मेरे ही साथ पीएच.डी. करते हैं। केदार जी की ऐसी प्रशंसा से मैं संकुचित तो बहुत हुआ, पर उस प्रशंसा की रक्षा के दायित्व से भर उठा। ऐसा कई स्थानों पर बड़े-बड़े लोगों के साथ परिचय कराते हुए उन्होंने किया था। एक दिन अकेले पाकर मैं उनसे पूछ बैठासर, आप इतनी तारीफ क्यों करते हैं? मुझे शर्म आने लगती है। उन्होंने कहा, शर्म मत किया करो, इसे दायित्व समझा करो। तब जाकर मुझे समझ आया कि कोई महान व्यक्ति किस रास्ते कौन-सी महत् प्रेरणा दे देते हैं। फिर उन्होंने अपनी एक घटना सुनाई। कहा कि मैं अपनी थिसिस का चैप्टर लिखकर पण्डितजी (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) के अवलोकनार्थ दे आया था। कई दिन हो गए थे। सोचा कि जाकर ले आऊँ। सुबह-सवेरे नहा-धोकर तैयार होने लगा। पैजामा पहन रहा था। इतने में कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। दरवाजा खोला तो बगल में कुछ कोश-ग्रन्थ दबाए पण्डित जी खड़े मिले। अब मेरे तो होश उड़ गए। आशंकित था, ऐसा क्या हुआ कि पण्डित जी को मेरे कमरे तक आना पड़ा। खैर, पण्डित जी भीतर आए और फौरन मेरी थिसिस के पन्ने पलटकर एक अंग्रेजी के शब्द पर अँगुली रखते हुए पूछा यह शब्द मुझे इनमें से किसी कोश में नहीं मिला, इसका अर्थ क्या होता है? मैं देखकर बहुत लज्जित हुआ, उससे अधिक चकित हुआ। क्योंकि उसमें मैंने हिज्जे का विपर्यय कर दिया था। इतनी छोटी-सी बात, जिसे पण्डित जी बड़े आराम से काटकर ठीक कर दे सकते थे, उसके लिए जिज्ञासा करने यहाँ तक चलकर आ गए। मैं जब शर्मने लगा, तो उन्होंने कहा मुझे भी कुछ-कुछ भान हो रहा था, पर मैंने सोचा, केदार ने लिखा है, हो न हो कोई नया शब्द हो। प्रसंग में गाँठ लगाते हुए केदार जी ने कहा कि ऐसी परम्परा में दीक्षित होने की वजह से मेरा धर्म बनता है कि अपने शोधार्थियों की प्रतिभा को पहचानूँ।

उनके निजी जीवन में कोई पीड़ा न रही हो, ऐसी कल्पना असम्भव है, पर उनके विशाल मित्र-मण्डल में किसी के पास केदार जी की पीड़ा अथवा द्वन्द्व का दृष्टान्त नहीं है। कैसे होगा? इन सबको तो वे अपनी कविताओं में संचित करते थे। होते तो जरूर होंगे, पर कभी मुझे वे उदास नहीं दिखे। गहन परिचय के बावजूद कभी सुनील जी अथवा रचना से मैंने यह सवाल नहीं किया कि 'सर कभी किसी बात से परेशान, विचलित या द्वन्द्वग्रस्त दिखते हैं या नहीं?' सन् 1997 में प्रायः उनके पिता का देहान्त हुआ था। सूचना पाकर मिलने गया था। शान्त चित बैठे हुए थे। चेहरे से उस घनघोर पीड़ा को वे प्रयासपूर्वक हटाए हुए-से दिख रहे थे, ऐसा मुझे पहली और आखिरी बार दिखा कि उनके चेहरे पर वह मृदुल मुस्कान नहीं थी। बातचीत के क्रम में उन्होंने सुनाया कि 'मनुष्य के जीवन में हर बात समझ-बूझ से ही हो, ऐसा जरूरी नहीं है। कभी-कभी मन का उल्लास इतना आवेगमय हो जाता है कि समझ और तार्किकता की सीमा लाँघ जाता है। एक बार मैं सेण्टर से घर लौटा तो देखा कि बाबा नागार्जुन और मेरे पिताजी एक चारपाई पर आमने-सामने कुछ कानाफूसी कर रहे हैं और दो में से किसी की ऑडियो-मशीन कान में लगी हुई नहीं है। उस कानाफूसी की ध्वनि इतनी मद्धम थी कि भली-भाँति श्रवण-शक्ति रखनेवाला व्यक्ति मैं भी सुन नहीं पा रहा था। मगर वे एक दूसरे के कथन से इतने उल्लसित हो रहे थे कि दोनो अपने एक-एक हाथ के संयोग से ताली देकर ठहाके लगा रहे थे। अब देखो, तय है कि दोनो ने एक दूसरे की बात नहीं सुनी, क्योंकि दो में से कोई मशीन लगाए बिना सुन ही नहीं सकते थे। फिर वे दोनो ठहाके किस बात पर लगा रहे थे? जाहिर है कि यह उन दोनों के मन का उल्लास था।' उनके मुख से पिता का संस्मरण सुनते हुए मैंने लक्ष्य किया कि उनके चेहरे पर पीड़ा को चीड़ती हुई मुस्कान की एक हल्की-सी रेख आनेवाली है, पर वह पूरी तरह आई नहीं। उनकी इस पीड़ा की मुखर अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा मन में लिए मैं चलने को उद्यत हुआ तो उन्होंने श्राद्ध की तारीख बताई और कहा कि आ जाना। थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने कविता लिखी 'पिता के जाने पर'। मैं उन सौभाग्यशालियों में से हूँ, जिसने उनकी यह कविता छपने से पहली पढ़ी, सम्भवतः जिस दिन वह लिखी गई, उसके दो-एक दिन बाद ही मैं उनसे मिला था। उस कविता में उनकी मितभाषिता का उल्लेख है 'जब थे बातें कम होती थीं/चुप्पा में ही था/वे तो बोलते ही रहते थे निरन्तर/चाहे चुप ही बैठे हों/जब भरी दोपहरी में मैंने एक दिन उन्हें देखा/एक पक्षी से बतियाते हुए/मैं टोकना चाहता था/पर लगा/एक पक्षी से बतियाते हुए पिता को टोकना/सुन्दरता के खिलाफ है/और इसलिए इस घूमती हुई पृथ्वी की/गति के खिलाफ भी।' यहाँ उनके 'चुप्पा' होने की सूचना है, किन्तु पिता के बाचाल होने की नहीं। बल्कि उनकी चुप्पी में भी वे कुछ न कुछ सुनते रहते थे। पक्षी से पिता के बतियाने के आयास में टोकारा देने तक की क्रिया को जो कवि सुन्दरता और इसलिए घूमती हुई पृथ्वी की गति के खिलाफ माने, उनकी पितृभक्ति को साष्टांग दण्डवत।

महान लोगों के देहावसान के बाद उन पर संस्मरण लिखने के बड़े खतरे हैं। कई बार संस्मरणकार इतने आत्ममुग्ध हो जाते हैं कि दिवंगत के कन्धे पर बैताल की तरह सवार होकर अपना ही गीत गाने लगते हैं, बेशक दिवंगत रसातल चले जाएँ। यह संस्मरण लिखते हुए मेरी ऐसी मंशा कतई नहीं है। मैं न तो केदार जी को देवत्व देने की चेष्टा कर रहा हूँ, न ही स्वयं को उनका सर्वाधिक निकटवर्ती और प्रिय होने का दावा कर रहा हूँ। क्योंकि केदार जी ने कभी कहा नहीं कि वे मुझसे कितना प्यार करते हैं। दरअसल यह कहा नहीं जाता, देखा और

महसूस किया जाता है। व्यवहार से ऐसा दिखता रहता था कि वे सदैव दूसरों की उपलब्धियों में भोक्ता की तरह घुलमिल जाते थे। अगस्त 1996 की किसी तारीख को मैं अपना शोध-प्रबन्ध जमा कर चुका था। जेएनयू का कावेरी हॉस्टल खाली कर आवास हेतु मुझे बाहर जाना था। जाने से पहले इतने प्यार देनेवाले गुरु को प्रणाम करना जरूरी लगा। इकतीस अगस्त की रात मिलने के लिए उनके घर गया। अगली सुबह बाहर जाना सुनिश्चित था। घण्टी बजाई। केदार जी ने स्वयं दरवाजा खोला। किंचित रुष्ट-से बोले, इतनी रात को क्यों? मैंने पैर छूते हुए कहा कि कल सुबह कैम्पस छोड़ रहा हूँ, इसलिए आशीर्वाद लेने आया हूँ। आशुतोष की तरह केदारजी तुरन्त आशीर्वाद की मुद्रा में आ गए। उन्होंने तरकीब बताते हुए कहा सुबह सेंटर जाकर अनस अहमद (अनस अहमद उन दिनों भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू में कार्यालय प्रभारी थे) से पता करो कि मेरी संस्तुति पर वाइवा होने तक तुम्हें हॉस्टल में रहने देने का कोई प्रावधान है या नहीं? मैंने कहा सर, दो-तीन महीने में दो-चार हजार रुपए बेशक बच जाएँगे, पर हॉस्टल के कनिष्ठ छात्रों के बीच मेरी बड़ी इज्जत है, तिकड़म से कमरे में डटा रहूँगा तो सिंगल सीटर रूम की प्रतीक्षा कर रहे छात्रों के बीच मेरी बड़ी फजीहत होगी। गुरुजी तत्काल सहमत हो गए। बोले सही कह रहे हो। नैतिकता बचाने की इस चिन्ता को बचाए रखना। पर जा कहाँ रहे हो? मैंने कहा सर, यहाँ से चौदह किलोमीटर दक्षिण, आयानगर नाम की एक कॉलोनी है, वहीं दो कमरे का एक मकान किराए पर लिया है। कुछ दिनों में माँ-पिता को ले आएँगे, वहीं रहूँगा। उन्होंने पूछा किराया पर ही लेना था, तो वहाँ क्यों? मैंने कहा सर, वहीं पर एक सौ गज जमीन खरीदी है, सोचा है वहीं रहकर धीरे-धीरे अपना घर बनवा लूँगा। ऐसा सुनते ही वे प्रसन्नता से उत्तेजित हो गए। किशोरवय की तरह उन्मादित-से, अपने बेटे सुनील जी को आवाज देने लगे सुनील! सुनील!! । सुनील जी तेजी से बाहर आए। इन्होंने उन्हें हाँफते हुए-से सूचना दी सुना तुमने! नवीन ने दिल्ली में जमीन खरीदी है। फिर मुझे बोले अब मुझे पता मत बताओ। अच्छे से व्यवस्थित हो जाओ, फिर आकर मुझे ले चलो, मैं उसे जाकर देखूँगा। जाने में परेशानी नहीं होगी। सुनील ने गाड़ी खरीद ली है। तुम आ जाना बस! मैं तो उनके इस उल्लास के मारे विहवल हुआ जा रहा था। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि वे आयानगर के मेरे दोनों घरों में आए थे।

एक बार मैंने उनसे पूछा सर आपकी कविता में कभी-कभी गजब का किस्सागो कहीं से झाँकता दिखता है। आपकी पीढ़ी के कुछ लोगों ने तो कहानी में हाथ आजमाया। कभी आपने कोशिश नहीं की? उन्होंने छूटते ही कहा कि थी। पर उन्हीं दिनों एक इतना बड़ा कहानीकार हिंदी में कहानियाँ लिख रहा था कि मुझे लगा, इनको पार करना असम्भव है। और, जब वैसी कहानियाँ न लिखूँ, तो फिर लिखूँ ही क्यों?

उनकी उदारता पर मैंने उनसे दो बार उत्तेजना में बात की। पर दोनों ही बार उन्होंने मेरी उत्तेजना को उड़नछू कर दिया। किसी अनाम मूल-गोत्र की अठपेजी पत्रिका में कुछ फिकरे-सिकरे गढ़नेवाले कवियों की कविताओं के बीच मैंने उनकी दो कविताएँ छपी देखी, तो जाकर उन्हें दिखाया और सवाल किया आप अपनी कविता जहाँ-तहाँ क्यों दे देते हैं? उन्होंने उसी मुस्कान के साथ सहजतापूर्वक उत्तर दिया जरा शान्ति से सोचो! तुमको लगता है कि मैंने ये कविताएँ खुद से दी होगी? मैंने कहा नहीं, ऐसा लगता तो नहीं है! उन्होंने कहा फिर उत्तेजित क्यों होते हो? ये कहीं पहले से छपी हुई कविताएँ हैं। अपने फायदे में इन्होंने इसका उपयोग कर लिया

है। मुझसे अनुमति न लेकर इन्होंने गलत अवश्य किया है! पर इस कारण उत्तेजना में खून जलाना उचित होगा? जाने दो!

एक बार ऐसी ही घटना लगभग 1997-98 में हुई। उन दिनों मैं नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया में था। मेरे अग्रज मित्र प्रो. सदानन्द साही उन दिनों गोरखपुर में हुआ करते थे। वहीं उन्होंने दो दिनों की एक संगोष्ठी आयोजित की थी। आयोजक मण्डल में प्रो. परमानन्द श्रीवास्तव और डॉ. राजेश मल्ल भी थे। जेएनयू से प्रो. केदारनाथ सिंह, प्रो. मैनेजर पाण्डेय के अलावा मैं, कृष्णमोहन, जितेन्द्र श्रीवास्तव। कई लोग आमन्त्रित थे। बनारस से श्रीप्रकाश शुक्ल भी आमन्त्रित थे। उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि केदार जी थे। मंच पर विशिष्ट अतिथि के रूप में कन्नड़ के कवि और नेशनल बुक ट्रस्ट के तत्कालीन अध्यक्ष सुमतीन्द्र नाडिग थे। केदार जी ने अपने भाषण में सुमतीन्द्र नाडिग को बेन्द्रे की परम्परा का कन्नड़ कवि कह दिया। मैं क्षुब्ध हो उठा। जब सत्र समाप्त हुआ, मैं टोह में लगा रहा और उन्हें अकेले पाकर सामने खड़ा हो गया।

-बोलो।

-आपने सुमतीन्द्र नाडिग की कविता पढ़ी है?

-तुमने पढ़ी है?

-एक कविता और कविती जैसी कोई चीज पढ़ी है।

-मैंने भी उतनी ही पढ़ी है। तुम्हें कैसी लगी?

-हिन्दी में ऐसी विचित्र कविता गढ़नेवालों को कवि की मान्यता सम्भवतः तीन सौ बरस पूर्व भी नहीं दी जाती होगी।

-सही कह रहे हो।

-फिर आपने उन्हें बेन्द्रे की परम्परा का कवि कैसे कहा?

-अब तुम बच्चे जैसी बात करने लगे। देखो, अपनी जिस किसी प्रतिभा से, मगर वे नेशनल बुक ट्रस्ट जैसी संस्था के अध्यक्ष हैं न? हिन्दीपट्टी में पहली बार आए हैं। थोड़ा सम्मान दिया जाना चाहिए।

-तो आप तारीफ में वही कहते न! इतना बड़ा तमगा क्यों दे दिया? हिंदी के लोग तो आपकी बात को प्रमाण मानते हैं। आपकी इस अनुशंसा के कारण वे कल से इन्हें सचमुच बेन्द्रे की परम्परा के कवि मानने लगेंगे!-(मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए) भविष्य के प्रति चिन्तित अवश्य रहा करो, भयभीत नहीं। कोई भी कवि अनुशंसा के सहारे बड़ा नहीं होता, अपनी कविता से बड़ा होता है। नाश्ता-वास्ता किए क्या?

बात आई-गई हो गई। गोरखपुर रेलवे स्टेशन के गेस्ट हाउस में ही हमलोगों को रुकाया गया था। रात में सारे लोग खाना खा रहे थे। मैं और कृष्णमोहन एक ही मेज पर खाना खा रहे थे। केदार जी एक तो खाते ही थे बहुत कम, चिड़िया की तरह, और वह भी बहुत जल्दी खा लेते थे। अपना खाना समाप्त कर वे सबकी मेज पर आ-आकर देखने लगे। उसी क्रम में हमारी मेज तक भी आए। उसी मुस्कान के साथ पूछा दोनों मैथिल क्या खा रहे हो ?

हमने कहा आलू पालक की सब्जी है और दाल-चावल है।

उन्होंने पूछाहैं? मछली नहीं है?

फिर इधर-उधर नजर दौड़ाई, राजेश मल्ल दिखे तो सवाल किया सदानन्द कहाँ हैं?

सदानन्द साही कहीं गए हुए थे। फिर आदेश दिया परमानन्द को बुलाओ!

हम दोनों (में और कृष्णमोहन) पशोपेश में पड़ गए कि हमारे खाने के लिए इतनी बात हो रही है! हम दोनों ने तय किया कि जल्दी से हम खाना सम्पन्न कर उठ जाएँ? इसी बीच परमानन्द जी आ गए। वे तो केदार जी के सामने सदैव ही मुस्कान लिए प्रस्तुत होते थे। केदार जी ने कहा आप लोगों को तो मालूम होगा कि ये दोनों मैथिल है। इन्हें बुलाया, तो मछली भी खिलाते! उनका रोष शान्त करने के लिए परमानन्द जी ने हल निकाला कि प्रबन्धकीय अव्यवस्था के कारण ऐसा हो न सका। अभी जो हुआ, सो हुआ, अगले भोजन में मछली अवश्य रहेगी।

अट्ठाइस वर्षों के रिश्ते का संस्मरण एक लेख में समाना तो असम्भव है! उनसे अन्तिम भेंट अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के प्राइवेट वार्ड में हुई थी। कोलकाता से रुग्ण अवस्था में दिल्ली लाकर उन्हें यहाँ भर्ती कराया गया था। प्रो. चन्द्रा सदायत जी के साथ उन्हें देखने गया था। रॉली अपने कुछेक शिष्यों के साथ उनकी परिचर्या में उपस्थित थी। कमरे में दाखिल हुआ, पैर छुए, सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा अच्छा हुआ कि तुम आ गए।

-कैसे हो?

-ठीक हूँ। आपकी अस्वस्थाता से चिन्तित हो गया था।

-अब ऐसे ही रहेगा। उमर भी तो हुई !

-नहींsssssss! कोई उमर नहीं हुई! अब आप ठीक हो गए हैं। जल्दी ही पुरानी दिनचर्या में लौट जाएँगे। नीले रंग की चरखाना लुंगी और आधे बाजू की सफेद कमीज में वे पहले की तरह स्वस्थ और सुन्दर लग रहे थे। रॉली ने बताया ठीक से खा नहीं रहे हैं। बाकी तो ठीक है। दो-एक दिन में घर चले जा सकते हैं। घर आ भी गए। घर जाकर मिलने का मन बना ही रहा था कि...

पर्वतों में अपने गाँव का टीला, पक्षियों में कबूतर, भाखा में पूरबी, दिशाओं में उत्तर, वृक्षों में बबूल, अपने समय के बजट में एक दुखती हुई भूल, नदियों में चम्बल, सर्दियों में एक बुढ़िया का कम्बल।हो जाने का दावा करने वाले केदारनाथ सिंह अपने पार्थिव शरीर से हमारे बीच बेशक नहीं हैं किन्तु वे अपने विचारों के साथ हर ठौर उपस्थित रहकर कह रहे हैं इस समय यहाँ हूँ/पर ठीक इसी समय/बगदाद में जिस दिल को/चीर गई गोली/वहाँ भी हूँ/हर गिरा खून/अपने अँगोछे से पोंछता/में वही पुरबिहा हूँ/जहाँ भी हूँ।

क्योंकि पृथ्वी के सारे निवासियों के नाम उन्हें एक जरूरी चिट्ठी लिखनी थी, जिसके लिए वे फुर्सत ढूँढ रहे थे, और जिस मसौदे में उन्हें सुझाव देना था किहर धड़कन के साथ/एक अदृश्य तार जोड़ दिया जाए/कि एक को प्यास लगे/तो हर कण्ठ में जरा-सी बेचैनी हो/अगर एक पर चोट पड़े/तो हर आँख हो जाए थोड़ी-थोड़ी नम/और किसी अन्याय के विरुद्ध/अगर एक को क्रोध आए/तो सारे शरीर/झनझनाते रहें कुछ देर तक।

आराध्यवर गुरुवर को शत-शत नमन!

प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू नई दिल्ली



लेखक की दुनिया/ कथा

एक सार्थक मना

डॉ. अंशु जोशी

एक खूबसूरत नीले-सफेद बादल पर सवार होकर वह अपनी पसंदीदा पाइन एप्पल आइसक्रीम खाते उड़ी ही जा रही थी कि बगल में कोई मधुर घंटियां बजाने लगा। वो मुस्कराई, पर घंटी की ध्वनि करकश होती चली गई और तब वसु को भारी पलकों के पार समझ आया, उसका फोन बज रहा था। जैसे-तैसे आँखें खोल उसने देखा, माँ का फोन था। उठाय तो सबसे पहले अपनी उर्नीदी आवाज के लिए डाँट खाई। 'वसु, दिन

कितना चढ़ आया है रे! अब तक सो रही है! नाश्ता भी गोल कर गई होगी। फिर बीमार नहीं पड़ेगी तो और क्या होगा!' 'मेरी प्यारी माँ, गुड मॉर्निंग वगैरह का रिवाज है कि नहीं तुम्हारे पास? रात बहुत देर तक काम करती रही। क्या करूं, न काम टाल सकती हूँ न नींद' 'सत्यानाश हो तेरे ऑफिस का, इसीलिए कह रही हूँ, कुछ दिन की छुट्टी ले और घर आ जा।' 'आ जाऊंगी माँ, हाल-फिलहाल तीन लोग पहले ही छुट्टी पर हैं, बॉस वैसे ही परेशान हैं। हाँ और सबका ठेका तो तूने ही ले रखा है न। बुखार में भी काम करती रही।' 'कोई नहीं माताराम, अपना दिन भी आएगा।' वसु उर्फ वसुंधरा व्यास ने माँ से दुनिया-जहाँ की डाँट और बातों के बाद फोन रखा और एक लंबी अंगड़ाई लेते हुए उठ गई। लैपटॉप बिस्तर पर ही पड़ा था उसे समेटा और वॉशरूम में घुस गई। माँ सच ही कहती है, शादी कर ली है उसने अपने काम से।

आज बिंदिया देवी का अब तक पता नहीं था। इतवार की इतमिनानी थी तो उसने भी उसे फोन नहीं किया। खुद ही एक कप चाय बनाई और बालकनी में आकर बैठ गई। फरवरी की गुनगुनी धूप का मौसम था। नीचे तरतीब से बने बगीचों में बच्चे खेल रहे थे। उनकी माएं धूप सेंक रही थीं। कुछ लोग घूम रहे थे। इस बड़ी-सी सोसायटी में बाहर आ जाओ तो अकेला नहीं लगता।

वसु ने मां-पापा से जिद करके ये फ्लैट लिया था, वरना वे उसे अकेले नहीं रहने देना चाहते थे। वसु का पैकेज अच्छा था और उसने कुछ तो माँ-पापा के उसके साथ आराम से रहने, कुछ अपनी प्राइवेट और कुछ इनवेस्टमेंट की दृष्टि से ये टू बेडरूम फ्लैट पिछले ही साल खरीदा था। शादी के बाद देखा जाएगा। अपनी जहीन और उसूलवादी बेटी को उसके माता-पिता जानते थे। यह भी जानते थे कि इतने साल हॉस्पिटल में सबके साथ एडजस्ट कर-करके परेशान हो गई है वसु। इसलिए फिर उन्होंने ज्यादा कुछ नहीं कहा। हाल ही में माँ उसके पास रहकर गई थी और बड़ी खुश थी। उसकी काम वाली बिंदिया उसकी पक्की हितैषी थी। होती भी क्यों नहीं, वसु कभी मदद करने में पीछे नहीं हटती थी। पैसे से, कपड़ों से, उसके बेटे की फीस भरने से, वो जितना बन पड़े अकेली बिंदिया की मदद कर ही देती है। हिम्मत वाली है बिंदिया। अपने शराबी पति को छोड़ चुकी है और फालतू के रिश्तेदारों के लिए न अपना पैसा खर्च करती है, न समय। तभी न बेटा इतना अच्छा निकल रहा है।

घंटी बजी तो वसु की तंद्रा टूटी। चाबी से खुद ही खोल लेती। हाँ, ताकि तुम और सो सके। बिंदिया उसे धकियाती-सी अंदर आ गई। 'ये क्या, तुम तो उठ गई, चाय भी पी ली, मैंने सोचा, रात भर काम किया होगा तो मैं देर से आई। नाश्ता तो किया ही नहीं होगा!' 'मेरी माँ, तू ये सब छोड़, बाकी का काम देख।' 'क्यों, कहीं जाओगी आज?' 'नहीं रे! कमजोरी भी है और काम करके थक भी गई हूँ।' 'घर पर ही रहूँगी। वैसे भी मुझे कौन बुलाएगा। आज थोड़े ही किसी का जन्मदिन है।' 'हूँ, सब अपने काम से तुम्हें बुलाते हैं। अपना काम निकालकर सब फुर। इतनी बीमार थी, तब भी तुमसे काम कराते रहे, कोई झांकने तक नहीं आया। वैसे पार्टी करनी हो तो वसु, तेरा घर कितना प्यारा है! पैसे चाहिए हों तो वसु, तू दे दे न प्लीज, जैसे वसु के पास तो पेड़ लगा है।' बिंदिया की कड़वाहट में वसु अपने प्रति स्नेह समझती थी। पर क्या करे, ऐसी ही थी वो। तभी ऑफिस में सब

उसे बुद्धू बनाते रहते थे। वो जानकर बनती रहती थी। कई बार कोशिश करने पर भी मना नहीं कर पाती थी और फिर झेलती थी। कई बार अपनी अच्छाई के चलते हर्ट भी हो जाती थी, फिल खुद ही खुद को मना लेती थी।

इसीलिए शादी के मामले में वो धैर्य बरत रही थी। उसकी प्यारी शकुल-सूरत, बढ़िया डिग्री, शानदार खानदान और बैंक बैलेंस पर बहुत लड़के और उनके माँ-बाप रीझ चुके थे। पर इस निर्णय में वो ठगा नहीं जाना चाहती थी। इसीलिए मां-पापा भी इस बारे में कोई जिद नहीं कर रहे थे, न ही कोई जल्दी मचा रहे थे।

बिंदिया ने उससे खाने के लिए पूछा तो उसने सिर हिला दिया। 'कुछ भी बना ले रे, मेरा तो मन ही नहीं करता आजकल। ' 'करेगा कहां से, एक तो काम से तुम फुरसत नहीं पाती, ऊपर से बुखार में भी अपना डब्बा लेकर काम करने बैठ जाती हो। पहले ही बोल दे रहे हैं, आज निशांत पिकनिक पर गया है। हम तुम्हारे साथ अच्छा खाना खाएंगे। सब बनाएंगे आज। खीर-पूड़ी, रायता, सब्जी और चटनी। ' 'अच्छा भाई, बना ले। ' वसु ने फोन चेक किया और नहाने घुस गई। नहा-धोकर पूजा कर उसे अच्छा-सा लगा। सोच ही रही थी कि कोई बढ़िया मूवी लगाए कि उसका फोन बज उठा। उसकी कलीग का था। अपेक्षित कारण से था। उसे वसु से काम में मदद चाहिए थी कि उसके कोई मेहमान आ गया था। वसु का मन किया कि उसे अच्छे-से झाड़ दे कि हर इतवार उसके यहां मेहमान आते हैं तो वो क्या करे। पर चुप रह गई। मूड थोड़ा उखड़ गया पर उसने सोचा शाम को कर लेगी काम। फिर किसी ने 5000 रुपए उधार मांगने के लिए फोन किया। वसु ने उसे शाम तक भेजने का वादा किया। यह सही है, पहले अपनी गर्ल फ्रेंड पर खूब उड़ाओ और फिर उधार मांगो। फिर घंटी बजने पर झल्लाई वसु ने देखा कि उसके चचेरे भाई का फोन था। यहीं पास की सायटी में रहते थे पर मिलना बहुत कम हो पाता था। बस त्यौहारों पर या बबलू के बर्थडे पर या जब मां-पापा आए। हर बार अनु को बड़े भाई-भाभी होते हुए भी वे अच्छी चपत लगाते थे। उनका सोचना था कि उसका खर्चा ही क्या होगा। पिछली बार तो हद ही कर दी थी। माँ को लेकर पहुंची तो पता लगा भाभी पार्लर चली गई है। फिर सबका खाना भी वसु के जिम्मे पड़ा और सब समेटना भी। माँ चिढ़ी भी थी, 'कितना चालाक है रे ये रिनी, क्या तू नौकरी नहीं करती? हमेशा नौकरी का राग अलापती रहती है। ' वसु कुछ न कह पाई। मन की बात तो माँ ने कह ही दी थी। तब से इन लोगों का यहां आना लगभग नहीं ही हुआ।

वसु ने फोन उठाया तो आश्चर्य! वे उसे घर बुला रहे थे, खाना खाने। 12 तो बज रहे थे। वसु को 1 बजे तक खाना चाहिए ही चाहिए या उसने पहले तो पहले बड़ी नरमी से टाला पर वे माने ही नहीं। 'मैं लेने आ जाता हूं तुम ठीक नहीं हो तो उनके इतने आग्रह को वसु कैसे टालती। बिंदिया को बताया तो वो खूब चिढ़ी। 'अरे, मैं हल्का-फुल्का कुछ खाके आ जाऊंगी, तुम तो अपना मेनू बनाकर तैयार रहो। दोनों खा-पीके, आराम करके मॉल चलेंगे। उसे आश्वस्त कर झटपट कपड़े बदल, फ्रिज से चॉकलेट का बड़ा-सा डब्बा ले वह भाई के घर चल दी। खाली हाथ कहीं भी जाना वह पसंद नहीं करती थी। साढ़े 12 के करीब वह पहुंच भी गई। भाई-भाभी ने तुरंत कोल्ड ड्रिंक सर्व किया और बैठ गए। भाभी पूरे मूड में बैठी थीं आज पर वसु तो उनके सवालियों के जवाब और फिर कॉमन बातों पर चर्चा से थोड़ी उकता गई थी। घड़ी देखी तो पाया डेढ़ बज रहे थे। भाभी थीं कि

उठ नहीं रही थीं। कुक रख ली क्या? वैसे तो हमेशा पैसे का रोना रोते रहते हैं। भले ही हर साल सोना और प्रॉपर्टी खरीदते रहते हों। वसु ने पूछ भी डाला और शर्मा गई, 'क्या सोचेंगे ये लोग!' फिर शायद भाई को याद आया होगा कि बुलाया तो खाने पर है, तो वे बीवी से मुखातिब हुए, 'रीनी डार्लिंग, क्या खिला रही हो?' 'वैसे तो नाश्ता इतना लेट किया था, पेट भरा-सा ही है। वसु, तुमने नाश्ता कब खाया?' वसु का मन हुआ साफ बता दें कि सुबह से सिर्फ एक कप चाय उसके पेट में गई है, पर उसने कहा नहीं। 'भाभी, मैंने तो जल्दी खा लिया था। ओह, तब तो खाना मंगा लेते हैं। 'मंगा लेते हैं मतलब?' वसु के प्रश्न पर भाभी खिलखिला दीं। अरे, स्विगी से मंगाऊंगी न! बोलो क्या खाओगी? वसु को इतना गुस्सा आया। वे लोग जानते थे कि अभी-अभी वह टायफाइड से उठी थी। बाहर का खाना उसे मना था। उसे बुलाया ही क्यों, अगर घर में कुछ बना ही नहीं सकते थे। 'सॉरी भाभी, मैं तो बाहर का खा नहीं पाऊंगी, मना है अभी'। 'अरे, कुछ नहीं होता। खा लो। मैं नान और करी ऑर्डर करती हूँ। आज तो मैं कुछ कुक करने वाली नहीं। बहुत थकी हुई हूँ।' वसु एकदम स्तब्ध, उसे समझ न आए कि फिर उसे इतने आग्रह के साथ बुलाया क्यों? तभी भाई ने इतने देर में अपना मुँह खोला। 'अरे, वो न रीनी की बहन आने वाली है। उसकी पहली पोस्टिंग यहीं टीसीएस में हुई है तो रीनी ने कहा' कहकर वे अपनी रीनी डार्लिंग की ओर देखने लगे। 'अरे, मैंने सोचा कि तुम वैसे भी अकेले परेशान होती हो तो मिनी तुम्हारे ही साथ रह लेगी। खाने-वाने में शेयर कर देगी। वैसे वो बाहर ही खाएगी। तो तय रहा अगले हफ्ते उसे उसके सामान के साथ हम तुम्हारे यहां आएंगे। तुम्हें उसकी कंपनी में बहुत मजा आएगा।' वसु कुछ क्षण एकदम चुप रही। एकदम स्तब्धता का माहौल बन गया था। भाई-भाभी कुछ और कह पाते इसके पहले एकाएक उसने फोन किया, 'बिंदिया, मेरी थाली लगा और पूड़ी उतार कर रख मैं 15 मिनट में आई।' फोन काटकर वह एकदम उठ ही गई, 'सॉरी भैया एंड भाभी डार्लिंग, मिनी के लिए आप कोई बढिया हॉस्टल देखो या अपने साथ ही रख लो। बबलू का साथ हो जाएगा। मैं अगले हफ्ते शायद घर जाऊँ।' 'पर' भाभी के स्वर को वह फिर से काटकर दृढ़ता से बोली और मुझे न तो अकेले रहने में कोई परेशानी है, न ही मिनी के साथ मजा आएगा। 'और मुस्कराकर तुरंत ही पलट बाहर निकल ली। इतना बड़ा झटका दिया था उसने कि खाना-वाना सब भूल गए थे उसके प्यारे भाई-भाभी।

उसे पता था ये लोग माँ-पापा को फोन कर कोई-न-कोई बकवास करेंगे। पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता अब। खुद माँ होती तो यही करती। नीचे उतरते-उतरते उसने दूसरा कॉल किया, 'सॉरी मेघा, मेरी तबीयत ठीक नहीं। तुम्हारी मदद नहीं कर पाऊंगी।' और बिना कुछ कहे-सुने फोन काट दिया। उसने घर पहुँचते-पहुँचते एक मैसेज और किया, 'सॉरी सिड, तुम कहीं और से इंतजाम कर लो, मैं पैसे नहीं भेज पाऊंगी।' 'किसी को कोई सफाई नहीं, बस एक सीधी-सी मना। घर पहुँच सैंडल फेंके, टीशर्ट, पैजामा अवतार में आई। बिंदिया से दोनों की थाली लगवाई और 'गुड्डी' लगा के बैठ गई। खूब मजे-से मांग-मांग के खीर खाई। बिंदिया एकदम चहचहा आई। इसी बीच माँ का फोन आया, 'अरे, इतनी जल्दी तूने कर दिया!' 'हां, बड़ी बातें बना रहे थे कि वसु का कुछ चक्कर-वक्कर है क्या? मैंने पूछा तुम लोगों का झगड़ा-वगड़ा है क्या, सगी बहन को साथ नहीं रख रहे तो एकदम चुप हो गए। बहुत अच्छा किया तूने।' हंस दी वसु।

अचानक पाया कि उसका मन कपास-सा हल्का हो गया है। किसी का भला करना अच्छा है पर अपनी आत्मा को मारकर नहीं। थोड़ा भला अब अपने आपका करेगी वह। अपनी आत्मा को परेशान करने से अच्छा है, एक सार्थक मना।

सहायक प्रोफेसर, जेएनयू नई दिल्ली

बदलता समय

दीपक कुमार प्रियदर्शी
एमए, रसियन (प्रथम वर्ष)

भोर हुए काफी समय हो चला था। मुर्गे अपने घर से निकलकर आँगन में चहलकदमी करते पुकार रहे थे। खूँटे से बंधी गाय और बछिया चारे के लिए हुँकार भर रही थी। उनकी आवाज सुनकर शोभा चारा लिए उनकी ओर जाते-जाते अपने पति रामू को जगाने का प्रयास करते हुए बोल रही थी, 'महाराज!ओ महाराज! आज सूरज उगे काफी समय बीत चुका। और कितना सोना है। किसी गाँव जाने की बोल रहे थे याद है?' शोभा की यह बातें कान में पड़ते ही रामू झट से खाट से उठ बैठा। मुंह धोकर स्नान करने के बाद रामू जल्दी-जल्दी तैयार हो अंदर वाले कमरे में से कुछ पुड़िया अपने कपड़े से सिले झोले में डालकर घर से बाहर निकल पड़ा। शोभा चूल्हे के पास से उठकर रामू को कुछ खाकर जाने के लिए आवाज दे रही थी लेकिन रामू के पास इतनी फुरसत ना थी कि वह उसे सुन पाता। उसने फटे पुराने कपड़े से ढका अपना स्कूटर झोपड़े से बाहर निकाला और दूसरे गाँव जाने के लिए निकल पड़ा। रामू को सभी महाराज ही कह कर पुकारते इसलिए वह भी यही नाम सुनने का आदी हो गया था। उसके स्कूटर की आवाज ही इतनी थी कि लोग आवाज सुनकर अंदाजा लगा लेते कि वह आ रहा है या जा रहा है। गली रास्ते में खेलने वाले छोटे बच्चे उसे और उसके स्कूटर को अनायास ही चिढ़ाया करते लेकिन रामू केवल हँस देता और आगे बढ़ जाता। इनमें से न जाने कितने बच्चों की तबीयत को उसने ठीक किया था। वो गाँव से बाहर तो निकल गया लेकिन अतीत की घटनाओं ने मस्तिष्क में जड़ जमा ली थी। जिनके याद आने पर आंखों से आंसू निकल आते।

आज के समय में आयुर्वेद की दवाइयों का जितना ज्ञान उसे था शायद ही आसपास के किसी गाँव या शहर के व्यक्तियों को हो। उसके गाँव के साथ ही आसपास के कई लोग अपनी बीमारी का इलाज करवाने उसके पास आया करते। उसके पिता की तरह वह भी एक अच्छा वैद्य साबित हुआ। बचपन से ही अपने वैद्य बनने के निर्णय पर उसे कभी अफसोस नहीं हुआ। जब भी पिता औषधीय वनस्पतियां लेने जाते रामू भी उनके साथ चला जाता। उनसे प्राप्त जानकारी के साथ यह कहना कि, 'मरीजों की निस्वार्थ रूप से सेवा करना ही सच्चा धर्म है। कर्म करते जाना कभी धन की आशा मत करना लोगों की दुआएं ही सबसे बड़ा धन होती हैं।' इस बात को बचपन में ही उसने मन में बैठा लिया था। यही कारण है कि, हाई स्कूल में अच्छे अंक प्राप्त होने पर भी उसने कोई दूसरे व्यवसाय की ओर जाने की नहीं सोची। पढ़ाई के साथ-साथ आयुर्वेद की पुस्तकों को पढ़ना, दवा बनाना इसकी और ही उसका झुकाव ज्यादा रहा। कुछ एक साल में ही उसने अच्छा नाम कमाया। पैसों का उसे कोई लोभ नहीं था, मरीज जो भी देते वह उसे स्वीकार कर लेता और ऊपरवाले का शुक्र मनाता। शुरू-शुरू में तो वह आश्चर्य का विषय बन गया था।

लंबी कद काठी, माथे पर गोल बड़ा चंदन का टीका, लंबी नुकीली मूँछ, गले में रुद्राक्ष और सफ़ेद मोतियों की मालाएं, हाथ में तांबे के मोटे कड़े, हाथ में अंगूठियां, आंख में थोड़ा सा दरदरा काजल उसके सांवले से थोड़े ज्यादा काले रंग को और भी आकर्षित बना देता। लुंगी और लंबा कुर्ता उसका पोशाक था। जो व्यक्ति उसे पहली बार देखता वह चिंता में पड़ जाता। सभी धर्म-जाति के लोग उसके पास आया करते। ना उसे किसी से शिकायत थी ना मरीजों को उससे। सब कुछ अच्छा चल रहा था। कुछ समय बाद ही चुनाव का समय आया और माधापुर में आने वाले सभी गाँव में चुनाव की रैलियां होना आरंभ हो गयी। जिसका असर शाम को दारु की बोतल और बीड़ी, तंबाकू की चर्चा में देखने को मिलता। जिसमें गाँव के बड़े-बूढ़े सभी शामिल होते माधापुर का टिकिट शिवाजी पाटिल को मिला था जो एक बड़ी जाति, बड़े घराने से संबंध रखते थे। आम लोगों में चर्चा का विषय था कि, शिवाजी पाटील को कैसे टिकट मिल गयी ? गाँव के वयस्क गंगाधर बाबू बोले, 'आजकल तो टिकट काबिलियत पर नहीं पैसा खर्च करने की क्षमता और बड़े-बड़े कनेक्शन के आधार पर दिए जाते हैं बाबा'। शिवाजी पाटिल ने शिक्षा भले ही कम प्राप्त की हो लेकिन कनेक्शन बनाने, जुगाड़, धोखाधड़ी, सच झूठ का उलटफेर में उन्होंने मास्ट्री की हुई थी यह पूरा गाँव जानता था। चुनावी वादों की लंबी लिस्ट तैयार थी जिसको चुनाव का मुद्दा बनाया जा सकता था। धर्म और जाति के मुद्दे के बिना राजनीति कैसी ? जिसका उनकी भाषाओं के साथ उनके वफादार लोग भी उपयोग करना जानते थे। इधर 7-8 घंटे का रास्ता तय कर शहरों में डॉक्टरों से इलाज करवाने वालों की संख्या बढ़ रही थी।

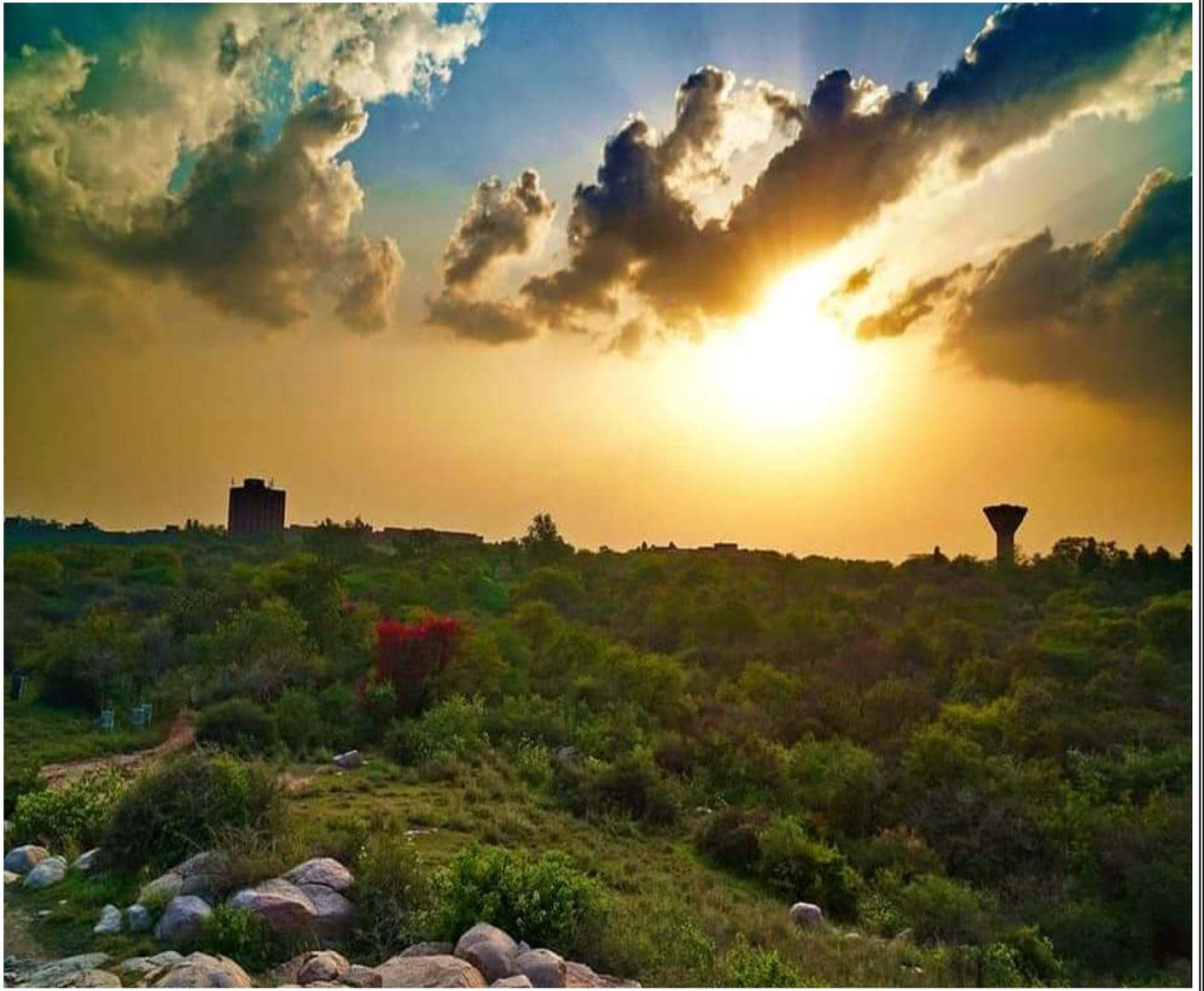
राबिया अपने पति महबूब से बुखार से जल रहे बच्चे को रामू के यहां ले जाने के लिए कहती है तब वह यह कहकर डांट देता है कि, 'कोई जरूरत नहीं है महाराज के पास जाने की और आगे से दवा के लिए भी मना कर देना। पैसे उधार मांगे हैं कल तक मिल जाएंगे तब शहर चली जाना लेकर'। लेकिन कम पैसे में और नजदीक में ही इलाज हो रहा हो तो दूर क्यों जाना? जब राबिया ने कहा तो महबूब ने उसे गुस्से से देखते हुए कहा कि हमारी बिरादरी के लोग तरह-तरह की बातें करने लगे हैं। पैसा जाए तो जाए तुझे क्या। शहर जाना या हकीम साहब के पास वह कुछ दवा पानी करेंगे ठीक हो जाएगा। और अब अगर तूने कुछ बोला तो मैं नहीं यह डंडा बोलेगा। ' बांस के डंडे की और इशारा करते उसने कहा। राबिया ने भी चुप रहना ही मुनासिब समझा। न केवल महबूब बल्कि अन्य जाति के लोग रामू से दूरियां बढ़ाने लगे थे। लोगों को पाटिल कुछ अच्छा नहीं लगता था लेकिन वे इस बात की कामना कर रहे थे कि पाटिल जीत जाए क्योंकि उसने जीतने के बाद गाँव में दवाखाना बनवाने का वादा किया था। जो तय था वही हुआ शिवाजी पाटिल जीत गया और गाँव वालों के किए उन वादों को भी भूल गया।

लेकिन इन सबके बीच रामू की परिस्थिति और भी दयनीय हो गई। अब मरीज उसके पास नहीं, वही उनके पास जाया करता। जिससे उसे बहुत कम आमदनी होने लगी थी। लेकिन वह कभी हताश नहीं होता। समीना जो कि रामू से दवा मंगवाया करती उसने एक दिन कह ही दिया। 'देखिए महाराज जी जहां हम रहते हैं वहां पर हम नहीं चाहते कि हमें आपकी वजह से कोई परेशानी हो। अगर आप यह सब कंठ माला पहनकर इस मोहल्ले में आते रहेंगे तो लोग हमारे बारे में तरह-तरह की बातें करेंगे। आप अपने पहनावे में सुधार लाएं वरना दूसरे दफे हमें दवाओं की जरूरत नहीं। वैसे भी शहरी दवा जल्दी मर्ज को ठीक कर देती है। सब कुछ बदल रहा

हैं आप कब बदलोगे ?' उसने दवा दी और निकल गया उसे कहने के लिए शब्द ही नहीं सूझ रहे थे। हताशा और निराशा से जब वह घर के अंदर दाखिल हुआ तो पत्नी को समझते देर न लगी कि, आज कुछ तो बुरा हुआ लगता है। आज से पहले कभी इस तरह उसे उदास नहीं देखा। उसे देखते ही लगता उसके भीतर से कुछ टूट गया हो मानो उसका व्यक्तित्व उससे छीना जा रहा हो। बाहर खाट पर सोते समय आसमान में चमकते तारों को टकटकी लगाए देख रहा था। उसके मन मस्तिष्क में विचारों का बवंडर उठने लगा। जो लोग बेहद स्नेह और आत्मीयता से उससे बात करते थे वह आज उसे कुछ नहीं समझते। 'मैंने हमेशा लोगों का भला चाहा और लोग मेरी बदहाली पर खुश हैं ऐसा क्यों ? अच्छा है कि तुम्हारा कोई जाति-धर्म नहीं इसीलिए शायद सब को रोशनी देते हो। जाति, धर्म, परंपराओं से घिरे लोग हमेशा अंधेरे में ही शामियाना बना लेते हैं।'

भूख और भाग्य जो करवाए वह तो होगा ही सोचते-सोचते कब उसकी आंख लग गई उसे भी पता नहीं चला। सुबह जब वह घर में दाखिल हुआ तो एक क्षण के लिए पत्नी ने उसे पहचाना नहीं। 'क्या हुआ ? मैं ही हूं रामू। हैरान न हो अब से मुझे ऐसे ही देखोगी।' कहकर स्नान करने चला गया। दूसरे कमरे के संदूक में अपनी सारी मालाएं, अंगूठियां रख दी। उस दिन को वह अब तक नहीं भूला। धर्म के पर्दे ने एक व्यक्ति का व्यक्तित्व छीन लिया था। सोचते हुए वह मरीज के घर पहुंचा लेकिन वहां दरवाजे पर ताला लगा देख पड़ोसी से पता चला कि वह सुबह ही शहर चले गए हैं डॉक्टर के दवाखाने। बोल रहे थे आपसे कहने को कि अब आप से दवा नहीं चाहिए। इन सब की जैसे उसे आदत हो गई थी। वह उल्टे पांव घर के लिए निकल पड़ा। सोचते हुए कि आज कुछ पैसे आ जाएंगे सोचा था। बहुत दिनों से घर का राशन खत्म हो गया था। शोभा भले ही मुझे इन सब के बारे में नहीं बताती लेकिन उसका मुर्झाया हुआ चेहरा सब कुछ बता देता है। 'उसने मन में कुछ निर्णय कर लिया था शायद उसकी आंखें लाल हो गई थी। शोभा उसी के इंतजार में बैठी थी जब वह आए तो साथ में खाना खाएंगे। हाथ मुंह धोकर दोनों खाने के लिए बैठे। खाने के नाम पर उसने दो कोर रोटी के खाए। जब सोने के समय शोभा ने उससे परेशानी की वजह पूछी तो खाट पर लेटा रामू बोला, 'समय बदल रहा है शोभा। व्यक्ति-व्यक्ति में विश्वास ना रहा। दो टूक रोटी के लिए लोग किसी की जान लेने तक को राजी हैं।'

धर्म, जाति, राजनीति, शिक्षा भी पैसा और वोट कमाने का साधन है। कल से हम मजदूरी करेंगे अब हमारी दवा पर किसी को भरोसा नहीं। उसके मन में आक्रोश की आंधी उठ रही थी। शोभा भी उसके दर्द को समझती थी इसलिए केवल सहमति से सिर हिला देना ही उसने उचित समझा। अपने आने वाले भविष्य की चिंता करते रामू ने आंखें बंद कर ली।



महक नींबू की

अथर्व द्विवेदी

बीए (ऑनर्स), चाइनीज अध्ययन केंद्र

हम सभी अपने जीवन में एक के बाद एक मुखौटे लगाते चले जाते हैं ताकि समाज के सामने खुद को प्रस्तुत और स्वीकार्य बना सके। कोई भी वास्तविकता को नहीं देखना चाहता जो सवाल उठाता है कि हम वास्तव में कौन हैं।

पुल की रेलिंग के किनारे पर खड़े होकर, मैं नीचे की काली गहराई को देखे जा रहा था। ऊपर, लोहे से टकराती आवाज़ और नीचे, समुद्र की आवाज़ रात के खालीपन को भरे जा रही थी। मन में आ और जा रही थी। सोचने की कोशिश की कि पानी से टकराने में मुझे कितना वक्त लगेगा या अगर मैं किसी तरह से बच गया तो क्या करूँगा। मैंने धीरे से अपनी आँखें बंद कर लीं। पता नहीं क्यों लेकिन मेरे जीवन में अब तक हुई सभी बड़ी और छोटी घटनाएं मेरी आँखों के सामने आने लगीं। शायद यह वही है जो लोग बात कर रहे थे जब वे मृत्यु के बहुत करीब थे।

मैं शायद 6 साल का था। पेड़ के तने के ऊँचे हिस्से पर बैठी तितली को पकड़ने की लगातार कोशिश करने के बाद, मैंने अपने पिताजी से उसे पकड़ने के लिए मदद मांगी। "पिताजी -पिताजी! वह तितली मुझे चाहिए! क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?" अपने नासमझ बच्चे के इस मासूम अनुरोध को सुनने के बाद उन्होंने जवाब दिया "मैं आज की तितली को पकड़ने में आप की मदद कर सकता हूँ लेकिन कल वाली का क्या होगा?"

"क्या मतलब है आपका?"

"क्या तुम हर बार अपने जीवन में उन चीजों के लिए रोते रहोगे जो तुम चाहते हो लेकिन तुम्हारी पहुंच से बाहर है? ध्यान से सुनो बेटा! मैं जीवन भर तुम्हारी मदद करने के लिए हमेशा तुम्हारे पास नहीं रहूँगा। अंत में यह केवल तुम पर निर्भर है कि तुम अपने जीवन में उन चीजों को प्राप्त कर सको जो तुम चाहते हो। तुम केवल अपने जीवन को दो तरीके से जी सकते हो- या तो उन चीजों में संतुष्टि पाओ जो तुम्हारे पास हैं या जो चीजें पसंद हैं, तुम उन्हें अपने दम पर प्राप्त करो और फिर उस संतुष्टि को प्राप्त करो जो उसके साथ आती हैं। तो, तुम अपना जीवन कैसे जीना चाहते हैं?"

चाहे जितना रो लूँ या नाराज़ हो लूँ, जीवन में बहुत बाद में पता चला मुझे सही मायने में उन शब्दों का वजन। वे शब्द मेरे आदर्श बन गए, मेरे जीने के उसूल। मैंने कभी किसी की प्रतीक्षा नहीं की और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए केवल आगे की दिशा में प्रयास करने लगा।

अचानक से कहीं से नींबू के हल्के और कोमल कश ने मुझे वर्तमान में वापस खींच लिया। "यह कैसी महक है?" मैंने मन में सोचा।

"आपकी ज़िप खुली है।"

"क्या?" मैंने अपनी आँखें खोलीं और देखा एक लड़की मेरे पास खड़ी थी। हमारी आँखें केवल एक सेकंड के लिए ही मिलीं जो उस रात की तरह काली थीं। उसकी त्वचा उतनी ही पीली थी जितना कि यह मानवीय रूप में संभव था। पुल की रात की रोशनी से मंदप्रकाश में, मैं उसकी कलाई के शीर्ष को थोड़ा देख सकता था: गंभीर अशुभता के साथ, गहरे क्षैतिज निशान वहाँ थे। शायद वह भी अपने जीवन में कभी आत्मघाती थी जैसे मैं अभी हूँ। उसने स्नीकर्स के साथ स्किनी जींस और एक नीली जैकेट पहनी थी।

"आपकी ज़िप खुली है।" मुझे उससे हटकर सोचने और जो उसने बोला उसे संशोधित करने के लिए कुछ सेकंड का समय लिया। शर्मिंदा करने वाले कुछ सेकंड के बाद, मैंने उससे पूछा "रात के इस समय आप यहाँ क्या कर रहे हैं?"

"कुछ खास नहीं। मैं स्टोर से समान खरीदने के लिए यहाँ आती हूँ। आपको रेलिंग पर खड़े देखा। आप?" "खैर मैं पुल से कूदने यहाँ आया था। जैसा कि कोई भी देखने के बाद बता सकता है।" इसे ज़ोर से कहने के बाद मुझे एहसास हुआ कि यह एक ही समय में कितना बेवकूफ और गंभीर था।

"हम्म।" उसने उत्तर दिया कि जैसे लोगों को यह कहते हुए देखना उसके लिए बहुत सामान्य था।

"बड़ी अजीब लड़की है।" मैंने सोचा।

मैं रेलिंग से नीचे आया और हम दोनों अँधेरे की ओर देखने लग गए।

"क्या आप मुझसे पूछेंगी नहीं कि मैं क्यों खुद को मारना चाहता हूँ या मुझे बताएंगी कि मुझे ऐसा काम करने से पहले अपने प्रियजनों के बारे में सोचना चाहिए और वह सब?"

"नहीं। क्या आप चाहते हैं कि मैं आपसे पूछूँ? मैं आपसे कुछ पूछने नहीं जा रही हूँ जिसका आपको साझा करने का कोई इरादा नहीं है या आप इस बारे में बात करने में असहज हैं।"

मैंने टिप्पणी की "आप जानते हैं कि यहाँ एक वयस्क के रूप में जीना आसान नहीं। यह एक कठिन काम है। आपको जिम्मेदारियाँ मिलती हैं, लोग आपसे उम्मीद करते हैं, आपको एक निश्चित तरीके से व्यवहार करना होता है। जैसा कि बच्चे करते हैं वैसे आपको मुफ्त पास नहीं मिलता है। वे शब्द मेरे गले में भारी गाँठ पीछे छोड़ गए।"

“एक औसत बच्चे के लिए सबसे बड़ी चिंता यह होगी कि डांट से बचने के लिए टूटी हुई फूलदान को कैसे छिपाया जाए। एक किशोर के लिए, सबसे बड़ी समस्या यह होगी कि उसके सपनों के विश्वविद्यालय में कैसे प्रवेश किया जाए, उसका सर्कल उसे कैसे देखता है। मुझे पता नहीं है वयस्कों के बारे में मैं अभी तक एक मत नहीं हूँ। मुझे यह बताइये- आपको क्या लगता है कि किसी के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्या है? ”

मैंने इसके बारे में पहले कभी नहीं सोचा। कुछ सेकंड बाद मैंने विश्वास के साथ उत्तर दिया “यह पूरी तरह से व्यक्ति पर निर्भर करेगा। कुछ लोग पैसा कहेंगे, कुछ लोग कहेंगे समाज में इज़्जत, कुछ अपने प्रियजन कहेंगे।”

“यह केवल उत्तर का हिस्सा होगा।” कहते ही उसने मेरी ओर देखा। यह पहली बार था जब हमारी आंखें ठीक से एक दूसरे से मिलीं। यह एकभेदी भावना थी। ऐसा लग रहा था कि वह मेरे चेहरे को देख नहीं, बल्कि मेरे अंदर देख रही थी। उन्होंने फिर आगे कहा, “यह उन चीजों या उनके विशेष लोगों के लिए कितनी दृढ़ता से भावनाएं रखता है।” यही भावना उन्हें जीवंत बनाती है। कट के निशान जो आपने पहले देखे थे, मैं आत्महत्या करने के लिए नहीं, बल्कि मैंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि मैंने जीवित महसूस करने के लिए अपनी संवेदना खो दी। मेरे लिए हर दिन एक जैसा था। बस उस एहसास से बचने के लिए मैंने खुद को काटना शुरू कर दिया।” उसने फिर से अपनी टकटकी को काले रसातल में समायोजित किया।

मैं शब्दों के लिए खो गया था। ठहराव था, वास्तव में लंबा, जिसमें वह पिच में काले रंग में देख रहा था और मैं, उसी समय अपने आपको आत्मनिरीक्षण करते हुए।

किसी तरह बहुत प्रयासों के साथ, मैंने बात शुरू किया “मेरी एक पत्नी और एक बेटी थी।” फिर से उसने मेरी तरफ देखा लेकिन इस बार उसकी आँखों में जानने की जिज्ञासा थी, एक कोमल जिज्ञासा। एक दिन वह बीमार पड़ गई और हमारी बेटी सिर्फ 10 साल की थी, तब उन दोनों की जिम्मेदारियाँ मेरे ऊपर आ गईं। डॉक्टरों ने अंततः हार मान ली और कहा कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो वे कर सकते हैं। मैं अपनी बेटी को स्कूल के लिए तैयार करता था, अपनी पत्नी का ख्याल रखता था और फिर ऑफिस जाता था। आदर्श पति और पिता होने की कोशिश कर रहा था। लेकिन मेरे प्रयासों की ईमानदारी के बावजूद, उसकी हालत बिगड़ती रही। चाहें मैंने कितनी भी कोशिश की या प्रार्थना की। प्रारंभिक 4-5 वर्षों के लिए मैं किसी तरह प्रबंधन करने में सक्षम था। मेरी बेटी ने भी समय-समय पर मेरी मदद की। लेकिन मैं थोड़ा-थोड़ा करके टूटने लगा था। चाहे वह काम हो या मैं खुद, मैं चीजों पर अपनी पकड़ खोने लगा।” मेरी आवाज भारी होने लगी। अब किसी भी समय। मैं उसे काफी भला बुरा कहने लगा कि यह सब उसकी गलती थी। अगर वह बीमार नहीं होती, तो हमारी बेटी स्कूल में संघर्ष नहीं करती, पिछड़ने की वजह से उनका सम्मान नहीं खोया होता। मैंने उसे हमारे बुरे वक्त के लिए दोषी ठहराया। हमारी बेटी यह सब चुपचाप सुन रही थी और कुछ ठीक होने का दिखावा कर रही थी। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से मेरी पत्नी गुजर गई। 18 साल होने के बाद, मेरी बेटी ने मेरे खिलाफ शिकायत छोड़ दी और मेरा

मानना है कि उसे ऐसा करने का पूरा अधिकार है। कहीं से सुना है कि उसकी शादी हुई और एक या दो साल पहले ही उसका एक बेटा हुआ है। अभी, नाना होने के बाद भी, मैंने अपने नाती को नहीं देखा। मेरा कोई दोस्त या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिससे मैं बात कर सकूँ। इतने लोगों से घिरे होने के बाद भी, मैं बिल्कुल अकेला हूँ। यह पहली बार है जब मैंने यह सब साझा किया है।" मैं अपनी सीमा पर था।

यह सब सुनने के बाद वह धीरे से बोली "अपनी भावनाओं से लड़िये मत।"

यही वह धक्का था जिसकी मुझे जरूरत थी। मैं रो पड़ा। मैं बहुत रोया और रोया और बहुत रोया। यहां तक कि मेरे घुटने भी जवाब दे गए। वह बस वहाँ खड़ी थी और मुझे अपना समय दिया कि मैं इसे बाहर कर दूँ। मानो मैं फिर से एक बच्चा था। मेरे फटने के अंत में, उसने मुझे अपनी हैंकी भेंट की, जिसे मैंने खुशी-खुशी लिया।

"मेरे पिता का अपने कार्यालय में एक सहकर्मी के साथ चक्कर चल रहा था।" वह मुझे अपने बारे में बताने लगी। मैं उसकी बात सुनने लगा जैसे उसने किया था।"मेरी माँ को उन पर शक था लेकिन कभी भी उनसे सामना करने की हिम्मत नहीं की। हम तीनों एक छत के नीचे रहने वाले अजनबी थे। मैं उठती, स्कूल में जाती और लौटते समय घर का लंबा रास्ता तय करती। घर जैसा महसूस नहीं होता था। हर दिन वे लड़ते थे। मैं बस अपना दरवाजा बंद करूँगा और अपने कानों को जितना संभव हो सके उतना ज़ोर से बंद कर लिया करती थी। हर कुछ हफ्तों में, मैं एक नए भगवान से प्रार्थना करती थी, लेकिन मेरा अनुरोध हमेशा एक ही रहता- चीजें वापस पहले जैसी हो जाएं। जब हम वास्तव में एक खुशहाल परिवार थे। लेकिन केवल निराशा ही मेरा इंतजार कर रही थी।

माँ में एक अकेली माँ के रूप में दुनिया का सामना करने की हिम्मत नहीं थी और मेरे पिता उनकी कमजोरी का फायदा उठाते। हालात झगड़े, हाथापाई पर उतर आए। आए दिन वह नशे में घर आते और हमसे मारपीट करते। मैंने बहुत कोशिश की अपनी माँ को हौसला देने की लेकिन उनकी आँखों में जीने की इच्छा ही नहीं थी। फिर किसी तरह, कॉलोनी की कुछ महिलाओं से बात करने के बाद किसी तरह, उसने पर्याप्त इच्छा शक्ति जुटाई, और तलाक माँगा। एक रात, हम दोनों भाग कर एक अलग शहर में चले गए। कुछ लोगों ने हमें एक अपार्टमेंट, मेरी नई स्कूल और उसकी नौकरी में मदद की। कुछ समय तक चीजें अच्छी थीं लेकिन एक दिन जब मैं स्कूल से लौटी, तो वह लिविंग रूम में था जो अपनी माँ पर खुद को मजबूर करने की कोशिश कर रहा था। मैं पहले की तरह ही असहाय महसूस कर रही थी। अचानक, मैं बाहर निकला। जब मैंने अपनी चेतना हासिल की, तो मुझे हर जगह खून दिखाई दिया। उसका शरीर फर्श पर था और मैं रसोई के चाकू को पकड़े हुए था। क्या हुआ मुझे महसूस करने में देर नहीं लगी। मैं कुछ भी नहीं सुन सकता, कुछ भी महसूस नहीं कर सकता, न ठीक से साँस ले सकता। मेरी माँ दौड़ती हुई आई और मुझे कसकर गले लगा लिया। मुझे उसकी सारी बचत दी और कहा मुझसे कहा दौड़ो और कभी पीछे मत देखो। और मैंने किया। निराश, हारा हुआ, सभी प्रकार की भावनाएं महसूस करते हुए मैं इस तरह रेलिंग पर खड़ा था कि आपकी तरह खुद को समाप्त कर दूँ। बस जब मैं कूदने वाला था, तो कोई आया और मेरी कही हुई हर बात सुनी। मैं भी तुम्हारी तरह रोया। बदले में

उसने मुझसे जो कुछ भी मांगा, वह सब उसी को सुनना था, जो सुनना चाहता था। तब से मैं इस उम्मीद में इस पुल पर आ रहा हूँ कि एक दिन मैं भी ऐसा ही करूँगा और वह दिन आज था।”

उसने सूरज को ऐसे देखा जैसे वह वास्तव में पल में जीवित होने का आनंद ले रही हो और कहा “आपको पता है, मुझे यह दृश्य बहुत पसंद है। हो सकता है कि आप हर रोज़ इस उम्मीद में जागें कि एक दिन आप अपने नाती को देखेंगे और वह आपको ‘नानाजी’ कहकर पुकारेगा।”

उस दिन मैंने कुछ सीखा। मेरे पिता जी गलत थे। आपकी लोगों को जीवन में आवश्यकता है। चाहे वह दुःख की परिस्थिति हो या सुख की।

यह घटना ३ महीने पहले की है। तब से, मैं वास्तव में एक व्यक्ति के रूप में विकसित हुआ हूँ। मैंने अपनी बेटी के साथ सामंजस्य बिठाया, हालांकि इसमें थोड़ा समय लगा। मैं बेसब्री से शाम का इंतजार करता हूँ ताकि मैं और मेरा नाती कुछ समय बिता सकें और कुछ यादें बना सकें। हर दिन अब मैं सूरज से पहले उठता हूँ और पुल पर यहां किसी का इंतजार करने के लिए आता हूँ कि मैं किसी को सुनने उसकी मदद कर सकूँ। मैंने उस लड़की को फिर कभी नहीं देखा, लेकिन लगता है कि कोई जरूरत नहीं है।

लेखक की दुनिया/ कथा

आज फिर गाँव मुस्कुरा रहा है

राजीव रंजन यादव

परास्नातक द्वितीय वर्ष, जेएनयू

‘अरे बाबू! उठे नहीं क्या अभी, थोड़ा जल्दी करो’, सुबह-सुबह भी आँख ही खुली थी कि रामू काका की तीव्र आवाज ने तुरन्त सक्रिय कर दिया। आज खेत में धान की रोपाई होनी है, उसी के लिए रामू काका शीघ्रता कर रहे हैं। थोड़ी ही देर में हम खेत की तरफ चल दिये। खेत से अभी थोड़ी दूर ही था कि एक मधुर गान सुनाई देने लगा, जिसके बोल थे – ‘रिमझिम – रिमझिम बरसे बदरिया, सखी रोपनिया करी ल ना’। यह गान मेरे ही खेत से आ रहा था। सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो गया था। यह एक ‘कजरी’ थी जिसे रोपाई करते-करते गाया जाता है। मेरे लिए यह कल्पना मात्र थी, जो आज प्रत्यक्ष हो गयी थी। मैंने पिता जी से सुना था कि उनके समय तक ये लोकगीतों की परम्पराएँ विलुप्त सी हो गयी हैं। ये लोकगीत जिसे सहगान भी करते हैं, वास्तव में शारीरिक पीड़ा के हरण के गीत हैं। पहले स्त्रियाँ स्वयं ही गेहूँ पीसना, धान कूटना, चूल्हें पर भोजन बनाना आदि अनेक परिश्रम के कार्य करती थी। इन कार्यों को रुचिकर बनाने हेतु ही यह सहगान गाये जाते थे। आज मशीनीकरण के इस युग में शारीरिक श्रम के अवसर ही छीन लिये हैं साथ ही उन यथार्थ सहगानों के भी जो जीवन की वास्तविकताओं से निरंतर अवगत कराते रहते थे। खैर, कोरोना महामारी के बीच परम्पराओं में वापस आने की इस छोटी पहल से ही मैं खुश हूँ।

पिछले कुछ दिनों से गाँव में भी एक अलग सी रौनक है। हर व्यक्ति के मुख पर एक संतोष तथा मुस्कान है। इस मुस्कान की वजह गाँव के वे युवा और जवान ही हैं जो धन के अभाव में शहरों की तरफ अभिमुख हो गए थे। कोरोना महामारी ने पुनः उन्हें अपने मूल की तरफ अग्रसर कर दिया। निश्चित रूप से इन परिवारों की आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई है, किन्तु वे प्रसन्न हैं। सम्भवतः शहर के चकाचौंध तथा दिखावेपन एवं गाँव के सरल-सहज वास्तविक जीवन के आनन्द का अन्तर उन्हें पता चल गया है। आज पुनः गाँवों में कजरी, चैती, पुरबिया सुनायी देने लगे, सावन के झूले की तैयारी होने लगी, दुआर पर खाट बिछने लगी, चौपाल सजने लगी। सब ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे निष्क्रिय शरीर में पुनः रक्त का संचार हो गया हो। आज फिर गाँव मुस्कुरा रहा है। आज नगरों से सुखकर गाँव ही लग रहा है, जहाँ किसी भी परिस्थिति में जीवन की आशाएं जीवन्त हैं।



शब्द नहीं दवा

सोनम

एमए, जेएनयू

शाम के समय अविनि का फोन बजा उसे लेकर वह दौड़ती ही छत पर आ गयी, फोन उठाते ही जैसे हैलो बोला, उधर से रोने के बाद की सिसकियों की आवाज आने लगी। उसने पूछा, “हैलो क्या हुआ आपको आप परेशान क्यों हैं और रो क्यों रहे हैं?” उधर से आवाज आयी “अगर किसी से गलती हो जाए और वो आपसे बार-बार माफी मांगे तो आप क्या करेंगी”, मैं माफ कर दूंगी” अविनि ने जबाव दिया और फिर से पूछा” आखिर बात क्या हुई है अपने इस समय कॉल की और वो भी रोते हुए। “अब बातों का सिलसिला निकल चला मोहित अपनी ही बातों में खोया रहा और अपने मन की अधूरी सी बातें बताने लगा जो शायद ही उसने कभी किसी से कही थी, बहुत ज्यादा जान पहचान नहीं होने के बाद भी आज अविनि उसके लिए उसके सबसे करीब थी। अविनि ने गंभीर होकर पूछा, “मैं कब से आपसे पूछे जा रही हूँ बोलो भी क्या हुआ और किससे गलती हो गयी?” मोहित से, आज उसके सब्र का बांध टूट गया और रोते हुए कहने लगा, “आज मैं अपने उस स्कूल के बाहर खड़ा हुआ जहाँ मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था, मेरी टीचर मुझे हमेशा कहती थी कि तुम्हारा भविष्य बहुत सुनहरा है और एक दिन तुम बहुत बड़े अधिकारी बनोगे, मेरी भी ख्वाहिश थी कि मैं पढ़ लिखकर एक अधिकारी बनूँ। पर मेरे पापा जिन्हें शराब की लत लगी हुई थी, उनके पास सरकारी नौकरी होने के बाद भी हम बिना बाप की संतान जैसे पढ़े, मेरी माँ जो हमारे बचपन के बाद से ही दूसरों के घरों में झाड़ू-पोंछा करने लगी थी, एक मात्र सहारा थी हमारे घर खर्च और पढ़ाई-लिखाई के खर्च चलाने का। उनके बीमार होते ही हम दोनों भाई मजदूरी पर निकल जाते और बहन घर का काम-काज देखती।

बचपन में विवेकानंद को पढ़ने के बाद भी, उस मजदूरी के बाद एक समय भोजन करके पढ़ने की सुध नहीं रही, लेकिन पढ़ाई जरूरी थी इसलिए आठवीं के बाद बारहवीं तक की पढ़ाई प्राइवेट की वो भी घर संभालते-संभालते, बचपन में ही मैं और मुझसे 2 वर्ष बड़े भाई ने एक जिम्मेदार पुरुष की तरह पूरे घर की जिम्मेदारी संभाली। हाँ, आज मैं एक सफाई कर्मी हूँ लेकिन इसमें मेरी गलती क्या है? यही कि मजबूरी में मैंने ये पेशा चुना, या जब मुझे काम की सख्त जरूरत थी अपने परिवार के लिए तब इसकी वजह से मेरा परिवार दो समय की पेट भर रोटी खा पाया, ये गलती थी। मैं थक गया हूँ इस समाज को अपनी सफाई देते-देते और आज वो लड़की जिसे मैंने खुद से भी ज्यादा चाहा वो मुझे इन्हीं बातों का ताना दे रही है। मैं टूट गया हूँ आज अविनि।”

उधर से बराबर सिसकियों की आवाज आ रही थी अविनि आज चुप थी। लेकिन उसका भी आज गला भर आया था। मोहित फिर से आँसू पोछ कर कहने लगा “क्या तुम्हें भी यही लगता है कि मेरी ही गलती है इस सब

में?’, अविनि ने कहा “मुझे नहीं लगता कि आपकी कोई भी गलती है ना ये काम करने में और न ही इसे अपनाने में।” शायद ये शब्द मोहित के घावों पर मरहम का काम कर गए।

अंकुर

प्रीति भारतीय

आसमान की नीली चमक उसकी आँखों में उतर रही थी, वह कुर्सी पर बैठी उन मिले जुले रंगों को निहार रही थी जो आसमान में छिटके हुए थे शायद वह खूबसूरती तलाश कर रही थी, उसे अपने पूरे व्यक्तित्व का ढांचा उस आसमान पर टुकड़े टुकड़े में चिन्हित होता दिखाई दे रहा था जिसके कुछ टुकड़े बड़े सादा और स्वच्छ वहीं दूसरे धूमिल, मलिन, कुछ अन्य रंगों से मिले जुले थे। वह अपने जीवन के बीते क्षणों के बारे में विचार कर रही थी, स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने जीवित हो उठी थीं जो उसे कांच के टूटे हुए किनारे की धार जैसे तेज प्रतीत हो रही थी, उसने एक लम्बी आह भरी तो उसकी आँखों में कुछ दर्द उतर आया मगर उसने उन आंसुओं को दूसरी ओर झटका और उठ खड़ी हुई, आँखों के सामने उसे थोड़ी दूर एक पौधा दिखाई दिया वह उस तक थोड़ा धीरे कदमों के साथ आगे बढ़ी मगर कुछ याद करके फिर पीछे मुड़ गई। उसने अपनी कुर्सी को उस पौधे तक खींचा और फिर कुर्सी पर बैठ गई, अब उसकी निगाहें उसी पौधे के ऊपर थीं जो अभी-अभी प्रस्फुटित हुआ था, जिसकी नर्म कोमल दो हरी पत्तियाँ अभी तक पूरी तरह से विकसित नहीं हुई थीं। उसको उस पौधे को देखकर खुशी हुई लेकिन उससे अत्यधिक वह हताश और मायूस हो गई वह कुंठित थी और उसका मन पीड़ा से भरा हुआ था क्योंकि वह इस नवीन के भाँति नया जीवन चाहती थी, मगर वह एक स्वप्न जैसा था।

उसने अपनी हथेली को देखा जो बिल्कुल सूखी और खाली थी। दो हफ्तों की बीमारी ने उसे तोड़ कर रख दिया था और उससे कहीं अधिक उसकी खुद की आंतरिक आवाज़ ने जो हर वक्त उसके साथ एक साथ के जैसी थी। इस पूरे पच्चीस साल के जीवन की अवधि को उसने इसी तरह नहीं काटा था बल्कि वह एक मधुर लड़की थी जो आशा और उम्मीद की किरणों को ही अपने जीवन का मूल आधार समझती थी। वही उसे जीने के लिए प्रेरित करते थे मगर आज वह इनको सिर्फ एक शब्द से ज्यादा कुछ नहीं समझती थी। उसने बैठे बैठे ही अपने पाँव को उठाया और उस पौधे के ऊपर रख दिया अब जब उसने उसको देखा तो उसकी पत्तियाँ मिट्टी में सनी थीं। वह उठी और अपने कमरे में चली आई और बिस्तर पर आहिस्ते से बैठ गई उसने पास मेज़ पर रखे गिलास को उठाया और बचे पानी को धीमे घूंट के साथ पीने लगी लेकिन उसे अपने गले में कुछ चुभन-सी महसूस हुई जैसे कुछ भारी सा उसके गले में अटक गया हो। उसने सोचा कि इस ठण्डे और बासी पानी के कारण उसे ऐसा लग रहा है मगर वह सच्चाई से आँख चुरा रही थी। उसे उस पौधे की याद आई जिसको उसने अभी थोड़ी देर पहले ही कुचला था वह उस पौधे के दर्द को बड़ी गंभीरता से महसूस कर रही थी। वह उसे उसके जैसा प्रतीत हो रहा था जिसे समय ने कुचल दिया था और चरित्रों ने तो सिर्फ इसमें अपना रोल अदा किया था।

शाम ने दिन पर अपना पहरा लगाना शुरू कर दिया था और देखते ही देखते चारों ओर उसी का बोलबाला था, यही वह समय है जब उसे भूले बिसरे दिन याद आते हैं गोया रात के काले परदे पर वह अपने ही

जीवन पर आधारित फ़िल्म देख रही हो मगर इस फ़िल्म का आखिरी दृश्य उसकी आँखों से ओझल था। जीवन के इस पड़ाव में जहाँ अब वह बिलकुल अकेले खड़ी थी और समय के पहिये ने उसके सभी करीबी लोगों को अपने काल में ले लिया था। अब जो बाकी भी थे तो वह उसकी बीमारी और बेबसी को देखकर दूर फिरते हैं। उसने अपने पति के मरने के बाद दुःख और पीड़ा को ही अपना जीवन समझ लिया था क्योंकि खुश रहना या खुश दिखना उसे सवालियों के घेरे में लाकर खड़ा कर देता था और वह अपने व्यक्तित्व को इस कटघरे में लाकर नहीं रखना चाहती थी। वह चाहती थी इन सभी बन्धनों से मुक्त हो जाये मगर समाज की बेड़ियाँ उसे अपने कदम नहीं बढ़ाने देती थीं। वह कई बार निश्चय करती कि वह इस अमूल्य जीवन का एक कतरा भी यूँ ही बेकार नहीं जाने दे सकती मगर वह उसके अन्दर की वो क्रूर आवाज़ जो हमेशा उसे समाज के इस खून चूसने वाले बनाये कानून और नियम की याद दिलाता रहता। मध्य रात्रि में नींद की खुमारी उसकी भीगी आँखों में समाने लगी थी और अब वह एक दूसरी दुनिया में थी जहाँ वह जैसा चाहे जब तक चाहे खुश रह सकती है, हँस सकती है और रंगों को देखकर उसके कदम पीछे नहीं हटते। वह इन्हीं सुनहरे स्वप्न में जीना चाहती थी और इनसे बाहर जीवन मृत्यु के समान था। वह स्वप्न में तैर रही थी और बाहर तेज़ हवाएं तथा बारिश होने लगी थी शायद कोई तूफान आने वाला था। बारिश ने सभी पेड़ों और पौधों पर पड़ी धूल को बड़ी कोमलता से धुल कर साफ और निर्मल कर दिया था और मिट्टी की खुशबू मन लुभा रही थी दृश्य बड़ा सुहाना था।

तूफान थम चुका था मगर वह आज देर दोपहर के बाद भी अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। आज उसे तेज़ बुखार था और पूरा शरीर शिथिल पड़ा था, लगता है आज उसके मन की मुराद पूरी हो जाएगी मगर जीवन के जीवित होते हुए मृत्यु का आगमन संभव नहीं है। आंतरिक संवेदना जो जीवन की आशा कर रही थी उसने उसकी साँसों को थमने नहीं दिया।

सुबह को उसकी सूखी आँखों में हरकत हुई और वह धीरे से अपने बिस्तर का सहारा लेकर उठी कुछ देर हिम्मत को जमा करने के बाद कमरे के बाहर आई। वह आज कई दिनों के बाद अपने लॉन में गई और कुर्सी की तरफ बड़ी अचानक उसे उस पौधे की ओर देखा जो आज बढ़ चुका था उस पर न सिर्फ पत्तियां आ चुकी थी बल्कि कुछ नई डालियाँ और कई फूल भी लगने लगे थे। उसको उस पौधे से आज हताशा का साथ नहीं मिला बल्कि उसे आज इस पौधे ने जीवन का सबसे अर्थपूर्ण सबक सिखा दिया था जो इतनी कठिनाइयों के बाद भी आज लहरा रहा है और दुनिया के इस रंग-बिरंगे मंच पर अपने जीवन की कला दिखाने के लिए कमर कस चुका था, उसकी आँखों में तेज़ था और आज वास्तव में उसके जीवन का उदय हुआ है।



काव्य-सृजन

गौरव भारती की कविताएं

शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू



1. जिजीविषा

होते हैं कुछ लोग

जो बार- बार उग आते हैं
ईंट और सीमेंट की दीवार पर पीपल की तरह
इस उम्मीद में कि-
'एक दिन दीवार ढह जाएगी'

2. अल्पविराम

लंबे वाक्य में
पूर्णविराम से पहले का
अल्पविराम हो तुम
जहाँ आकर मैं
ठहरता हूँ
सुलझता हूँ
और अंततः संप्रेषित होता हूँ ।

3. जैसे लौटता हो कोई अपनी याद में

शहर से लौटना
अपने गाँव
लौटना नहीं होता
हमेशा के लिए
वह होता है
कुछ-कुछ वैसा ही
जैसे लौटता हो कोई अपनी याद में
संचारी भाव लिए
शहर से लौटने वाला हर इंसान
साथ लाता है अपने थोड़ा सा शहर
जो फैलता है गाँव में
संक्रमण की तरह
और फिर लौटते हुए
वह छोड़ जाता है
पगडंडियों पर अपनी बूट में फंसी सड़क
वह छोड़ जाता है
दूसरी पतंगों को काटने का स्थायी भाव

वह छोड़ जाता है
अपने पीछे एक चमकदार बल्ब
जिसकी मरम्मत नहीं हो पाती
फ़्यूज हो जाने पर।

4 लौटना

खंडित आस्थाएं लिए
महामारी के इस दुर्दिन में
हज़ारों बेबस, लाचार मजदूर
सभी दिशाओं से
लौट रहे हैं
अपने-अपने घर
उसने नहीं सोचा था
लौटना होगा कुछ यूँ
कि वह लौटने जैसा नहीं होगा
उसने जब भी सोचा लौटने के बारे में
लौटना चाहा
मनीऑर्डर की तरह
वह लौटना चाहता था
लहलहाते सरसों के खेत में ठुमकते हुए पीले फूल की तरह
वह लौटना चाहता था
सूखते कुँए में पानी की तरह
वह लौटना चाहता था
अपने कच्चे घर में पक्की ईंट की तरह
वह लौटना चाहता था
लगन के महीने में
मधुर ब्याह गीत की तरह
वह लौटना चाहता था
चूल्हे की आँच पर पक रहे पकवान की तरह
वह लौटना चाहता था
कर्ज के भुगतान की तरह
वह लौटना चाहता था
पत्नी के खुरदरे पैरों में बिछुए की तरह

वह लौटना चाहता था
उसी तरह, जैसे
छप्पर से लटकते हुए बल्ब में लौटती है रौशनी अचानक
उसने नहीं सोचा था
कभी नहीं सोचा था
लौटना होगा कुछ यूँ
कि वह लौटने जैसा नहीं होगा।

5. गुमशुदगी से ठीक पहले

शहर मुझे दीमक सा खाए जा रहा है
में लगातार खुद को बचाने की नाकाम कोशिश में जुटा हूँ
गणित ने जिंदगी के तमाम समीकरण बिगाड़ दिए हैं
आईना मुझे पहचानने से इंकार करने लगा है
बगल वाले कमरे में बच्चा रोज रात भर रोता रहता है
मुझे थोड़ा सा अँधेरा चाहिए
यहाँ फिजूल की रौशनी बहुत है
में लुका-छिपी का खेल खेलना चाहता हूँ
लेकिन यहाँ छुपने की जगह नहीं है
बहतर सीढियाँ चढ़कर
में पांच मंजिले मकान की छत पर जाता हूँ
मगर चाँद धुंधला नजर आता है
मुझे अपनी आँखों पर शुबहा होने लगा है
में लौटता हूँ
अपनी स्मृतियों में
और इस तरह खुद में लौटता हूँ
में याद करता हूँ तुम्हें
और इस तरह खुद को याद रखता हूँ।

6. किसी रोज़

किसी रोज़
हाँ, किसी रोज़
में वापस आऊंगा जरूर

अपने मौसम के साथ
तुम देखना
मुझ पर खिले होंगे फूल
उगी होंगी हरी पत्तियाँ
लदे होंगे फल
में सीख कर आऊंगा
चिड़ियों की भाषा
मांग कर आऊंगा तितलियों से थोड़ा रंग
ओढ़ कर आऊंगा समूचा आकाश
तुम देखना
में भी महकूँगा किसी रोज़ फूलों की तरह
बस बचा रह जाऊँ किसी तरह
और बीत जाए यह खराब मौसम।

7. याद

एक वक़्त के बाद
नींद नहीं आती
बस! तुम्हारी याद आती है
तुम्हारी याद में
में गुड़हल सा खिलता हूँ
महुए सा टपकता हूँ
भरता हूँ नदी की तरह
और मोगरे सा महकता हूँ
तुम्हारी याद में
चलता हूँ तुम्हारे साथ भींगते हुए
और बहुत प्यार से लेता हूँ
तुम्हारा नाम
हाँ, तुम्हारे नाम का एक अर्थ है मेरे जीवन में
जहाँ से मैं परिभाषित हो सकता हूँ



साक्षात्कार

प्रो एम. जगदीश कुमार (कुलपति जेएनयू) से डॉ. मलखान सिंह की वार्ता



मलखान सिंह – सर ! हमारा विश्वविद्यालय अपनी 50वीं वर्षगाँठ की स्वर्ण जयंती मना रहा है। यह आपके कार्यकालका ऐतिहासिक और गौरवशाली पल है। इसके लिए आपको बहुत-बहुत बधाई ! सबसे पहले आप अपनी प्रारम्भिक यात्रा के बारे में कुछ बताइए ?

कुलपति – देखिये, मैं नहीं मानता कि मेरी यात्रा आप सबकी यात्रा से कहीं भी अलग है। हम सबने जब अपने छात्र जीवन की शुरुआत की, तब हम सभी के अपने जीवन में कुछ उद्देश्य एवं लक्ष्य थे। हम कुछ-न-कुछ लक्ष्य हासिल करना चाहते थे ताकि अपने देश और समाज के लिए कुछ योगदान कर सकें। मैंने भी आप ही की तरह शिक्षण एवं शोध को अपने व्यवसाय के रूप में चुना ताकि अपने योगदान के माध्यम से मैं समाज को कुछ सकारात्मक दे सकूँ। इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरी यात्रा उन सभी की यात्रा से बिल्कुल भी अलग नहीं है जो अपने जीवन एवं शिक्षण के क्षेत्र में बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। हम में से कई लोग गांव के स्कूलों से आए हैं तथा हम में से कई ने अपनी मातृभाषा में पढ़ाई की है, शायद जिसने एक तरह का जमीनी दिमाग दिया है। हमारे देश के लिए बहुत कुछ करने की जरूरत है क्योंकि हमने इन परिस्थितियों को देखा है। जिन कठिन परिस्थितियों से हम आए हैं, उन परिस्थितियों में अभी भी कई और प्रतिभाशाली लोग ग्रामीण पृष्ठभूमि से आ रहे हैं। इसलिए मुझे लगता है कि हम जैसे लोगों के लिए जो उन परिस्थितियों से आए हैं, समान पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों के लिए वह चिंता और सहानुभूति है और मैं देख सकता हूँ कि जब मैं गाँव से शहर की पृष्ठभूमि में आया तो शुरू में कितना मुश्किल था लेकिन फिर आंतरिक शक्ति को पहचानते हुए यदि आप कड़ी मेहनत करते हैं, तो आप चुनौतियों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं और यही वजह है जिसने मुझे शिक्षा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। यही मैंने अपने जीवन में पाया है कि जिन सीमाओं और परिस्थितियों से आप आए हैं, यदि आप प्रतिबद्धता के साथ कड़ी मेहनत करते हैं, तो आपको अपने लिए निर्धारित किए गए लक्ष्य को प्राप्त करने में कोई समस्या नहीं होगी।

मलखान सिंह - इतनी लंबी यात्रा करने के बाद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तक पहुँचकर आपको कैसा लगा ?

कुलपति – मैं आपको अपने माता-पिता द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में भी बताना चाहता हूँ। वे एक किसान परिवार से आते हैं लेकिन फिर भी वे मुझे पढ़ाना चाहते थे। वे जल्दी नौकरी नहीं कराना चाहते थे। जब मैंने डिग्री पूरी की तो मुझे नौकरी मिल सकती थी लेकिन उन्होंने कहा कि आप जितनी पढ़ाई करना चाहते हो उतनी पढ़ाई करो। आप जानते हैं कि गाँव की पृष्ठभूमि से माता-पिता हैं फिर भी वह मुझे ज्यादा से ज्यादा पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। मेरा मानना है कि कई ऐसे माता-पिता हैं जो अपने बच्चों को प्रोत्साहित करते हैं और जिसकी वजह से हम में से कई यहां जेएनयू जैसे प्रतिष्ठित संस्थान में हैं। इसलिए मुझे हमेशा लगता है कि हम विगत समय को देखते हैं, हमें अपने माता-पिता के प्रति समर्थन और सहायता के लिए आभारी होना चाहिए। इसका उपयोग करते हुए एक अच्छे माता-पिता बनकर एक उदाहरण पेश करना चाहिए। हम अपने बच्चों को प्रथानुसार निश्चित कार्यों को करने के लिए बाध्य करने के बजाए बच्चों को उनकी पसंद का क्षेत्र चुनने

के लिए प्रोत्साहित करें, जहाँ वे अपना सर्वश्रेष्ठ दे सकें। हालांकि कई छात्र कुछ पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेते हैं, लेकिन वे अच्छा नहीं करते हैं क्योंकि केवल माता-पिता के दबाव के कारण उन्होंने पाठ्यक्रमों में प्रवेश लिया था। अतः हमारे माता-पिता के उदाहरण से सीख लेकर हमें अपने बच्चों को जो वह करना चाहते हैं, उसे करने की पूरी छूट देनी चाहिए तथा उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।

मलखान सिंह - जब आपने इस विश्वविद्यालय में कार्यभार संभाला, तब उस समय आपके सामने सबसे बड़ी चुनौती क्या थी ?

कुलपति- चाहे विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में अथवा शिक्षक के रूप में शिक्षा को अधिक न्यायसंगत और अधिक सुलभ बनाना ही हमारी प्राथमिक चुनौती है और एक प्रभावी शिक्षक बनना दूसरी चुनौती है। क्योंकि जब तक हम प्रभावी शिक्षक, छात्रों के लिए अच्छे परामर्शदाता नहीं बनते तो वे अच्छे श्रोता कैसे बनेंगे। वे सृजनात्मक और नवाचारी इंसान कैसे बनेंगे। अतः मैंने यह दूसरी चुनौती देखी है। तीसरी चुनौती मुझे जो लगती है वह यह है कि आप जानते हैं कि हम सब शिक्षक हैं, लेकिन कभी-कभी मैं देखता हूँ कि हम लीक से हटकर नहीं सोचते जो कि आज की आवश्यकता है। हमारा दिमाग एक खास तरीके से सिखाने के लिए अनुकूलित होता है। लेकिन आज के युवा वर्ग अलग तरह के हैं। उनके पास बहुत सारी जानकारी है। वे बहुत कुछ करना चाहते हैं। वे बहुत ऊर्जावान होते हैं। इसलिए, शिक्षक के रूप में हमें भी इस पीढ़ीगत परिवर्तन को देखना होगा तथा अपने छात्रों के साथ जुड़ने के लिए नए तरीकों को अपनाना होगा। कक्षा में नवाचार होना चाहिए। कक्षा में अधिक से अधिक चर्चा होनी चाहिए। हमें अपने छात्रों को कक्षा में अपने अधिकार के बारे में सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। एक शिक्षक के रूप में यदि मैं किसी थियोरम या अवधारणा पर चर्चा करता हूँ तो हमें छात्रों को उससे हटकर सवाल करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। क्योंकि प्रश्न करने से ही नया ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। लेकिन हम अपने शिक्षकों को इसके प्रति संवेदनशील कैसे बनाएं क्योंकि हम मानते हैं कि जिस किसी के पास पीएचडी डिग्री है, वह स्वतः ही एक अच्छा शिक्षक, एक अच्छा मेंटर होगा। लेकिन यह सच नहीं है। अतः सभी उच्च शिक्षण संस्थान हमारे शिक्षकों को संवेदनशील बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करने पर विशेष ध्यान दें ताकि वे प्रभावी शिक्षक बन सकें। मुझे लगता है कि यह सबसे बड़ी चुनौती है।

मलखान सिंह - सर ! आपका कार्यकाल एक सफल और सार्थक कार्यकाल रहा है । किसी भी प्रशासक के कार्यकाल के दौरान उसकी कुछ उपलब्धियां होती हैं, जिससे लोग बहुत कुछ सीखते हैं। इसलिए आप अपने कार्यकाल की कुछ उपलब्धियां बताइये ?

कुलपति - देखिए, यह कोई व्यक्ति नहीं है जो सिस्टम में बदलाव ला सकता है। यह हमेशा सामूहिक प्रयास होता है। इसलिए जेएनयू ने विश्वविद्यालय में शैक्षणिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं में सुधार के मामले में कुछ भी अच्छा किया है, इसका श्रेय पूरे शिक्षण संकाय, कर्मचारियों और छात्रों को जाता है। एक कुलपति के रूप में मैं अपने छात्रों, शिक्षकों और कर्मचारियों की आकांक्षाओं को साकार करने का सूत्रधार हूँ। इसलिए मैं कहूंगा कि हमें यह देखना चाहिए कि एक प्रणाली के रूप में हम क्या बदलाव

लाए हैं? हमें किसी व्यक्ति विशेष को जिम्मेदार नहीं ठहराना चाहिए। इसलिए, हमारे विश्वविद्यालय में निश्चित रूप से बहुत सारे बदलाव हुए हैं। पहली बात यह है कि हमारे विश्वविद्यालय के लिए प्रायोजित अनुसंधान निधि लाने की ओर हमारा ध्यान गया और यह संभव था क्योंकि आर एंड डी सेल फैकल्टी को प्रोजेक्ट प्रस्ताव को लाने के लिए और प्रायोजित शोध को सही करने के लिए प्रोत्साहित करता है और एक अच्छी बात जो हुई है वह यह है कि यदि आप उस फंडिंग से तुलना करें जो हमारे पास 2016 में थी और जो हमारे पास 2020 में है, तो फंडिंग तीन या चार गुना बढ़ गई है जो एक पर्याप्त वृद्धि है। क्योंकि हमें केवल सरकारी समर्थन पर निर्भर नहीं होना चाहिए। विश्वविद्यालय को अपने आंतरिक संसाधनों को बढ़ाने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। जब हम आंतरिक संसाधनों की बात करते हैं, तो यह छात्रों की ट्यूशन फीस को बढ़ाकर कभी नहीं हो सकता। जेएनयू में छात्रों की ट्यूशन फीस जस की तस बनी रहेगी। लेकिन आंतरिक संसाधन जुटाने के और भी कई तरीके हैं। हमें इस आंतरिक संसाधनों की आवश्यकता क्यों है? प्राथमिक बात यह है कि हमें सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के कमजोर छात्र मिलते हैं, खासकर वंचित तबके से। उन्हें विश्वविद्यालय में बेहतर सुविधाएं प्रदान करना उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करना हमारी प्राथमिकता है। आज हमारे आंतरिक संसाधन अपर्याप्त हैं। यही एक कारण है कि हमें आंतरिक संसाधन जुटाने की जरूरत है। आप जानते हैं, प्रौद्योगिकी बहुत तेजी से विकसित हो रही है, इसलिए हमारी प्रयोगशालाओं को उन्नत करने की आवश्यकता है और यह तभी संभव है जब हमारे पास आंतरिक संसाधन हों। इसलिए हमें कुछ ऐसे क्षेत्रों की पहचान करना है जिनमें हम कड़ी मेहनत कर सकते हैं और आंतरिक संसाधनों को बढ़ा सकते हैं। एक उदाहरण के लिए हमने हाल ही में अटल इनक्यूबेशन सेंटर जेएनयू फाउंडेशन फॉर इनोवेशन की स्थापना की है और इसके लिए हम कई स्टार्टअप कंपनियों स्थापित करना चाहते हैं। यह हमारे विश्वविद्यालय के लिए आय का स्रोत होगा और दूसरा हाल ही में हमने विदेश से आए इंजीनियरिंग छात्रों को स्कूल में प्रवेश देने का भी निर्णय लिया है। हम 20% अतिरिक्त छात्र ले सकते हैं। अब उनके लिए भारत सरकार द्वारा तय की गई एक अलग ट्यूशन फीस होगी जो कि हमारे भारतीय छात्रों से वसूले जाने वाले शुल्क से अलग है और यह आय का स्रोत हो सकता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो हमने की है वह है ई-लर्निंग के लिए एक विशेष केंद्र स्थापित करना। जैसा कि आप जानते हैं कि हम अपने विश्वविद्यालय में हर साल लगभग 2500 छात्रों को ही प्रवेश देते हैं। दूसरी ओर लाखों छात्र अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा की तलाश में हैं। इसलिए विभिन्न स्कूलों से बड़ी संख्या में संकाय ई-लर्निंग के लिए विशेष केंद्र में शामिल हुए हैं जिसका उद्देश्य कई क्षेत्रों में ऑनलाइन डिग्री प्रदान करना है जिसमें, प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए छात्रों की बड़ी संख्या होने के कारण हम उन्हें अपने ऑनलाइन कार्यक्रम में प्रवेश देने की योजना बना रहे हैं। इसलिए यह एक और बात है जो हमने आंतरिक संसाधनों पर अपना ध्यान केंद्रित रखने के लिए की है। दूसरी चीज जो हमने की है वह है हमारी प्रवेश प्रक्रिया को पारदर्शी और वस्तुनिष्ठ बनाना। क्योंकि बड़ी संख्या में छात्र विश्वविद्यालय में आवेदन कर रहे हैं। यदि आप लिखित निबंध के रूप में परीक्षा आयोजित करते हैं, तो निश्चित समय में उन उत्तर पुस्तिकाओं का परीक्षण करना बहुत मुश्किल होगा और यह बहुत वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं हो सकता है। जहां एक छात्र के एक या दो

अंकों का अंतर भी छात्र के जीवन में बहुत बड़ा बदलाव ला सकता है। इसलिए, हम इन परीक्षाओं को अत्यधिक पारदर्शी और वस्तुनिष्ठ बनाना चाहते थे। इस अर्थ में कि परीक्षा में कोई मानवीय त्रुटि न हो इसलिए हमने परीक्षा को लिखित निबंध प्रकार से कंप्यूटर आधारित एम सी क्यू प्रकार की परीक्षा में स्थानांतरित कर दिया और अब यह राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी (NTA) द्वारा आयोजित की जाती है। मुझे लगता है कि यह बहुत महत्वपूर्ण सुधारों में से एक है।

मलखान सिंह - सर! कुछ बातों का उल्लेख मैं भी यहां करना चाहूंगा जैसे छात्रावासों में इनफ्रास्ट्रक्चर चेंज हुआ, प्रशासनिक सुधार हुआ इसके अलावा नए सेंटर्स का निर्माण, हिन्दी कार्यान्वयन निदेशालय की स्थापना और कोरोना काल में औषधियों का वितरण, डिजिटल वर्क कल्चर, औषधीय एवं फलदार वृक्षों का रोपण, एनसीसी की स्थापना आदि बहुत-सी उपलब्धियां हैं, जिनके लिए हमेशा आपको याद किया जाएगा। इसके बावजूद दुनिया के शीर्ष 100 विश्वविद्यालयों की सूची में हमारा विश्वविद्यालय स्थान नहीं बना पाया, इसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

कुलपति - हमारा विश्वविद्यालय भाषा, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के लिए जाना जाता है। कुछ विषयों में हम अच्छे हैं, लेकिन एक विश्वविद्यालय के रूप में यदि आप शीर्ष 100 तक पहुंचना चाहते हैं तो हमें अपने अकादमिक कार्यक्रम में विविधता लाने की आवश्यकता है। इसमें विविधता लाने के लिए हमें अपनी आंतरिक शक्ति का उपयोग करने की आवश्यकता है और यही हमने पिछले 4-5 वर्षों में किया है। यदि आपने स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग और स्कूल ऑफ मैनेजमेंट एंड एंटरप्रेन्योरशिप पर ध्यान दिया है, तो यहां शुरू किए जा रहे प्रमुख स्कूलों के दो उदाहरण हैं। कुछ लोगों ने कहा कि हम अपने विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट स्कूल क्यों चाहते हैं? लेकिन अगर आप जेएनयू अधिनियम को देखें, तो हमारे संकल्प बहुत स्पष्ट रूप से कहते हैं कि हमें इंजीनियरिंग, वाणिज्य, चिकित्सा विज्ञान, सर्जरी आदि में स्नातक और स्नातकोत्तर कार्यक्रम प्रदान करना अनिवार्य है। इसलिए हम केवल अपनी वैधानिक आवश्यकताओं का पालन कर रहे हैं और इन स्कूलों की स्थापना कर रहे हैं। यही प्रमुख कारण है कि हमने इन नए स्कूल केंद्रों की स्थापना की जैसे आपदा प्रबंधन के लिए विशेष केंद्र, उत्तर-पूर्व भारत के लिए विशेष केंद्र और हाल ही में सिस्टम मेडिसिन के लिए विशेष केंद्र। हमने इसे केवल अकादमिक कार्यक्रमों के विस्तार के लिए स्थापित किया है। इसलिए अकादमिक कार्यक्रम में विविधता लाना एक और महत्वपूर्ण बात है और हाल ही में आपने यह भी देखा होगा कि हमने आयुर्वेद चिकित्सा में बीएससी/एमएससी डिग्री कार्यक्रम शुरू किया है। आयुर्वेद जीव विज्ञान, एक आधुनिक विज्ञान है। आयुर्वेद हमारी स्वदेशी ज्ञान प्रणाली है। इसलिए विविध क्षेत्रों को एक साथ लाना भी महत्वपूर्ण है और अगर आप हमारे इंजीनियरिंग प्रोग्राम को देखेंगे तो पूरे देश में इस तरह का अनूठा प्रोग्राम नहीं मिलेगा जो अपने आप में एक अनूठा प्रोग्राम है। यह देश में नहीं है, जहां इंजीनियर सामाजिक विज्ञान, भाषा, कला और अंतरराष्ट्रीय संबंधों जैसे विषयों के मास्टर्स प्रोग्राम में भी अध्ययन करेंगे। दरअसल, राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस बहु-अनुशासनिक शिक्षा की बात करती है, लेकिन जेएनयू पहले से ही इस क्षेत्र में कार्य कर रहा है।

मलखान सिंह - सर ! कुछ विद्वानों का यह मानना है कि आजकल संस्थानों में राजनीतिक हस्तक्षेप ज्यादा बढ़ गया है, जिसके कारण विश्वविद्यालयों का शैक्षिक वातावरण दूषित होता जा रहा है। सर, मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि संस्थानों में राजनीतिक हस्तक्षेप कहाँ तक उचित है और कहां तक अनुचित है? इसके क्या प्रभाव या दुष्प्रभाव पड़ते हैं?

कुलपति- एक शैक्षणिक संस्थान के रूप में देखें, हम अपने आस-पास, अपने समाज में होने वाली चीजों से अछूते नहीं हैं। इसलिए, यह स्वाभाविक है कि हम प्रतिक्रिया करते हैं। इसलिए राजनीति हमारे जीवन में विरासत के रूप में मिली है और हम उच्च शिक्षण संस्थान हैं और यहां हमें ऐसे छात्र मिलते हैं जो वयस्क हैं जो स्वतंत्र रूप से सोच सकते हैं। इसलिए मेरा विचार है कि हमें छात्रों को विविध आधार पर सोचने की स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। लेकिन निश्चित रूप से हम सभी छात्रों और शिक्षकों की प्राथमिक जिम्मेदारी अकादमिक उत्कृष्टता पर ध्यान केंद्रित करना है। यही हमारी प्राथमिक जिम्मेदारी है। इसलिए जब आप अपने अकादमिक क्षेत्र में, अपने शोध क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं, मुझे लगता है कि हमें इसका स्वागत करना चाहिए। विविध विचारों को व्यक्त करने के लिए लोगों के पास पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिए और यह एक तरह की सामूहिक सोच की परिणति होगी, इसलिए मैं हमेशा मानता हूँ कि जेएनयू में अभिव्यक्ति की पर्याप्त स्वतंत्रता है और हम उसके लिए हर व्यक्ति को अवसर प्रदान करते हैं चाहे वह छात्र हो, संकाय या कर्मचारी हों। विरोध प्रदर्शन, सभा आदि के लिए हमने अपने छात्रों को एक विशाल साबरमती मैदान प्रदान किया है। हम हमेशा एक प्रशासन के रूप में विश्वविद्यालय के कार्यों में सुधार के लिए किसी भी प्रकार की आलोचना का सम्मान करते हैं।

मलखान सिंह - सर मेरा आपसे एक सवाल यह भी है कि आपके पास एकेडमिक, प्रशासनिक एवं निजी जिम्मेदारियां हैं इन सबके बीच आप तालमेल कैसे बैठते हैं ?

कुलपति - यह आप सभी जानते हैं कि हम सभी के लिए अकादमिक दबाव है, हमारे पास पारिवारिक दबाव हैं, हमारे पास और भी कई जिम्मेदारियां हैं। आपको पता है, मैं इतनी सारी प्रतिबद्धताओं का ख्याल रखने के लिए क्या करता हूँ। मैं आमतौर पर जो करता हूँ, वह यह है कि अगर मेरे पास करने के लिए दस कार्य हैं, तो मैं प्रत्येक कार्य का एक छोटा सा काम करता रहता हूँ। मानसिक रूप से आप देखते हैं कि सभी कार्य धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं और सब कुछ आगे बढ़ रहा है। अगर कुछ अटका हुआ है, तो दूसरे काम चल रहे हैं। दूसरी बात जो मैं देखता हूँ वह यह है कि यदि आप कुशलता से काम करना चाहते हैं, तो अच्छे अंतर-वैयक्तिक संबंध बनाना जरूरी है क्योंकि हम कार्यस्थल पर आधा समय बिताते हैं, शेष आधा हम घर पर खर्च करते हैं। चाहे वह परिवार हो, चाहे वह आपके सहकर्मी हों, पारस्परिक संबंध विकसित करें। इस धारणा के साथ जाना अव्यावहारिक है कि मैं तभी काम करूंगा जब हर कोई मेरे जैसा होगा। ऐसा कभी नहीं होने वाला है। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अलग गुण-स्वभाव का होता है और इन भेदों के बावजूद, मैं इन भेदों को कैसे कम कर सकता हूँ और फिर एक टीम के रूप में काम करने का प्रयास कैसे कर सकता हूँ। जिससे कार्यस्थल पर

तनाव कम होगा और ऐसा ही कुछ घर पर भी होता है क्योंकि अक्सर हम सोचते हैं कि रिश्ते सिर्फ गुणों से ही बनते हैं, यानी आप एक पत्नी और पति या पिता और बच्चों को जानते हैं। उन रिश्तों को सिर्फ उन रिश्तों के आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता है, चाहे वह आपकी पत्नी हो या बच्चे या माता-पिता, आपको समय देने की जरूरत है, उनके साथ समय बिताने की, उनकी चिंताओं को भी समझने की जरूरत है। यदि मानसिक तनाव को कम करते हैं और शारीरिक फिटनेस को मजबूत करते हैं तो आपकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो जाएगी। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है। इसलिए कुछ भी आपके लिए उपयुक्त है, पैदल चलना, योग, तैराकी, साइकिल चलाना कुछ भी, इसे हर दिन कम से कम 45 मिनट करें। इसलिए यदि आप अपनी शारीरिक फिटनेस का ध्यान रख सकते हैं और यदि आप अपनी मानसिक फिटनेस का ध्यान रख सकते हैं, तो आप एक कुशल व्यक्ति बन सकते हैं।

मलखान सिंह – सर ! मेरा एक और सवाल आपसे है कि जेएनयू से आपने क्या सीखा?

कुलपति - हालांकि मैं बगल में आईआईटी में ही था, लेकिन जब मैं यहां आया तो जेएनयू में किसी को नहीं जानता था। लेकिन समय के साथ मैंने महसूस किया कि इस विश्वविद्यालय में उत्कृष्ट बौद्धिक संसाधन हैं। अनेक संकाय सदस्यों ने अपने-अपने क्षेत्र में अत्यधिक योगदान दिया है। सबसे कम समय में मैंने यहां कई दोस्त बनाए हैं, तो यह जेएनयू समुदाय के खुलेपन को दर्शाता है। मुझे कहना होगा कि हमारे द्वारा किए गए सभी सुधारों के लिए विश्वविद्यालय के भीतर मेरा बहुत बड़ा समर्थन था। बड़ी संख्या में छात्र हमारे द्वारा किए गए सुधारों के समर्थन में थे। मुझे ईमेल मिलते रहते हैं, छात्र व्यक्तिगत रूप से भी मुझसे मेरे कार्यालय में मिलते हैं और बताते हैं कि इनमें से कुछ सुधारों ने वास्तव में कैसे मदद की है। उदाहरण के लिए, तीन साल पहले हमने पूरी तरह से वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग पीएच.डी थीसिस मूल्यांकन पेश किया था। इस प्रक्रिया में बाहरी परीक्षक को विश्वविद्यालय नहीं आना पड़ेगा। एक बात मुझे कहना है कि यहां के शिक्षण संकायों, कर्मचारियों और छात्रों में जो गर्मजोशी और खुलापन है उसे मैं जेएनयू छोड़ने के बाद भी जीवन भर याद रखूंगा। एक तो मैं संक्षेप में दो चीजें बता रहा हूँ कि इस विश्वविद्यालय के पास जो विशाल बौद्धिक संसाधन हैं, वह कुछ ऐसा है जो मुझे बहुत प्रभावित किया है और दूसरा जेएनयू समुदाय की गर्मजोशी और खुलापन।

मलखान सिंह - आप अपने छात्रों के लिए क्या संदेश देना चाहेंगे?

कुलपति - मैं हमेशा अपने छात्रों से दो चीजें करने को कहता हूँ— एक, अपनी आंतरिक क्षमता को पहचानें जो सबसे पहले हमें करने की जरूरत है। दूसरा, अपनी आंतरिक क्षमता का पूरा-पूरा प्रदर्शन करें। अगर हम अपने जीवन में सफल होना चाहते हैं तो इन बिन्दुओं पर ध्यान दें- यही मेरा संदेश है।

मलखान सिंह - सर ! आपके पसंदीदा लेखक कौन हैं?

कुलपति - पहली बार मुझे सी. राजगोपालचारी द्वारा लिखित दो पुस्तकें महाभारत और रामायण पसंद आईं। उन्होंने जिस तरह से लिखा, वह मुझे बहुत पसंद आया। मुझे अरबिंदो का लेखन भी पसंद है, यद्यपि

उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों को समझना थोड़ा मुश्किल है फिर भी उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकें मुझे पसंद हैं।

मलखान सिंह - सर हर किसी का कोई एक आदर्श होता है। आप अपना आदर्श किसे मानते हैं ?

कुलपति - जब मैं अपने गांव में छात्र था तो घर के कोने में तेलुगू की किताबों की छोटी सी अलमारी होती थी, वह अभी भी है उस अलमारी से मैं विवेकानंद की किताबें पढ़ता था। वास्तव में विवेकानंद जी ने जो कुछ लिखा है मैं उन सब बातों से बहुत प्रभावित हूँ तथा बाद में जब मैं बड़ा हुआ तो मैंने विवेकानंद द्वारा लिखी गई कई और पुस्तकों का अध्ययन किया। मुझे लगता है कि मेरे अपने परिवार के बाहर विवेकानंद के साहित्य ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया है। इसके अलावा मेरे जीवन को जिसने सर्वाधिक प्रभावित किया है, वह मेरी पत्नी है। वह मेरी सबसे अच्छी दोस्त है। उनसे मैं अपने सभी कार्यों को खुलकर साझा कर सकता हूँ या मेरे दिमाग में जो कुछ भी है वे जान लेती हैं। इसलिए वह मेरी सबसे अच्छी मेंटर हैं।

मलखान सिंह - सर ! ऐसे कौन से अध्यापक हैं ,जिनको आप बहुत याद करते हैं- जिनका आपके जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है?

कुलपति - यदि मुझे ऐसे एक शिक्षक की पहचान करनी पड़े, जिसने मेरे जीवन को प्रभावित किया है तो वे हैं मेरे पीएचडी के पर्यवेक्षक आईआईटी मद्रास के प्रोफेसर ज्ञान भट्ट । वे भी गांव की पृष्ठभूमि से आए थे तथा जब मैं उनसे पहली बार मिला तो मैं बहुत प्रभावित हुआ। आज जो कुछ भी मैं नैनो इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में कर पा रहा हूँ, वह उनके द्वारा दिए गए प्रारंभिक प्रशिक्षण के कारण हुआ है। इसलिए मैं हमेशा उनका आभारी रहूँगा।

मलखान सिंह - सर ! आप अपने छात्रों को शारीरिक फिटनेस के बारे कुछ बताना चाहेंगे ?

कुलपति - हां, अब हमारा विश्वविद्यालय एनसीसी से बहुत अच्छा हो गया है और मुझे सुखद आश्चर्य हुआ है कि छात्र एनसीसी में शामिल होने के लिए काफी रुचि रखते हैं। हमारे यहाँ लड़कियों और लड़कों की दोनों यूनिट हैं। हम देखते हैं की अक्सर हम सभी इंसान अलसा जाते हैं । मान लीजिए कि आज आपको व्यायाम करना है, तो हमारे मन में आता है कि आज छोड़ देते हैं ,कल से शुरु करेंगे। Tomorrow will never come मैं सोचता हूँ कि कल कभी नहीं आता । हमें कल का इंतजार न करके आज से शुरु करना चाहिए जो कि बहुत महत्वपूर्ण है। आप जानते हैं कि दिन के दौरान बहुत से काम होने के बावजूद यदि मैं व्यायाम नहीं करता हूँ तो उस दिन मैं थका हुआ महसूस करता हूँ। यह उतना ही जरूरी है जितना कि खाना । एक बात और मैं आपको बताना चाहता हूँ यह सभी के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है, जैसा कि आप जानते हैं कि एक अकादमिक इकाई के रूप में अध्यक्ष अथवा डीन, एक कुलपति, कुलदेशिक के रूप में हमेशा आपको बेहतर करना चाहिए तथा जब लोगों ने जीवन में कुछ हासिल किया होता है तो यह दिमाग में चला जाता है कि मैं सबसे अच्छा हूँ - मेरे जैसा दूसरा नहीं है।

यह बहुत ही गलत दृष्टिकोण है। ऐसे कई लोग हैं जो हमसे बेहतर हैं, हमें इसे पहचानने की जरूरत है। हमारे लिए महत्वपूर्ण है कि मैं सर्वश्रेष्ठ करूं। मैं स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता। जीवन का यही दर्शन होना चाहिए, ठीक है।

मलखान सिंह – सर ! इस साक्षात्कार के बहाने हमारे पाठकों बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। आपने कीमती समय दिया इसके लिए बहुत बहुत धन्यवाद, सर !



अनुवाद

घर-वापसी

डॉ.मनुराधा चौधरी

प्रस्तुत कहानी रूसी भाषा की ख्यातनाम कथाकार दीना रुबीना द्वारा रचित है। दीना रुबीना की कहानियाँ नए कथानक विषयों, चरित्रों के विराट व्यक्तित्व, मनःस्थिति के सूक्ष्म अंकन, परंपरागत परिवेश और अछूते बिंबों के लिए जानी जाती हैं। प्रस्तुत कहानी का हिंदी अनुवाद मूल रूसी भाषा से किया गया है।¹

लगभग आठ-नौ वर्ष की उम्र में मैं अपने जीवन के पहले और अंतिम पायनियर शिविर से भाग निकली थी। मुझे निश्चित रूप से तो याद नहीं, परंतु यह प्रांतीय शिविर चिमगान की तलहटी में, शहर से लगभग बीस किलोमीटर दूर कहीं गजलकेंट क्षेत्र में स्थित था।

¹कहानी का अनुवाद यूपीई- रग्रांट की सहायता से किया गया है।

मुझे मेरी माँ की सहेली के दबाव से वहाँ भेजा जा रहा था। बस में बाकी बच्चों के साथ बैठते हुए मेरी माँ मुझे उत्साह से बार-बार कह रही थी कि वहाँ नाश्ते में कैवियार (मछली के अंडे का अचार) और सेरविलात (मसालेदार गोश्त) मिलता है। अपने घर से मुझे निकाले जाने के पक्ष में यही सबसे बड़ा तर्क था। मैं नहीं समझ पा रही थी कि मेरा आस-पास की गलियों और आंगनों में आज़ादी से दौड़ना किसे और क्यों परेशान कर रहा था? जिसके कारण मुझे शोर मचाने वाले मूर्खों के झुंड में बस में धकेला जा रहा था। और वह भी इतनी दूर! मेरी हालत उस बिल्ली जैसी थी जो बटन वाले ढीले थैले से बाहर निकलने की कोशिश करती है। आश्चर्य तो इस बात का भी था कि मुझे मसालेदार गोश्त की क्या जरूरत थी! एक रपटीली सी नमकीन कैवियार जो धीरे-धीरे भयानक रूप से मेरी तरफ बढ़ रही थी और फिर उससे मुझे सिर्फ घृणा होनी थी। शिविर के बारे में मुझे केवल याद है सुबह की पायनियरों की कतारें। डरावने बराक में फ़र्श पर फैले हुए बहुत सारे छेदों वाले टॉयलेट और आँखों में चुभने वाली वो क्लोरीन।

आज जब मैं अपने बचपन का कोई मज़ाक, छल या कोई ऐसी दुर्घटना याद करने की कोशिश करती हूँ जिसने मेरे दिल को ठेस पहुँचाई हो, जिसको आधार बनाकर मैं कोई कहानी बना सकूँ और जिससे मैं अपने असभ्य आचरण के लिए सफ़ाई दे सकूँ। तो अगले ही पल यह सोचती हूँ कि नहीं, बिल्कुल नहीं। क्योंकि जिस व्यक्ति के लिए उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य पायनियर शिविर की कतारें और एक साधारण सा सोने का कमरा हो, उसे जीवन के दूसरे डर के बारे में सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं सोचती हूँ कि सिर्फ़ खुशहाल बचपन के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ था, बल्कि भट्टियों में जलने के लिए हुआ था। शायद इसलिए मैंने हमेशा खुशी को नज़रअंदाज कर दिया।

मैं बिजली जाने का इंतज़ार कर रही थी और जैसे ही चौथे दिन बिजली गयी, मैं वहाँ से भाग निकली। अंधेरे में चारपाई के नीचे से अपने सैंडल भी ढूँढ न सकी तो मैं चुपचाप एक खिड़की से (जो बरामदे में खुलती थी) बाहर निकली और नंगे पाँव वापस अपने घर की ओर चल दी। अंधेरे में नंगे पाँव चलना मेरे लिए दर्दनाक नहीं था और मुझे डर भी नहीं लग रहा था। शायद उसका कारण यह था कि गर्मियों के दौरान मेरे पैरों की त्वचा सख्त और असंवेदनशील हो गयी थी। कैंप में सुरक्षा के लिए बाड़ लगवाई हुई थी और वह बाड़ एक जगह से क्षतिग्रस्त थी। बाड़ के उसी हिस्से से मैं बाहर आ गयी थी। बस स्टॉप पर पहुँचकर मैंने ताशकंद की दिशा का पता लगाया और खुशी और उत्साह के साथ डामर की उस सड़क के किनारे-किनारे भागने लगी जो मेरे घर की तरफ़ जा रही थी। सड़क अभी भी दिन की कड़ी धूप से गर्म थी। (मुझे ऐसा लग रहा था की सब मेरा ही पीछा कर रहे हैं। मैंने दूर से एक गाड़ी की आवाज़ सुनी और मैं सड़क से हटकर झाड़ियों में छुप गयी। यदि वहाँ ये झाड़ियाँ नहीं होती तो मैं सड़क के किनारे की सूखी और ऊँची घास (जिसमें से पहाड़ों की तीखी बदबू आ रही थी) में चेहरा छुपाकर पेट के बल लेट जाती। मैं धीरे-धीरे चलने लगी और फिर सुबह तक मैं पूरी तरह से थक गयी और बस रेंग रही थी।

में थकी-हारी चलती जा रही थी और एक अंदरूनी ताकत मुझे दिशा दे रही थी और चलने के लिए उत्साहित कर रही थी। मेरी हालत उस बिल्ली जैसी थी जिसे पहुँचना तो है मंजिल पर, परंतु उसे मालूम नहीं कि उसकी मंजिल कितनी दूर है। मंजिल यानी, घर और आज़ादी। जो मसालेदार गोश्त से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

आसपास के पहाड़ की तलहटी पंक्ति और दलदली रात में जितनी गहरी डूब रही थी, उतना ही ऊँचा और साफ़ आसमान सिर पर दिखाई देने लगा था। सुई की तरह चुभने वाली ठंड में आसमान विशाल शीशे की तरह फैला हुआ था और उसमें शानदार व्याकुल चमकते हुए सितारे बिखरे हुए थे और बहुत ऊँचाई पर टिमटिमा रहे थे। वहाँ एक अंतहीन व्यस्त जीवन था। बड़े सितारों को एक अचल सफ़ेद सर्चलाइट ने खत्म कर दिया था। बहुत छोटे-छोटे आकाशदीप धीरे-धीरे अपनी जगह बदल रहे थे। बादलों के बीच मुठ्ठी भर चमकदार तारे मोतियों के समान जगमगा रहे थे। सब कुछ सजीव लग रहा था। सब तैर रहा था, हिल रहा था, गुनगुना रहा था, हकला रहा था और ऊँचा उड़ने के लिए और उन तारों के सफ़ेद ढेर पर गिरने के लिए अपनी तरफ़ बुला रहा था।

ऐसा लग रहा था कि वहाँ ज्योमेट्री पर लगातार नियंत्रण चल रहा हो। वहाँ आकृतियाँ बनती और बिगड़ती रहीं। लग रहा था जैसे समतल आसमान में वृत्त, कोण, चतुर्भुज, और समचतुर्भुज बन रहे हों। एक खिड़की-सी दिखाई दे रही थी जिस पर बहुत स्पष्ट हीरे की बिंदीदार रेखा दिखायी दे रही थी। इससे कुछ फ़र्क नहीं पड़ रहा था कि मैं कैसे चल रही थी! तेज़ या धीरे। परंतु ऐसा लग रहा था कि यह आकाश की खिड़की मेरे ऊपर ही तैर रही थी और अपनी सीमा में बहुत चमकीले, डरावने और सजीव तारे समेट रखे थे। निःसंदेह ही दूसरे ब्रह्मांड में कहीं एक अकेली और ज़िद्दी लड़की सड़क पर चल रही थी और उसके सिर पर यह गौहर लगी खिड़की तैर रही थी। मैंने खुद के बारे में सोचा कि अब जो भी ब्रह्मांड में घटित होगा, मुझे इस खिड़की में दिखाई देगा। इसी कारण से मैं वहाँ खड़ी रही। अपने सिर को ऊपर उठाकर संकेतों को एकटक देखने लगी। आवेश और अशांति की नई चमक। चमकते सितारों का नया गतिमान समुदाय। हर बार जैसे अद्भुत घटनाओं की खोज करते हुए। कभी-कभी मैं उस दूसरी लड़की को संकेत देने के लिए ज़ोर से अपने हाथों को हिलाने लग जाती थी। अचानक मैं सोचने लगी कि क्या उनके पास ऐसी विकसित सभ्यता है कि वह मुझे किसी ऐसी कॉस्मिक दूरबीन से देखती हो जिसके लेंस में चीजों को लाख गुना बड़ा करके देखने की क्षमता है!

पूरी रात में दो या तीन बार वह अंधेरी सड़क, आबादी वाले इलाकों से गुज़री। बहुत दूर से आ रही लैंप की अपर्याप्त रोशनी से भी वह रास्ता चमक रहा था। गांवों की खिड़कियाँ दूर से शहद की मोटी बूँद की तरह चमक रही थीं। उपलों के जलने से चारों तरफ़ बहुत कड़वा सा धुआँ फैला हुआ था और कुत्ते अलग-अलग स्केल में भौंक रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे वे एक गंधे की चीख का जवाब दे रहे थे।

मैं पूरी रात चलती रही और सुबह शहर के बाहरी इलाके में पहुँच गयी जहाँ ट्राम डिपो था। मैं पहली ट्राम का इंतज़ार करने लगी जो निःशुल्क और कम भीड़ भाड़ वाली थी। सुबह की ट्राम आ गयी और मैं उसमें बैठ गयी। (लेडी कंडक्टर ने जब मुझे उस समय वहाँ देखा तो वह बहुत डर गयी थी!) अंततः मैं अपने घर पहुँच गयी।

घर लौटने के बाद मेरे किसी भी परिचित को, यहाँ तक कि मेरे माता-पिता को भी मेरी इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था कि मैं पूरा रास्ता पैदल चलकर घर पहुँची हूँ। –“तुम्हें किसी ने अपनी गाड़ी में बिठाकर यहाँ पहुँचाया होगा?” -मुझसे सभी पूछताछ कर रहे थे।

"कार से?"

“घोड़ागाड़ी से?”

“साइकिल से?”

–क्योंकि, उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि अकेली लड़की, वो भी रात में नंगे पैर पूरा रास्ता तय करके यहाँ तक नहीं पहुँच सकती।

“हाँ, बिल्कुल अकेले और वो भी रात में” – मैंने धीरे से उनकी बात का विरोध करते हुए कहा– “बिल्कुल अकेले और रात में इस लंबे सुनसान रास्ते को, जो कि तलहटी की तेज़ बदबू के बीच से गुज़रता है, मैंने पैदल और अकेले तय किया। रास्ते में जब मैं चल रही थी तो अनंत तारे, अनगिनत ग्रह, धूमकेतु और छोटे तारों के झुंड मेरा नेतृत्व कर रहे थे। मेरे सिर पर जो खिड़की के समान आसमान था, वे सब उसमें हाँफ रहे थे और आपस में लड़ रहे थे, या यूँ कहिये कि जोश में खेल रहे थे। घर की तरफ़ आने वाला रास्ता आकाश में बिखरे हुए तारों और पहाड़ी के नीचे था। रात में थाड़म, लैवेंडर और गांवों की तरफ से गोबर के कड़वे धुं की गंध आ रही थी और सुबह पीड़ित गधे के कराहने और रोने की आवाज़ें आ रही थी। इन सब बातों को याद करना चाहूँ तो तुरंत याद आ जाएगी और एक पल में मेरी याददाश्त और मेरी नाक पूरी तरह बदबू से भर जायेंगे। ये सब बातें मुझे आखिरी समय तक याद रहेंगी।”

मुझे ऐसा लगता है कि उस रात मैं कुछ ज्यादा ही सयानी बन गयी थी। प्रत्यक्ष रूप से भयानक और अप्रत्यक्ष रूप से शानदार तथा भव्य आकाश के नीचे उस घर-वापसी वाली रात में मुझे कई ज़रूरी बातें समझ आ गयी थीं।

जैसे कि आदमी अकेला है। भले ही वह अभी बहुत खुश क्यूँ न हो, परन्तु वह हमेशा नाखुश रहता है। अपना बचाव करने के लिए इंसान किसी भी प्रकार का रास्ता तय करने में सक्षम बन जाता है। ऐसी स्थिति में वह मुख्य रास्ते को छोड़कर दुर्लभ रास्ते से आगे बढ़ता है। उस समय मंजिल तक पहुँचने के लिए उसे दुर्गम रास्ता ही आशा की किरण लगता है।

आज भी मुझे अपने पिता का चेहरा स्पष्ट याद है, जिन्होंने सुबह के छह बजे (जब मैं घर पहुँची) घर का दरवाजा खोला। उनके पीछे एक नाइट गॉउन में चिल्लाते हुए मेरी माँ भागकर आयी। वास्तव में वे मेरे भागकर घर आ जाने की उम्मीद नहीं कर रहे थे।

पता नहीं क्यों, मुझे घर पर मारा-पीटा नहीं गया, जबकि मुझे ऐसे लगता था कि माता-पिता मेरी पिटाई करेंगे। मेरी माँ ने मुझे क्यों नहीं पीटा, अब इसका पता लगाना फिजूल है और वैसे भी उसे अब कुछ याद नहीं रहता है। मुझे अनुमान था कि मेरे पिता को अप्रकट रूप से मुझसे सहानुभूति थी। वे बहुत सज्जन हैं पर मिलनसार नहीं हैं। कई दिन माँ ने रोना-धोना मचाए रखा। वह डर भी रही थी और दुखी भी हो रही थी। बात सिर्फ मसालेदार गोश्त या स्वास्थ्य-लाभ की नहीं थी, परंतु बात जो भी थी वह किसी भी बच्चे की समझ से बाहर थी। हाँ, किसी और ने इस तरह की खुशी का सपना देखा होगा और सामान्य रूप से इस अजूबे की प्रशंसा भी की होगी कि क्या वह एक सामान्य लड़की थी?

बिना कुछ बोले मैं चुपचाप बच्चों के कमरे में चली गयी जो एक कलमदान के समान संकरा था। उस कमरे में मैं अपनी बहन के साथ सोती थी। मैं अपने सिर के नीचे एक तकिया लगाकर सोफे पर लेट गयी। बहुत दिन बाद, लगभग साल भर बाद मैं अपने पैर फैलाकर सोई थी। पैर फैलाते समय मैंने दूसरा तकिया सोफे से गिरा दिया।

अँधेरे में दूर लगी खिड़कियों के किनारों से आती हुआ भोर का प्रकाश मेरे बिस्तर से साफ़ दिखायी दे रहा था। जिस तरह जलते कोयले राख में बदल जाते हैं, उसी प्रकार दिन की रोशनी में तारे बुझते हुए नज़र आ रहे थे। वे एकदम शांत हो गए थे। मुझे लगा कि मैं जिस सड़क पर लगातार नंगे पाँव चलती रही थी, डामर की वह सड़क अब बिलकुल ठंडी हो गई है! ऐसा लग रहा था कि मैं वह छोटी सी धुरी हूँ जिसके चारों तरफ़ विशाल-अंधकारमय दुनिया हमेशा घूमती रहती है। जो संसार का मुख्य आधार है।

उस पायनियर शिविर से भागने के बाद भी मेरे अंदर अभी भी कुछ तो बचा था। उस रात घर तक लंबे रास्ते पर चलने के बाद भी। मुझे लगता है कि निडरता, इच्छाशक्ति और विनम्रता मानवीय मार्ग के साथी हैं। क्या देखा मैंने- एक लड़की? उस अकल्पनीय, ब्रह्मांड की चमकदार खिड़की में जिसके बारे में मैं हमेशा से अनुमान लगाती थी।

-कि क्या आदमी अकेला है?

-क्यों वह हर पल की खुशी के बाद भी नाखुश रहता है? भले ही इस पल वह बहुत खुश क्यों न हो, परन्तु वह अंततः नाखुश क्यों रहता है?

-अपने बचाव में इंसान किसी भी प्रकार के रास्ते पर चलने में सक्षम कैसे होता है कि वह मुख्य मार्ग को छोड़कर दुर्लभ मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। जहाँ प्रकाश की किरणें होती हैं दूसरी दुनिया के लिए? (उस समय अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए दुर्गम रास्ता ही आशा की किरण सा लगता है।)

सहायक प्राध्यापक, रूसी भाषा केंद्र, जेएनयू



कोई जीवित बचा नहीं
(अरबी से हिंदी अनुवाद)

लेखक: ज़ैनब आतिफ

अनुवादक: मुहम्मद अजमल

सीएएस/भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू

जब मैरी लेनोक्स को अपने फूफा के साथ रहने के लिए मिसेलथ वेट की झुगगी में भेजा गया तो सभी ने कहा कि ऐसी बदसूरत बच्ची पहली बार देखी है और यह सच था; उसका चेहरा छोटा और पतला था, उसका शरीर कमज़ोर और छोटे आकार वाला, उसके बालों का रंग हल्का था और उसका चेहरा खुरदुरा और वो झगड़ालू सिफ़त की लगती थी। उसके बाल पीले रंग के थे, और उसका चेहरा भी पीला था; क्योंकि वह भारत में पैदा हुई थी और सदैव किसी न किसी रूप में बीमार रहती थी। उसके पिता अंग्रेजी सरकार में काम करते थे परन्तु, हर समय व्यस्त पर बीमार भी रहता थे; हाँ उसकी माँ बहुत सुंदर थी और केवल पार्टियों में जाने और लापरवाह लोगों के साथ मनोरंजन करने में दिलचस्पी रखती थी। वह बिल्कुल भी बच्चा पैदा करना नहीं चाहती थी, परन्तु जब मैरी पैदा हुई तो उसकी देखभाल के लिए एक स्थानीय नौकरानी को सौंप दिया, उसने महसूस किया कि अगर वह अपनी कुलीन यूरोपीय महिला को खुश रखना चाहती है, तो उसे बच्चे को जितना संभव हो, दृष्टि से दूर रखना होगा। लिहाज़ा जब वह एक छोटी, बीमार, परेशान, और बदसूरत बच्ची थी, तब वह दृष्टि से दूर रही, और जब उसने अपना प्रथम कदम चलना शुरू किया, तब भी उसकी माँ ने बच्ची को दृष्टि से दूर ही रखा। उसको ज़रा भी याद नहीं है कि वह अपने पालने वाली और अन्य स्थानीय नौकरों के भुजंगे चेहरों को छोड़कर किसी जानी पहचानी वस्तु से परिचित हुई है, लेकिन वे हमेशा उसकी बात मानते थे और वह अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहती थी उसे उसकी अनुमति देते थे; क्योंकि उसके रोने से मालिकन बहुत क्रोधित और परेशान हो जातीं, इसलिये कि अब वह छह साल की बिगड़ैल, स्वार्थी और अधिकांश अहंकारी बालिका हो गयी थी। युवा अंग्रेजी शिक्षक जो उसे पढ़ना और लिखना सिखाने आती थीं, उसको इतना नाराज़ कर दिया था, कि उसने तीन महीने के बाद नौकरी छोड़ दी, और जब दूसरी शिक्षिकाएं आयीं और इस काम में जुटीं, तो वे हमेशा उसकी पहले की शिक्षिकाओं की तुलना में, कम अवधि के बाद ही निर्वासित हो जाती थीं। इसलिए मैरी वास्तव में कितना पढ़ना तो क्या सीखती, उसने वर्ण माला के अक्षरों तक को पढ़ना नहीं सीखा।

एक बहुत ही गर्म सुबह, जब वह लगभग नौ साल की थी, नींद से जागी तो बहुत व्यथित महसूस कर रही थी, और उसका संकट तब बढ़ गया जब उसने देखा कि उसके बिस्तर के बगल में खड़ी नौकरानी उसकी सामान्य नौकरानी नहीं थी।

मैंने उस अजनबी औरत से पूछा: तुम क्यों आई हो? मैं तुम्हें रहने नहीं दूंगी; मेरी नौकरानी को भेजो।

डर से महिला के चेहरे पर हवाईयां उड़ने लगीं, लेकिन वह केवल यही बुदबुदा पाई कि नौकरानी उपस्थित नहीं हो सकती है, परन्तु जब मैरी उत्तेजित हो गई और नौकरानी को मारना शुरू कर दिया, तो नौकरानी और अधिक घबरा गयी, और उसने यही दोहराया कि नौकरानी छोटी युवती के पास नहीं आ सकती है।

आज सुबह वातावरण में कुछ रहस्यमय था। जबकि मैरी ने जिन्हें देखा था वे या तो चुपके से खिसक रहे थे या वे जल्दबाजी में चेहरे लटकाए हुए ऐसे चल रहे थे कि उनपर घबराहट के संकेत साफ-साफ प्रकट हो रहे थे। लेकिन किसी ने उसे कुछ नहीं बताया, और उसकी सामान्य नौकरानी नहीं आई। वह सुबह तक अकेली रह गई, और अंतिम में बगीचे में घूमने के लिए निकल गई और बालकनी के पास एक पेड़ के नीचे अकेले खेलने लगी। उसने फूल के गमले बनाने का नाटक किया, जमीन पर छोटे-छोटे ढेरों में बड़े-बड़े, लाल रंग के हिबिस्कस के फूल, इकट्ठे करने लगी, उसका क्रोध समय के साथ बढ़ता जा रहा था और वह बातें और गालियाँ जो नौकरानी के लौटने पर देने वाली थी अपने आप बड़बड़ा रही थी।

वह कहने लगी, "सुअर! सुअर! सुअर की बच्ची"।

वह अपने दाँत पीस रही थी और बार-बार यह दोहरा रही थी कि उसने सुना कि उसकी माँ किसी के साथ बालकनी से जा रही हैं। उसके साथ एक गोरा चिट्ठा युवक था और वे अजीब और धीमी आवाज़ में एक साथ बातचीत कर रहे थे। मैरी उस गोरे युवक को जानती थी जो एक छोटे लड़के की तरह दिखता था। उसने सुना था कि वह एक बहुत युवा अधिकारी है जो अभी-अभी इंग्लैंड से आया है। बच्ची उसको टकटकी लगा कर देखने लगी और उससे अधिक वह अपनी माँ को टकटकी बांध कर देख रही थी। वह सदैव ऐसा ही करती थी जब उसको उसे देखने का मौका मिलता था। इसलिए कि यूरोपीय महिला-क्योंकि मैरी को किसी भी अन्य लकड़ब की तुलना में अधिकतर इसी नाम से बुलाने की आदत बन चुकी थी, उसके बाल घुंघराले रेशम की तरह थे, उसकी नाक छोटी और पतली थी, और उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। उसके सभी कपड़े हल्के और आरामदायक थे, उसके कपड़े किसी भी अन्य समय की तुलना में आज सुबह बड़े सुंदर लग रहे थे, लेकिन उसकी आँखों में बिल्कुल हंसी नहीं थी, बल्कि उनमें घबराहट छाई हुई थी, और वे अधिकारी युवक की ओर उम्मीद लगाई हुई थीं। मैरी ने उसे यह कहते हुए सुना, कि क्या यह कोई बुरी बात है? ऐसी कोई बात है क्या?

युवक ने कांपती हुई आवाज़ से उत्तर दिया: दूर दूर तक लेनोक्स ही है, आपको दो हफ्ते पहले पहाड़ियों की ओर चला जाना चाहिए था।

यूरोपीय महिला ने अपने हाथों को एक साथ निचोड़ा।

वह चिल्लाई: आह, मुझे पता है यह! मैं केवल उस मूर्ख डिनर पार्टी में जाने के लिए रुकी थी, मैं कैसी मूर्ख हूँ!

उस समय, नौकरों के कमरे से एक तेज आवाज सुनाई दे रही थी, महिला को युवा लड़के की बांह पकड़कर धक्का दे रही थी और मैरी सिर से पैर तक कांप रही थी, आवाज़ तेज़ से तेज़ होती जा रही थी, सुश्री लेनाॅक्स ने हांफते हुए पूछा: क्या है यह, क्या हो रहा है यह?

युवक अधिकारी ने उत्तर दिया: “उनमें से किसी की मृत्यु हो गई है, आप यह मत कह देना कि आपके नौकरों में से कोई है।”

यूरोपीय महिला ने चिल्ला कर कहा: “मुझे नहीं पता! आओ मेरे साथ आओ! वह मुड़ी और घर के अंदर भागी।

तब भयावह चीजें हुईं, और आज सुबह जो हुआ मैरी को समझाया गया। हैजा ने देश को बुरी तरह से जकड़ लिया है और लोग मक्खियों की तरह मर रहे हैं। रात को उसकी नौकरानी बीमार पड़ गई, उसकी मृत्यु के कारण, नौकर अपनी झोपड़ियों में चीखने-चिल्लाने लगे। अगला दिन होने से पहले, तीन अन्य नौकर मारे गए और अन्य लोग दहशत में भाग गए, हर जगह डर का शासन था, और मृतक हर घर में थे।

अगले दिन की अराजकता और भ्रम के बीच, मैरी बच्चों के कमरे में छिप गई और सब उसके बारे में भूल गए, किसी को उसकी फ़िक्र भी न हुई, और किसी ने उसको ढूँढा भी नहीं, और अंजान अजीब व गरीब चीजें हुईं। मैरी ने पूरा दिन रोने और सोने के बीच गुज़ारा। वह केवल यह जानती थी कि लोग बीमार थे और घबराहट भरी आवाज़ें उसके कानों से टकरा रही थीं। एक बार वह भोजन कक्ष में चुपके से दाखिल हुई तो उसे कुछ नहीं मिला, लेकिन मेज पर तैयार थोड़ा भोजन मिला, कुर्सियां और प्लेटें इस तरह रखी हुई थीं जैसे वे जल्दी-जल्दी लगाई गई हों और खाने वाले अचानक किसी कारण से चले गए हों। बच्ची ने कुछ फल और बिस्कुट खाए और प्यास लगने पर उसने लगभग पूर्ण शराब का गिलास पी डाला। उसका मज़ा इतना मीठा था कि उसे उसकी ताकत का एहसास नहीं हुआ, फिर जल्द ही उसे सख्त चक्कर आने लगा और वह अपने कमरे में वापस आ गई, और झोपड़ियों से सुनाई देने वाली आवाज़ें और पाओं की आहटों की आवाज से घबराकर एक बार फिर खुद को कमरे में बंद कर लिया। शराब ने उसे बहुत नींद का एहसास कराया, अपनी आँखें खोलने में असमर्थ था और वह बिस्तर पर लेटी हुई थी और लंबे समय तक कुछ भी नहीं जानती थी। शराब से उसको सख्त नींद महसूस होने लगी यहाँ तक कि आखों का खोलना कठिन हो रहा था, वह बिस्तर पर लुढ़क गई और लंबे समय तक बेहोश पड़ी रही।

गहरी नींद के दौरान कई घंटों तक बहुत सारी चीजें घटीं लेकिन वह न तो चिल्लाने की आवाज़ से परेशान हुई और न घर के बाहर और अंदर सामान लाने और ले जाने की आवाज़ों ने उसको प्रभावित किया।

जब वह सोकर उठी, तो बिस्तर पर लेटी रही और उसकी नज़रें दीवार पर टिकी हुई थीं। घर में चारों ओर पूरी तरह से सन्नाटा था। इस तरह कभी वह चुप नहीं दिखी। न तो उसे कोई आवाज़ सुनाई दी और न पदचाप। उसने पूछा, क्या हर कोई हैजा से उबर चुका है और सभी समस्याएं खत्म हो गई हैं? वह यह भी पूछने लगी कि उसकी नौकरानी की मृत्यु के बाद अब उसकी देखभाल कौन करेगा? अब कोई नई नौकरानी आएगी, और नई कहानियों से आगत करेगी क्योंकि मैरी पुरानी कहानियों से ऊब चुकी है। नौकरानी की मृत्यु पर आंसू न

बहाओ कि तुम सहानुभूति पूर्ण बच्ची नहीं रहीं और तुम तो किसी व्यक्ति की परवाह भी नहीं करतीं। हाँ, तुम को शोर, उथल-पुथल और हैजा के प्रकोप का डर था, तुम गुस्से में आ जाती थीं कि किसी को पता नहीं था कि तुम्हें अभी भी याद है कि वह जीवित है। हर कोई इतना भयभीत था कि उन्हें एक छोटी लड़की के बारे में सोचने से रोक दिया जो किसी को पसंद नहीं थी। ऐसा लगता है कि जब लोग हैजा का अनुबंध करते हैं, तो वे केवल अपने बारे में सोचते हैं, लेकिन जब कोई ठीक हो जाता है, तो निश्चित रूप से इसे याद रखता है। लेकिन उसके पास कोई भी नहीं आया, और जब वह इंतजार कर रही थी, तो घर में और अधिक मौन होने लगा। उसने चटाई पर एक सरसराहट की आवाज सुनी, जब उसने नीचे देखा तो एक छोटा सांप फर्श पर रेंग रहा है और उसकी तरफ अपनी दो मोती जैसी आँखों से देख रहा है। उसे डर नहीं लग रहा था, क्योंकि वह छोटा और हानि रहित था और उसे चोट पहुंचने का भी डर नहीं था और ऐसा लग रहा था कि वह कमरे से जल्दी से भागना चाहता है, और इस प्रकार वह दरवाजे के नीचे से खिसक गया।

वह कहने लगी: “कितनी शांत और भयानक जगह लग रही है यह! ऐसा लग रहा है कि घर में मेरे और सांप के अलावा कोई नहीं है”।

अगले पल में उसको घर के सामने फिर बालकनी पर लोगों के पदचाप की आवाज़ सुनाई दी, जो घर में प्रवेश कर रहे थे और धीमी आवाज़ में बात कर रहे थे। कोई भी उससे मिलने या उससे बात करने नहीं गया और ऐसा लग रहा था जैसे वे दरवाजे खोल रहे थे और कमरों के अंदर देख रहे थे।

उसने किसी को कहते सुना: “क्या सुनसान जगह है! वह महिला कितनी सुंदर है! मुझे लगता है कि एक छोटी लड़की भी है; मैंने सुना कि बस एक बच्ची है, भले ही उसे किसी ने नहीं देखा है”।

जब लोगों ने कुछ देर पश्चात द्वार खोला तो मैरी अपने कमरे के बीच खड़ी थी। तो एक बदसूरत छोटी लड़की की कर्कश आवाज़ सुनाई दी। वह भूख से फफक रही थी और वह घृणित रूप से नजर अंदाज कर दी गई थी, कमरे में प्रवेश करने वाला पहला आदमी एक भारी भरकम शरीर वाला अधिकारी था जिसे उसने एक बार अपने पिता से बात करते हुए देखा था। वह थका हुआ और उत्तेजित लग रहा था, लेकिन जब उसने उसे देखा, तो वह इतना भयभीत था कि वह वापस पीछे मुड़ गया।

वह चिल्लाकर कहने लगा: “बार्नी! यहाँ एक छोटी लड़की है! अकेली लड़की! यहाँ ऐसी जगह में! हे प्रभु, दया करो, तुम कौन हो?”।

छोटी लड़की ने तेजी से आगे बढ़ते हुए कहा: “मैं मैरी लेनोक्स हूँ”। उसने सोचा कि इस व्यक्ति का उसके पिता के घर से निकलना असंभव है “इस जैसी जगह से” फिर उसने कहा: “जब सब हैजा से ग्रस्त हो गए थे तो मैं गहरी नींद सो गई थी और जब मैं नींद से उठी तो फिर मेरे पास कोई क्यों नहीं आया।”

वह आदमी अपने दोस्तों की ओर ध्यान देते हुए चिल्लाया: “यह वह लड़की है जिसे किसी ने नहीं देखा है! हकीकत में हर किसी ने उसे भुला दिया है।”

मैरी ने अपने पैरों को धरती पर मारते कहा: “क्यों सब लोग मुझे भूल गए? क्यों नहीं मेरे पास कोई आया?”
बार्नी ने उसे इतने दुःख भरे अंदाज़ से देखा कि मैरी ने सोचा कि उसकी आँखों से आंसू गिर रहे हों।
उसने कहा: “अरे बेचारी लड़की! कोई था ही नहीं वहाँ कि तुम्हारे पास आये”।

मैरी इस अजीब और आश्चर्यजनक तरीके से जान पाई कि उसके पिता और माँ जीवित नहीं थे, उनकी मृत्यु हो गई थी और उनके शरीर रात के अँधेरे में दफन किये गए थे, और कुछ स्थानीय नौकर जो मरे नहीं थे वे भी घर छोड़कर चल दिए थे, और उनमें से किसी को भी याद नहीं रहा कि एक छोटी बालिका भी है। यही कारण है कि यह जगह इतनी शांत थी। वास्तव में उसके और फुंकार मारते हुए छोटे सांप के अलावा कोई घर के अन्दर नहीं था।

अनुवाद

तस्वीर का भेद

अनुवाद: डॉ मुहम्मद कुतबुद्दीन

लेखक: नजीब महफूज़

(नोबल प्राइज़ प्राप्त मिस्त्री

नॉवलिसट)

‘अब्दुल मुत्तलिब’ सुबह के नाश्ते में क्रीम पनीर और क़हवे का मज़ा ले रहा था। पास ही उसकी पत्नी बैठी अखबार पढ़ रही थी और फ्लैट के शांत माहौल में गहरी-गहरी साँसें ले रही थी। उस घर का रोज़ का यही तरीका था मगर कभी-कभी वहाँ तंहाईयाँ बच्चों के शोरो-गुल से भी आबाद रहती थीं। पत्नी ने जल्दी से अखबार को अपनी आँखों के पास किया, उसके पति ने लापरवाई से उसकी ओर देखा, रिटायरमेंट के बाद उसने शायद ही किसी चीज़ की परवाह की हो। अचानक पत्नी की बुदबुदाती आवाज़ आई।

“बेचारी!”

‘अब्दुल मुत्तलिब’ ने मन ही मन कहा: “यह हमेशा अपराध और दुर्घटनाओं के ही पेज देखती है या फिर मौत के।”

अचानक पत्नी, पति की ओर अखबार बढ़ाते हुए अफ़सोस के साथ बोली : “बेचारी जवान थी और खूबसूरत भी...ज़रा देखो तो सही!” फिर वह विस्तार से बताने लगी “या अल्लाह! लाश रेत पर पड़ी है, चेहरा बिल्कुल साफ़ है और मासूम, चमकती-दमकती आँखें किस तरह बंद हैं।”

अखबार हाथ में लिए बगैर, पति ने उसकी ओर देखा और पूछा:

“क्या उसकी हत्या हुई है?”

“हाँ! खबर के अनुसार जंगल में, अहराम के पीछे। सिर के पिछले हिस्से में काफ़ी गहरी चोटें आई हैं, उसकी कोई भी चीज़ चोरी और ग़ायब नहीं हुई है, लड़की नामालूम है...”

निवाला चबाते हुए पति ने कहा:

“ओह! यह तो रोज़-रोज़ पेश आनी वाली पुरानी कहानी है। यह हत्या, इशक़-मुआशक़ा, घर से भागने या किसी और कारण से हो सकती है, “बगैर किसी कारण के उसकी हत्या नहीं हो सकती। बेचारी खूबसूरत थी और जवान भी।”

महिला ने तस्वीर को ग़ौर से देखा और बोली: “हाए माँ की लाडली!” फिर अखबार डाइनिंग टेबल पर रखते हुए कहने लगी: “मैं हैरान हूँ कि एक इन्सान दूसरे इन्सान की हत्या कैसे कर सकता है?”

पति ने मुस्कराते हुए कहा:

इसमें हैरानी की क्या बात है। तुमने दो विश्वयुद्ध और अनगिनत घरेलू लड़ाईयाँ देखी तो हैं।”

“जंग की बात और है, उसमें ऐसा नहीं होता कि जानबूझकर, धोखा दे कर या बेरहमी के साथ कोई किसी की हत्या कर दे। यह अलग प्रकार की हत्या है। यह बेचारी ज़रूर किसी के साथ खुशी-खुशी गई होगी। कम्बख़्त उसके साथ गई ही क्यों?” महिला ने ठंडी साँस ली और फिर कहा: “अल्लाह ही बेहतर जानता है, वह बड़ा दयालु है।”

‘शिवरा’ इलाके की बिल्डिंग नंबर 50 के एक फ्लैट में एक लड़की, अखबार में प्रकाशित मरने वाली लड़की की तस्वीर को हैरानी से देख रही थी, उसे अपनी आँखों पर यकीन ही नहीं हो रहा था। उसने अखबार लेकर जल्दी से माँ की ओर दौड़ते हुए आवाज़ लगाई:

“मम्मी यह देखो!”

माँ ने तस्वीर देखी और खबर पढ़ी, फिर सवालिया अंदाज़ में बेटी की तरफ़ आँखें उठाकर देखा। बेटी भावुक हो गई और बोली:

“मम्मी यह तस्वीर ‘शलबिया’ लड़की की है, क्या तुम्हें ‘शलबिया’ याद है?”

महिला ने तस्वीर को दोबारा देखा, डर और दहशत के मारे उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। फिर वह चीखते हुए कहने लगी:

“हाए मेरे अल्लाह! यह तो ‘शलबिया’ ही है, ‘शलबिया’ के अलावा कोई और हो ही नहीं सकती...”

लड़की ने माँ की तरह ही दुःखी अंदाज़ में कहा:

“वह हमारे यहाँ पिछले पाँच साल से काम कर रही थी...”

“हाँ, बिल्कुल सही, पता करो इसकी हत्या कैसे और क्यों हुई?”

माँ ने दबे शब्दों में कुछ कहा और लड़की अपनी भावनाओं पर काबू ना रख सकी, वह उसी हालत में कहने लगी:

“मम्मी वह बहुत अच्छी लड़की थी, हर काम बहुत धीरज और खुशी से कर लेती थी, वह बाथरूम में लोकगीत अपनी सीधी-सादी और अच्छी आवाज़ में गाती रहती थी...” फिर अपने आप को कोसती हुई ज़ोर से बोली: “बिना कारण हमने उसे निकाल दिया था! वह लाचार है, अल्लाह उस पर रहम करे, हमने उस पर जुल्म नहीं किया है... वह एक अच्छी, सीधी-सादी और तमीज़ वाली लड़की थी, मगर पता नहीं हमने उसको क्यों भगा दिया...”

माँ ने गुस्से में कहा:

“वह बग़ैर कारण के नहीं भगाई गई। शायद उसकी किस्मत में यही लिखा था...”

लड़की ने ठंडी साँस भरते हुए कहा:

“हाँ! हो सकता है। अगर वह हमारे यहाँ होती तो शायद...”

“लड़की! तुम पागल हो...क्या यह सब अल्लाह की मर्ज़ी से नहीं हुआ है?” माँ ने तेज़ी से उसकी बात काटते हुए कहा।

“मगर फिर भी वह ज़रूरतमंद थी, वह मुझे प्यारी थी और पापा उसे कभी भगाना नहीं चाहते थे।” लड़की ने दबी-दबी आवाज़ में कहा।

पापा का नाम आते ही माँ का चेहरा बिगड़ गया और ऐसा महसूस हुआ कि तकलीफ़ देने वाली बातों की याद की वजह से उसकी आँखों के नीचे बादल छा गए हों। वह रूखे अंदाज़ में बोली:

“बस, अल्लाह उस पर रहम करे और बस...” फिर उसने दोबारा तस्वीर को देखा और बड़बड़ाई: “उसके कपड़े नौकरानियों जैसे नहीं लगते। शायद कि वह...”

मम्मी ने लड़की की बात फिर काट दी और कहा:

“बात कुछ भी हो, इतना ज़रूर है कि मैंने उस के ऊपर कोई अत्यचार नहीं किया। अल्लाह उस पर रहम करे...”

थोड़ी देर वहाँ पर सन्नाटा छाया रहा, फिर खामोशी को ताड़ते हुए लड़की कहने लगी:

“पुलिस अपील कर रही है कि अगर कोई इस तस्वीर वाली लड़की को पहचानता है तो आ और बताए।”

यह सुन कर माँ ने बड़े विश्वास से कहा:

“पिछले पाँच बरसों से उससे हमारा कोई संबंध नहीं है, हम कुछ नहीं बताएंगे, तुम्हें उन परेशानियों का अंदाज़ा नहीं है जो पुलिस के पास जाने के बाद झेलनी पड़ती हैं!”

इंटेलेजेंस विभाग के अफ़सर ‘सय्यद हामिद’ अपने कैबिन में बैठे दूसरे मामलात की छान-बीन करते हुए थोड़े से आराम के अवकाश में जब अखबार के पन्ने उलट-पलट रहे थे, उसी समय उनकी नज़र उस तस्वीर पर पड़ी। उसने इस बेचैनी के साथ उसको देखा कि वह केबिन के साथी से छुपा नहीं सके, उनका साथी उनकी बेचैनी का कारण पूछ बैठा: “सब खैरियत तो है?”

साथी की बात सुनकर उन्होंने अखबार एक तरफ़ रख दिया और अपनी हालत पर काबू पाते हुए झूठ बोला और कहा:

“मेरे एक दोस्त का देहांत हो गया है।”

मगर एक बे-नाम सी उलझन उसे परेशान कर रही थी। ऑर्पेटर ‘शलबिया’ एक खूबसूरत और पाक दामन लड़की थी। जिससे बाद में उसने शादी रचाई और बुरी नियत के चलते उस पर पाबंदी लगा दी थी कि वह ऑर्पेटिंग का काम नहीं छोड़ेगी और जब वह गर्भवती हुई तो गर्भपात के लिए उसकी मर्जी भी छीन ली थी। हालाँकि उस समय ‘शलबिया’ ने रोते हुए कहा भी था कि “तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करते और न ही पत्नी मानते हो।” जिसका जवाब उसने प्यार से यूँ दिया था: “डार्लिंग! ऐसा नहीं है, तुम सचमुच मेरी पत्नी हो मगर मैं अपना कोई वंश बढ़ाना नहीं चाहता!” बाद में जब दोनों का एक साथ रहना मुश्किल हो गया तो उसने एक फ़ैसला किया और ‘शलबिया’ को आज़ाद कर दिया। जिसके गवाह उसके दोस्त चीफ़ एकाउन्टेंट ‘उबैद’ बने (यह सब बातें उसे रह-रह कर याद आ रही थीं) उसी हालत और तकलीफ़ में वह अपने दोस्त के कमरे में गया और तस्वीर के बारे में उसे बताया, दोस्त ने समझने वाले अंदाज़ में सिर हिलाया और कानाफूसी के अंदाज़ में बोला:

“बेचारी! पता करो इसकी हत्या कैसे हुई?”

“कल या परसों तक इसका पता चल जाएगा, इसका पता लगाना कोई मुश्किल काम नहीं।”

दोनों ने एक-दूसरे से निगाहें मिलाई, लेकिन ‘अनवर अहमद’ को चैन नहीं मिला। उसने कहा:

“वह थोड़ी ज़िद्दी थी, तो मैं क्या कर सकता था!”

डायरेक्टर ने धीमे अंदाज़ में कहा:

“वह तुम्हें बहुत प्यार करती थी और माँ बनना चाहती थी।”

“लेकिन, सर! लोग और घर वाले!...आप से कुछ भी छुपा नहीं है।”

“सही बात है, अल्लाह हम सब को माफ़ करे!”

उस ने परेशान हो कर पूछा:

“क्या मैं पुलिस के पास जाऊँ?”

“हाँ! मेरा भी यही मानना है।”

“लेकिन सर कहीं ऐसा न हो कि उससे कोई परेशानी आ पड़े, क्योंकि मैं शादी करने वाला हूँ।”

उस आदमी ने थोड़ा सोचा फिर कहा: “फिर मत जाओ और आइंदा जब कभी पूछ-ताछ में तुम्हारा नाम आए तो कहना कि तुमने तस्वीर देखी ही नहीं है।”

“दरिय्या!(शलबिया) बहुत बड़ी शैतान थी...” वह तस्वीर को उलट-पलट कर देखता रहा और बड़बड़ाता रहा:

“उस की हत्या क्यों हुई?”

उसी हालत में वह उठा और बाथरूम की ओर गया और शराब की तैज़ाबी उलटी कर दी, फिर जल्दी ही होश में आ गया और कहने लगा:

“दरिय्या!(शलबिया) तू एक अपराधी और शैतान थी!”

फिर अपना चेहरा धोते हुए कहने लगा: “हाँ! यह तो होता ही है, जैसी करनी वैसी भरनी!”

शेविंग करते हुए भी उसका ध्यान इसी बात पर था, वह आईना देखते हुए अपने आप ही बोलता रहा: “एक प्रतिष्ठित महिला की शराफत आजमाने के बाद मैंने तुम्हें नीच, रूसवा और मजबूर तलाक़शुदा औरत की हैसियत से जाना। मैंने तुम से बेहद प्यार किया और इस घर की मालकिन बनाया और देश के सबसे अच्छे इंसान ने तुमसे इश्क किया, मगर उसके बदले में मुझे क्या मिला? तू भाग गई, हाँ तू भाग खड़ी हुई ताकि जंगल में मारी जाओ, तो अब जाओ ज़हन्नुम में भुगतो खुद ही... “क़रीब शाम में 9 बजे कुछ लोग ‘हसूना-अल-मगरिबी’ के घर आए और जूए की मेज़ के इर्द-गिर्द बैठ गए, ‘इनायात’ और ‘बहेजा’ (दो लड़कियाँ) उनके बीच विहस्की और नमकीन लेकर घूमने लगीं। उस घटना की ख़बर जब उन लोगों को मिली तो ‘फ़हमी रमज़ान’ नाम के एक आदमी ने कहा: “भाई ‘हसुना’! हो सकता है तुम्हें पूछ-ताछ के लिए बुलाया जाए।” उसकी बात सुनकर ‘हसुना’ ने कहा: “मगर मैंने तो एक साल से उसे देखा तक नहीं... “चाहें तुमने ना देखा हो...”

वहीं मौजूद एक और आदमी ‘सईद-अल-इमाम’ ने बहुत एहतियात के अंदाज़ में कहा:

“जब तक हत्यारा गिरफ़्तार न कर लिया जाए, हमें अपने आप पुलिस के पास न जाना चाहिए, इसी में ही अक्लमंदी है...”

इन बातों ने ‘हसूना’ को परेशान कर दिया। वह उसी परेशानी की हालत में चिल्लाया:

“मेरा इस वारदात से कुछ लेना-देना नहीं है, मैं साबित कर दूंगा।”

एक और जुवारी ‘हसनी-अल-दीनारी’ ने हमदर्दी के अंदाज़ में कहा:

“बेवकूफी मत करो, पुलिस के पास जाओ और सब कुछ बता दो...”

“क्या तुम चाहते हो कि मैं यह कुबूल कर लूँ कि वह मेरे यहाँ काम करती थी?” हसूना ने घबराई हुई आवाज़ में पूछा।

‘हसनी-अल-दीनारी’ ने उसकी बात काटी और बोला:

“हरगिज़ नहीं, मेरे कहने का मतलब यह नहीं था, तुम बस इतना कहना कि वह तुम्हारी दोस्त थी और एक साल से उसका कोई अता-पता नहीं था।”

“और अगर मेरी जॉब या मेरे पहचान पत्र के बारे में पूछ-ताछ हुई या मेरे घर का पता लगा लिया गया तो क्या होगा?”

“मगर फिर भी खामोश रहने में ज़्यादा खतरा है...”

‘हसूना’ इतनी हिम्मत नहीं कर सका और गुस्से और नाराज़गी में हाथ हवा में लहराया और मन ही मन में मरने वाली का नाम लेते हुए ज़ोर से बोला:

“क्या मेरी जिंदगी को मुश्किल में डालने के लिए तुम्हारा क़त्ल होना ज़रूरी था?”

‘हसनी-अल-दीनारी’ ने थोड़े गुस्से में कहा:

“भाई! मैंने तुम्हें कितना समझाया था! लेकिन तुमने उसके साथ जानवरों का सा व्यवहार किया! तुम बेरहम थे हालाँकि वह तुम पर जान छिड़कती थी।”

‘फतहिया-अल-सुलतानी’ नाम की एक महिला शाम के समय अपने उस कमरे में सो कर जगी जहाँ वह ‘दोलत’, ‘नेमात’, ‘अनसिया’ और ‘उलिया’ नाम की महिलाओं के साथ रहती थी। उसके दिल में सबसे पहले ‘

दरिय्या', 'शलबिया' की बात आई। जितनी देर वह बाथरूम में रही उसका सिर गुस्से से फटता ही रहा, फिर आईने के सामने खड़ी हो कर मेकअप करते हुए बोली:

“सुवरनी, कुतिया कहीं की, जाने अपने आप को क्या समझती थी!”

उसी समय 'दोलत' ने जम्हाई ली, वह समझ गई थी कि 'फ़तहिय्या' किसे गालियाँ बक रही है और 'शलबिया' की ओर से माफ़ी चाहने के अंदाज़ में बोली:

“वह नशे की हालत में थी। चाहे कुछ भी हो, वह बहुत शराब पीती थी, ड्रम के ड्रम हलक़ में उंडेल लेती थी फिर भी उसका सिर नहीं चकराता था।”

'फ़तहिय्या' थोड़ी देर के लिए असल बात को भूल गई और अपने बिखरे बालों को संवारने लगी, फिर अचानक उसे कुछ याद आया और कहने लगी:

“बड़े ऊँचे-ऊँचे सपने देख रही थी! माफ़ करना मैडम! तू अपनी औकात भूल गई थी।”

“वह नशे की हालत में थी, यह उसकी आदत नहीं थी, बस तुम से हंसी-ठिठोली करना चाहती थी, पता करो उसने रात कहाँ गुज़ारी? किस जहन्नुम में और किस चूहे के साथ। आज रात वह समझ जाएगी कि मैं कौन हूँ!” 'नेमात' ने भी कहा।

रात होते ही वह गई और यँ ही 'नील' नदी के किनारे काफ़ी देर तक घूमती रही, फिर 'हलवानी कोकब-अल-शक़ कैफ़ेटेरिया' गई और दूसरी मंज़िल पर रिज़र्व सीट पर बैठ गई। वहाँ मौजूद लोगों को कनखियों से देखती रही और किसी का इंतज़ार करने लगी। कभी-कभी कैफ़ेटेरिया के गेट की ओर भी देखती और अपनी विरोधी से मिलने के लिए बेताब हो जाती। एक बार जब वेटर उसके पास से गुज़रा तो उसने पूछा:

“क्या तुमने 'दरिय्या'(शलबिया) को देखा है?”

“वह बस आने ही वाली है।” वेटर ने तुरंत जवाब दिया।

आज 'आदिल' 'नील' नदी के किनारे पार्को में घूमता रहा। वह कॉलेज नहीं गया और कल रात एक घंटे भी नहीं सोया था। उसने आज का अख़बार बग़ल में दबा रखा था। वह जब भी अपने आपको अकेला पाता, 'अपराध व दुर्घटनाओं' का पन्ना खोल कर उस तस्वीर को देखता रहता। अचानक उसे महसूस हुआ कि वह थकान के कारण गिर पड़ेगा। उसके मुँह का थूक सूख गया था और मज़ा कड़वा हो चुका था और साँसें आहिस्ता-आहिस्ता चलने लगी थीं। फिर यँ लगा जैसे समंदरी तूफ़ान थम गया हो, भड़कते हुए सवालालात ख़त्म हो गए हों, ग़लत फैसले जारी हो चुके हों। उसके बावजूद उसे ज़रा भी एहसास नहीं था कि उसने अपने मक़सद को पा लिया या उसकी माँगी मुराद पूरी हो गई हो, कुछ भी नहीं, वही ख़ालीपन और टूट-फूट। 'तुम्हारे ख़िलाफ़ फैसला हो चुका है, अब कोई भागने का रास्ता नहीं है।' उसका ज़मीर गवाही देता था कि 'अगर पैष होने में ख़तरा है तो भागना उससे भी ज़्यादा ख़तरनाक है। कहाँ भागोगे? कितनी ही निगाहों ने तुम्हें 'शलबिया' को ले जाते देखा होगा। हाँ!

हाँ! उस समय तुम्हें ख़याल भी आया कि 'अहराम' की सीढ़ियों से कोई आवाज़ दे रहा है, इन सब बातों के अलावा पुलिस भी बंद जगहों में हवा की तरह भरी हुई है। फिर उस पर बेखुदी सी तारी हो गई।

“तुम मेरा पीछा कहाँ तक करोगी? कितना अच्छा होता हम जंगल में कहीं दूर चले जाते। लोग तुम्हारे बारे में कॉलेज में पूछते हैं, घर के आस-पास तुम्हारा इंतज़ार करते हैं। हमें किस चीज़ ने एक मिनट के लिए भी पीछे

मुड़ने से रोक दिया था। 'दरिय्या'!(शलबिया) तुम हमेशा झूठ बोलती रही! मैं झूठ नहीं बालता लेकिन तुम्हारे पास तो जैसे दिल ही नहीं था। हमारे इर्द-गिर्द कितना ज़्यादा अंधेरा छाया हुआ था। तुम्हारा दिल पत्थर की तरह सख्त था।”

“आदिल! तुम्हारी आवाज़ बदली हुई है और मुझे अंधेरा पसंद नहीं है। एक घंटे बाद तुम सिर्फ अंधेरा ही देखोगे।” उसे अपने अंदर से ही आवाज़ सुनाई दी।

“शलबिया! हर चीज़ खत्म हो चुकी है और अब तुम मरने के बाद भी वैसे ही परेशान कर रही हो जैसे कि ज़िंदगी में करती थी। तुम न महिला थी और न पुरुष, तुम्हारा दिल मुहब्बत से हमेशा ख़ाली रहा, तुम एक बुरी आत्मा थीं जो बुराई से पैदा हुई और ज़िंदगी भर बुराई में ही लिपटी रही।” उसके शब्द अब टूटते जा रहे थे और सिर भारी-भारी था।

#ऐसोसिएट प्रोफेसर, अरबी एवं अफ्रीकी अध्ययन केंद्र, जेएनयू, नई दिल्ली

अनुवाद

कविता (अनुवाद)

(Translation of Indonesian poem "TAPI" written by SutardjiCalzoumBachri)

रवीश राजन्या

मैं तुम्हारे लिए लाया जब सुमन
" और क्या ?" मगर था तेरा कथन
भावना अपनी तुम्हे जब किया अर्पण
"बस इतना!" मगर था तेरा कथन
दिया अपने रक्त का कण-कण
"बस यही ?" मगर था तेरा कथन
स्वप्न अपना जब किया मैंने समर्पण
"यद्यपि " सा मगर था तेरा कथन
दे दिए जो भी थे मेरे गम - घुटन

"ठीक लेकिन " मगर था तेरा कथन
सौंप डाला स्वयं ही अपना मरा तन
" कसक थोड़ा "मगर कथन
क्या है अब भी रह गया तेरा था कथन
दिया तुम्हे मैंने जब आत्मा और मन
"ठीक लेकिन "मगर था तेरा कम ?
रह गया मन में हमारे यह भरम !

चातक

अक्लान्त कण्ठ के रूदन से,
मधुबन भी गीला हो न सका।
फिर तू रोया स्वारथबस क्यों?
परमारथ तुझसे हो न सका।
जब तू रोता सब हँस पड़ते,
चातक! तू नीरद क्यों न बना?
जिसकी संध्या में दैन्य बना,
वह जीवन तेरा हो न सका।
रो-रो कर नीर बहा डाले,
पर अपनी प्यास बुझा न सका।
नभ से गिरकर जो मोती हो,
ऐसा स्वातीकण क्यों न बना?
तपती सिकता में गिरकर जो,
आँसू तेरे रजकण न बने।
मुरझाई कलियों की पलकों पर,
फिर क्यों अश्रुवितान बने?
होकर कृतज्ञ जो रो देता,
उस अलि के आँसू क्यों न बना?
चातक तू नीरद क्यों न बना?

अध्यक्ष, ऐतिहासिक अध्ययन संस्थान, सामाजिक विज्ञान संस्थान, जेएनयू

प्रमोद कुमार तिवारी की कविताएं

जेएनयू की लड़की

देखा मैंने उसे
जे.एन.यू. की सबसे ऊँची चट्टान पर
डैनों की तरह हाथ फैलाए
उड़ने को आतुर

देख रही थी वह
अपने पैरों के नीचे
हाथ बाँधे खड़ी
सबसे बड़े लोकतंत्र की राजधानी को
जहाँ रही है चीरहरण की लंबी परंपरा

अलकों के पीछे चमकता चेहरा...
जैसे काले बादलों को चीर के
निकल रहा हो
चाँद नहीं! सूरज
गजब की सुंदर लगी वो
चेहरे पर थी
उल्लास की चिकनाई, विश्वास की चमक
पैरों में बेफिक्री की चपलता

दिखी वो रात के एक बजे
सुनसान पगडंडियों पर कुलांचें भरती
याद आ गई 'कलावती बुआ'
घर से निकलने से पहले
छः साल के चुन्नू की मिन्नतें करतीं
साथ चलने को।

पहली बार जाना
हँसती हूँ लड़कियाँ भी
राह चलते छेड़ देती हूँ
ये भी कोई तराना।

पर्वतारोहण अभियान से पहले
उठाए थी बड़ा सा बैग कंधे पर
चेहरे की चमक कह रही थी
ये तो कुछ भी नहीं
सदियों से चले आ रहे बोझ के आगे
हाँफता समय चकित नजरों से देख रहा था
उसकी गति को।

तन कर खड़ी थी मंच पर
लगा दादी ने ले लिया बदला
जिसकी कमर टेढ़ी हो गई थी
रूढ़ियों के भार से
प्राणों में समेट लिया
उसकी पवित्र खिलखिलाहट को
देर तक महसूस
माँ का प्रतिकार
जिसकी चंचलता
चढ़ा दी गई थी
शालीनता की सूली पर

बहुत-बहुत बधाई ऐ लड़की!
देखना! बचाना अपनी आग को
जमाने की पुरानी ठंडी हवाओं से
उम्र के जटिल जालों से
दूर रखना अपने सपनों को
हो सके तो बिखेर देना
सपनों को हवाओं में
दुनिया के कोने-कोने में फैल जाँ

तुम्हारी स्वतंत्रता की खुशबू

लेखक की दुनिया/ कविता

दुर्गेश देविक 'सहर'

पीएचडी, प्रथम वर्ष, स्कूल ऑफ लाइफ साइंस

लॉकडाउन में रोटियाँ

दो जिंदगियां चल रही थी, मौत से लेकर चुनौतियाँ।
नवजात शिशु घर आया. और बढ़ गई चुनौतियाँ ॥
रोज सुबह को खाकर आते, कुछ बांध लाते रोटियाँ ।
सुबह-शाम तक यंत्र जैसी, चलती रहती रोटियाँ ॥
जैसे-जैसे दिन गुजरते, वैसे बढ़ने लगी रोटियाँ ।
मन नहीं था घर से जाने का, पर जिद पर अड़ गई रोटियाँ ॥
पता नहीं क्यूँ ? लोग, इतिहास से सीख नहीं पाते हैं,
जो शहर की खातिर, गांव छोड़ कर आते हैं ।
किराएदार ही बनते हैं, या एहसान उठाते हैं ॥
जब-जब सत्ताएं बढ़ती हैं, अपनी आमजन से दूरियाँ ।
तब-तब संघर्ष बनके, रह जाती है रोटियाँ ॥
आज पता नहीं क्यूँ ? याद आ गई, घर की बनी रोटियाँ ।
पैदल ही घर चलने लगे, वो ले बगल में रोटियाँ ॥
इन संघर्षों का क्या ?, मर्म निकाला जाएगा ।
उन्हें पता था कोई नहीं अब, मुफलिसी में हाथ बढ़ाने आएगा ॥

क्रूर रास्ता चुन लिया, क्योंकि उन्हें थी बचानी रोटियाँ ।
रोटियों को ही लेकर चल रही थी, आज ढेर सारी रोटियाँ ॥
चलते फिरते थक गई थी, वो भूखी प्यासी रोटियाँ ।
मौत की ही सीढ़ियों पे सो गई, आज ढेर सारी रोटियाँ ॥
उद्योग के सम्मान को ठेस पहुंची, तो काट डाली बोटियाँ ।
रोटियां के लाल रंग, और पोटलियों के अनेक रंग,
आज सब एक हो गई, बोटियां और रोटियाँ ॥
भूख भी न मिटा सकी, और लाश बन गई रोटियाँ ।
नहीं उदर में जा सकीं, 'सहर' फैली जमीं पे रोटियाँ ॥
आखिरी भूख शांत कर देतीं, पर बड़ी क्रूर निकली रोटियाँ ।
सियासत भी भूखी बैठी थी, अब सेक रही है रोटियाँ ॥

लेखक की दुनिया / कविता

अध्ययन केंद्र

संस्थान

पिंकी भारद्वाज

एमफिल, दक्षिण एशियाई

अंतरराष्ट्रीय अध्ययन

खामोशियों का शोर

खामोशियों का शोर है,
इस रात की कहाँ भोर है,
मिलता नहीं पता अपने घर का,
पर इमारतें चारों ओर हैं,
भीतर भीतर मरते लोग यहाँ,
और वैराग्य का बस जोर है,
जलजले हैं मन की हलचलों के,
सुकून का नहीं ठिकाना-ठौर है,
बरस बीत गए जिसमें रहते-रहते,
अपनी नहीं वह शख्सियत और है,
दिलों में फैला अवसाद आतंक-सा,
यह मुसीबतों का दौर है,
मन में उठा है भँवर सा,
हर सांस काटा दिन पहाड़ सा
जीवन समर घनघोर है,
इन घुटन की आँधियों से,
लड़ता तन का हर पोर है, इस गहन तप में प्राण रक्षा की,
बस लगी एक होड़ है,
निकलने को इस निराशा के अंधकूप से,
पकड़े नाजुक सी आशा डोर है,
चल पड़े हैं लिए ज्वाला आत्मबल कि,

हम भी कहां रणछोड़ हैं

लेखक की दुनिया / कविता

सौम्या अवस्थी

एमए,

हिंदी

प्रथम वर्ष

अपने घर

मुझसे एक औरत ने कहा
अब तुम 'अपने घर' जाओ
शायद उससे भी किसी ने कहा होगा
पर क्या उसने पूछा था तब कहने वालों से
शायद नहीं
पूछा होता तो यह प्रश्न आगे नहीं बढ़ता 'पीढ़ी दर पीढ़ी'
तब औरत ही दूसरी औरत के लिए उसका 'अपना घर' बनाती
जिसे वह मकान से घर में गढ़ती है
पर कैसे यह संभव हो पाता
जब खुद में उसका कोई अस्तित्व नहीं
उसे गढ़ा गया है
रटाई गई है 'अपने घर' की परिभाषा
और उसने रट ली औरत है न 'प्रश्न कैसे'
और फिर
प्रश्न का उत्तर कैसे दे
निरुत्तर प्रश्न,
गढ़ा जटिल
है, इच्छुक

उत्तर देने को
‘पर कैसे’
“पर कैसे”
यह तो उस सरंचना का भाग नहीं
जो गढ़ा तुमने
हाँ, उसमें इस ‘शब्द’ का कोई स्थान नहीं
‘शब्द’ का उत्तर पाने के लिए
पहले सुलझना होगा स्वयं,
गढ़ने को
‘नया’
‘अस्तित्व’ भी विश्व में गढ़ सके
यह विचार।
कर सके ‘विचार’, ‘प्रश्न’ “कैसे”
बदलने को परिभाषा ‘अपने घर’ की
बदलनी होगी “परिभाषा उस औरत की”
परिभाषा उस औरत की
जिसने रटाई गई ‘अपने घर’ की परिभाषा दूसरी औरत को दी थी
‘छूट में’
पर भविष्य यह नहीं होगा
क्योंकि वर्तमान गढ़ा जा रहा है।
और उसे गढ़ रही है वह तीसरी औरत



लेखक की दुनिया / कविता

मोनिका सिंह
भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू

सपने

जिन्दगी की, इनायत होती है उम्मीदें,
उम्मीदें जो बेहतर को बेहतरीन हो जाने की तसल्ली दें।
उम्मीदें यूँ अकेले नहीं आती, उम्मीदों के साथ
आते हैं सपने।

सपने, जो ख्वाब हैं अधूरी ख्वाहिशों के पूरी होने के।
सपने, जिनमें पिरोयी है जिन्दगी खुदा ने।

सपने देखती आँखें दुनिया की सबसे हसीन आँखें हैं,
उन आँखों में सजी है।

प्रकृति के अनन्त तक बने रहने की अनवरत कोशिश।
हर एक के सपनों को मुनासिब नहीं मंजिल,
वे सपने भी मरते नहीं आसानी से हो जाते हैं गाफिल।
"अधूरे सपने नहीं ठहरते कभी कोशिशो से हारकर,
सपने रूकते हैं हालातों से हारकर। ।

पर झुकते नहीं सपने, सिर्फ मरते हैं सपने। ।

समाज, बाहुबलियों ने बनाया है जिसे,
वो समाज करता है साजिशें
कमजोरों, शोषितों के सपने मार देने को,
कमजोरों के सपनों में होती हैं, समता,मानवता
और किसी के सपने ना टूटने देने का सुकन॥

शायद इसीलिए अधूरे रह जाते हैं अक्सर
बहू बन जाने वाली बेटियों के सपने,
प्रेमिका से पत्नी बन जाने वाली लड़कियों के सपने,
गरीबों के घर जन्मने वाली औलादो के सपने,
हवशी-दरिन्दों का शिकार बन जाने वाली दामिनियों
के सपने,

बेटे की चाह में पैदा हुई अनचाही बेटियों के अनदेखे सपने।
कच्ची उमर में ब्याह दी गई लाडलियों के सपने।
भाई को काबिल बनाने की कोशिश में लगे मध्यवर्गीय
परिवार में बहनों के सपने।
माँ, जिसे महानता के चरम पर बैठाने के बावजूद,
उसके खुद अपने लिए देखे गए सपने।
और तमाम सपने जिनमें थी समता की चाह ।
बदलाव,कामयाबी और आगे बढ़कर रूढ़ियों

को बदलने की चाह,
शोषण के खिलाफ इंकार का साहस रखने की चाह।

किसानों, मजदूरों और दलितों से
सदियों से छिना गया है सपने देखने का हक।
अब उन्हें लगता है उनकी हैसियत से परे है
ये सपने देखने का कौतुक। ।

इंसा को जीने की उमीद देते हैं सपने।
कैसे जी लेते हैं ये ताउम्र विना उम्मीद विना सपने। ।

कुछ हिम्मत वालों ने हासिल किए है अपने सपने,
बनें हैं काबिल।
वो बनते हैं पथ-प्रदर्शक, देते हैं एक नया भरोसा
सपनों के पूरे होने का, बने हैं हौसले की मिसाल। ।

प्रकृति कैसे समझाए कमजारों,मासूमों को कि
सपने देखना उतना ही सहज,
जैसे हम लेते हैं साँसें महज। ।

ईश्वर पूछ रहे हैं उन सूनी आँखों वाले बिना
सपनों के कोरे इंसानों से,

“क्या तुम जिंदा हो !”

साक्षी पाण्डेय
भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू

कविता

बच्चे घर अपने खिलौनों के ही लिए नहीं
बनाते ।

कभी-कभी एक घर बना लेते हैं, वो अपने
मन के भीतर ।

जहाँ कैद हो जाता है बचपन, जो कभी जिया
नहीं जाता ।

जहां बंद हो जाती है एक बच्चे की
मासूमियत, जिसे महसूस करने के लिए वे
दरवाज़े कभी खुल नहीं पाते ।

जहां रह जाता है अकेला बचपन, जो पालथी
मार कर बैठ जाता है ।

किसी चीज़ की उम्मीद में ।

लेखक की दुनिया / कविता

निवर्णिता सुमन

हिंदी शोधार्थी, भारतीय भाषा

केंद्र

देखा है मैंने

देखा है मैंने—
घर, गलियों, मोहल्लों को
एक-एक कर वीरान होते ।
चन्द वर्षों के अंतराल में,
चेहरों को अंजान होते।
बेपरवाह परवरिश में,
बच्चों को जवान होते।
देखा है मैंने।
भीड़ को नादान होते।
देखा है मैंने—
ज्योतिष और विज्ञान को
एकसाथ हैरान होते।
व्यर्थ की उधेड़बुन में,
दुनिया को हलकान होते।
एहसासो के मज़ार पर,
रिश्तों को बेजान होते।
देखा है मैंने।
इंसानो को शैतान होते।

केंद्र, जेएनयू

औरत

सुनते ही शब्द

'औरत'

उभरती है एक करुणामयी छवि

ऐसे उभरती है जैसे-

किसी अंधेरी कोठरी में जल रहा हो कोई खामोश दिया!

'औरत'

सुनते ही याद आती हैं मुझे

मेरी माँ की खुरदरी हथेलियां

उसके पैरों की फटी बिवाइयां

मुझ निरीह पर अटकी उसकी आँखें

और अनायास याद आता है मुझे

मेरी माँ का बुझा सा चेहरा

जिसकी हर लकीर में दर्ज है इतिहास!

'औरत'

सुनते ही याद आती है

माँ की चुटकी की माप

चुटकी जिससे घोलती है वो हर रिश्ते में स्वाद!

हर दिन एक चुटकी नमक के साथ बिखराती है खुद को

उसी चुटकी में सहेज लेती है पूरे परिवार का इतिहास

खुद की नींद में गड़ती सुइयों से

सिलती है एक परिवार का इतिहास।

'औरत'

सुनते ही याद आती है मुझे
कटघरे में खड़ी एक निर्दोष गुनाहगार
जिसने किए हैं संगीन अपराध—
सब्जी में एक चुटकी ज्यादा या कम नमक!
या उचककर झांकना घर की दीवार के पार!
या घर के बंद कमरे में खुद से कर लेना एक मौन संवाद!
या मुस्कराकर निकल जाना सड़क से उस पार!
ये सब औरत के सबसे बड़े अपराध हैं।

'औरत'

ये शब्द सुनते ही याद आती हैं
देवायां दुर्गा!
जिनके सामने नतमस्तक होता पुरुष
नहीं बर्दाश्त कर पाता—
अपनी बेटी के हाथ में एक अदद किताब!
अपनी पत्नी का बेपर्दा चेहरा!
अपनी बहन का उन्मुक्त अट्टहास!
और अपनी प्रेमिका का बेतरतीब अंदाज!

'औरत'

ये लफ़्ज सुनकर
नहीं याद आती हैं सिर्फ औरतें
याद आते हैं मर्द भी।
मर्द जिनकी आँखों के नीचे ज़मा है!
ऐसे लाखों षडयन्त्रों का इतिहास
जिन्होंने औरत को बनाया है 'औरत'
थोपी हैं अपनी अर्हताएं
एक अच्छी औरत होने के लिए!
औरत बन जाती है 'अच्छी औरत'
अपने मनुष्यत्व की कीमत पर।

एक लड़की को पैदा होते ही
इस दुनिया की दीवार पर
बड़े बड़े अक्षरों में विज्ञापन मिलते हैं
'यहां उम्दा क्वालिटी की औरतें बनाई जाती हैं....'
संस्थान का स्थान—

दुनिया का कोई भी कोना!

कोई भी परिवार!

कोई भी समाज!

रश्मि

भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू

हर खास को मैंने आम कहा

हर सुबह को मैंने शाम कहा
हर खास को मैंने आम कहा
जो रास्ता ना जाए तेरे घर
उस रास्ते को मैंने हराम कहा

जो तुम सामने हो और हम नाले, दिल थाम, ऐसा कैसे?
जो हमारी नज़रें ना पकड़ी जाएं सर-ए-आम, ऐसा कैसे?
दिल के इल्मों के लक्षण आंखों में पाए जाते हैं
सच्चा आशिक हो कोई और ना हो बदनाम, ऐसा कैसे?
सबको लगता है आशकी में आराम होता है
इनको क्या बताऊं दिल के ज़ख्म का ना कोई बाम होता है
कोल्हू तो चल रहा है बैल मगर कब का मर गया
खोखली चीजों का भी भला दाम होता है?

यह जान चुके हैं, आशकी का अंजाम, अच्छा ना होगा
दिल के मामलों में दिमाग से काम, अच्छा ना होगा
खुद को खंजर मारने के बाद
तुमसे लेना इंतकाम, अच्छा ना होगा
मेरी मौत पर लगाम तू है
जिंदगी का मकाम तू है
तेरे सिवा और कोई नहीं मेरे जहन में
मेरी जिंदगी तमाम तू है।

ले

खक की दुनिया / कविता

समीर नरमणि

रुसी भाषा अध्ययन केंद्र, जेएनयू

उनकी उड़ान

निकल रहे घर से
मोम की डगर से
अभी पहचान बाकी है,
उनकी उड़ान बाकी है ।

आ रहे गांव से
लकड़ियों की नाव से
अभी तूफान बाकी है,
उनकी उड़ान बाकी है ।

कह रहे जोर से,
तुम सुन रहे ना गौर से ?
अभी थकान बाकी है,
उनकी उड़ान बाकी है ।

डर रहे कहर से
घूरती नज़र से
अभी ऐलान बाकी है,
उनकी उड़ान बाकी है ॥

गज़ल

हमें हासिल है यूँ तो हर खुशी जानाँ
रही मौजूद फिर भी कुछ कमी जानाँ

सफ़र तो है मगर मंज़िल नहीं हासिल
इसे ही क्या है कहते जिंदगी जानाँ

है रहते आजकल ये सोचकर खुश हम
न जाँ लेले कहीं ये बे दिली जानाँ

है मुझको तिश्नगी तेरे निगाहों की
न सुकूँ दे सकेगी मैकशी जानाँ

है ठहरे अब भी तेरे नाम पर ये लब
है बाकी कोइ तो वाबस्तगी जानाँ



लेखक की दुनिया / गज़ल

रामपाल विश्वकर्मा

तखल्लुस- रहबर श्रावस्तवी
परास्नातक उर्दू प्रथम

सेमेस्टर

गज़ल

हम को बेदार कर गया कोई
जीना दुश्वार कर गया कोई

मैं तो मुफलिस था याँ की महफिल में
मुझको ज़रदार कर गया कोई

कैसे जाओगे उन की महफिल में
तुम को बीमार कर गया कोई

हम तो उन तक पहुँच चुके थे मगर
पीठ पर वार कर गया कोई

पहले थी राह मखमली 'रहबर'
राह पुरखार कर गया कोई



गणित, एसपीएस, जेएनयू

चलो बदलाव करें

चलो बदलाव करें नियत में आज से,
शब्दों की गोलियां निकल रही समाज से,
बेदखल हो रहे हम मानवता के ताज से,
आ बदल दे इस हवा को, अपनी आवाज से,
चलो बदलाव करे नियत में आज से।

कुछ बदल जाओ तुम, कुछ हम भी बदलते हैं,
छोड़ पथ पुराने को नई राह चलते हैं
बह गया बहुत रक्त, अब नहीं बहारेंगे,
गजल-गीत मिलकर नया गान गायेंगे
हम बनेंगे हिन्दू और तुझे मुसलमान बनायेंगे,
गजल-गीत मिलकर नया गान गायेंगे ।

छेड़ेंगे नई धुन, एक नई साज़ से,
यदि दूर हो इससे कटुता समाज से
हो सरोकार अपना अपने ही काज से,
मन ऊब गया है, इस कथित रामराज से
चलो बदलाव करें-।

मोनिका मीणा

भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू

में प्रकृति प्रेमी

में प्रकृति प्रेमी, जब भी बनाती हूँ घर,
उगाती हूँ पेड़, लगाती हूँ फूल,
बनाती हूँ पहाड़, बहाती हूँ नदी,
उड़ाती हूँ पंछी, केवल पन्नों पर,
और टांग देती हूँ, दिवारो पर !

गठकर परिभाषाएं वे तो चले गए,
मेरे 'में' होने की, तुम्हारे 'तुम' होने की,
'में' और 'तुम' दोनों जख्मी हैं, उन परिभाषाओं से!

2

वे नोट साधारण नहीं थे, एक पिता का पीएफ।
दे दिया हो किसी को, यह कहते हुए
बेटी को सुखी रखना।
एक माँ की दिहाड़ी देदी हो
किसी को, यह कहते हुए
बेटी को खुश रखना। एक बहन के गुल्लक की शोभा
दे दी हो किसी को, यह कहते हुए
बहन को खुश रखना
एक भाई के साइज बाकी बचत दे दी हो किसी को,
यह कहते हुए बहन को खुश रखना।
वे नोट चीख रहे थे, धोखा, धोखा।
अब खुशी बची नहीं उनमें, वह चीख दबगई,
दुनिया के ढोल में, वे सपने भी,
जो सिले थे उनकी खुली आंखों ने,
अब शेष हैं, केवल सिसकते सपने,
क्योंकि, वे नोट साधारण नहीं थे!

मेरी नायिका

मेरी नायिका नहीं हैं फूल जैसी कोमल, वह है कुछ- कुछ
सूरज जैसी, शीतल और प्रचण्ड जो समय के हिसाब से
धारण करती रूप।

वह नहीं हैं छुईमुई जैसी, मेहनत से पके तन में
अनंत तारों जैसे चुभे कांटे, छालों से बहता लहू,
ही उसका श्रृंगार हैं।

मेरी नायिका नहीं हैं तितली जैसी, वह है कुछ-कुछ
मधुमक्खी जैसी, जो उनकी भूखी आंखों पर
करती है वार डंक का ।

मेरी नायिका नहीं हैं ऊंचे महलों की रानी,
वह तो रहती पहाड़ों के साये में जिसकी साथिन प्रकृति
सदा हाथ थामें रहती ।

मेरी नायिका नहीं हैं आदमी के साथ खड़ी,
वह है अकेली परंतु मुस्कराती हुई ।
मेरी नायिका नहीं हैं मखमली बिस्तर पर सोती परी, वह है
रातों जाग कर लहलहाती फसल में
पानी मोड़ने वाली, लावणी करने वाली ।
मेरी नायिका नहीं हैं गाय-भैस जैसी,
वह है कुछ-कुछ कैद से परे हवा जैसी,
शीतल और प्रचण्ड जो समय के हिसाब से
धारण करती रूप।

मेरी नायिका नहीं हैं मदद की आशा लगाए बैठी,
वह स्वयं भरोटा ऊच, धरती को थपथपाती-सी
लौट आती है घर, इस थपथपाहट में छिपे हैं अनंत स्वर
जैसे प्रकृति में ध्वनियां ।



मैनेजर पाण्डेय : एक दार्शनिक आलोचक

देवेन्द्र चौबे

प्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय हिंदी के उन लेखकों में से एक हैं जिन्होंने रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, शिवकुमार मिश्र आदि के समानांतर पिछले पाँच दशकों की हिंदी आलोचना और विचारधारा की दुनिया में सार्थक हस्तक्षेप करते हुए उसका विस्तार किया है भक्ति साहित्य, प्रगतिशील आलोचना, मार्क्सवाद, साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की परंपरा आदि परलेखन के साथ ही उन्होंने संपादन एवं अनुवादों के जरिये समकालीन लेखन और आलोचना की दुनियां में गहरा हस्तक्षेप किया है उनकी दृष्टि मानवीय है तथा साहित्य एवं जीवन में उपस्थित विचारों के सहारे वे इस दुनियां तथा उसकी भौतिक गतिशीलता को समझने का प्रयास करते हैं यहां प्रस्तुत है उनके लेखन के बहाने समकालीन आलोचना, साहित्य और विचारधारा की दुनिया पर कुछ बातचीत।

पिछले कुछ दशकों से हिंदी साहित्य और विचारधारा की दुनिया में अनेक तरह के परिवर्तन आये हैं। उन परिवर्तनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, रामविलास शर्मा के जाने बाद प्रगतिशील चिंतन एवं विचारकों में आया एक नये प्रकार का बिखराव जिसने 1890 के बाद की दुनिया और जीवन को समझने का एक ऐतिहासिक एवं वर्गीय आधार दिया था तथा जिसका गहरा प्रभाव पूरी दुनिया सहित भारत पर भी पड़ा। 1918 के बाद जिस प्रकार महात्मा गाँधी भारतीय राजनीति और सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप करते हैं एवं बाद में अंबेडकर, भगत सिंह, ई. वी. रामास्वामी नायकन पेरियार, राममनोहर लोहिया आदि भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में आ रहे परिवर्तनों को समझने एवं उसे गतिशील बनाने का प्रयास करते हैं, उससे साहित्य और विचारधारा की दुनिया भी प्रभावित होती है। ये सारे विचारक भारत और यहां के समाज को समझने की कोशिश करते हैं, बन रही नयी दुनिया के समानांतर देश के मानसिक भूगोल में आ रहे बदलाव को एक रचनानात्मक दिशा देने की कोशिश करते हैं तथा भारतीय परंपराएं, वर्ण, जाति, संप्रदायवाद, पितृसत्ता, सामाजिक हिंसा आदि उन कारकों को सामूहिक चिंतन के केंद्र में लाते हैं जिन्हें समझे बिना भारत देश को समझना मुश्किल है। साहित्य में रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, शिवकुमार मिश्र, राजेंद्र यादव, रमेश कुंतल मेघ, रविभूषण, प्रदीप सक्सेना, धर्मवीर, विजय कुमार आदि जैसे पुराने एवं समकालीन आलोचक इन सवालों से टकराते हैं, संवाद करते हैं, उसके विध्वंस अथवा निर्माणकारी संरचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हैं; परंतु मैनेजर पाण्डेय अपने लेखन में इन सवालों को जिस बारीकी के साथ भारतीय चिंतन की परंपरा एवं आधुनिक विचारधाराओं से जोड़ते हुए एक समानांतर रेखा खड़ी करते हुए साहित्य के सामाजिक संदर्भों एवं संरचनाओं का सैद्धांतिकरण करते हैं, वह उन्हें समकालीन आलोचना एवं विचार के केंद्र में अलग खड़ा करता है। 1981 में *शब्द और कर्म, साहित्य और इतिहास दृष्टि*, 1982 में *कृष्ण कथा की परंपरा और सूरदास का काव्य*, 1989 में *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, 1993 में *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य*, 2002 में *अनभैचा*, 2005 में *आलोचना की सामाजिकता*, 2013 में *उपन्यास और लोकतंत्र, भारतीय समाज में प्रतिरोध*

की परंपरा, हिंदी कविता का अतीत और वर्तमान, आलोचना में सहमति-असहमति आदि मौलिक पुस्तकों के साथ ही अनूदित, संपादित पुस्तकों में- 1996 में *मुक्ति की पुकार*, 1998 में *सीवान की कविता*, *संकट के बावजूद*, *मेरे साक्षात्कार*, 1999 में *कुमार विकल की कविताएं*, 2005 में *देश की बात*, 2006 में *मैं भी मुंह में जबान रखता हूँ* 2009 में *संपत्तिशास्त्र*, 2009 में *माधव राव प्रतिनिधि संकलन*, 2010 में *नागार्जुन: चयनित कविताएं*, 2012 में देवनारायण द्विवेदी की *देश की बात*, 2012 में *सूर संचयिता*, 2014 में *पराधीनों की विजययात्रा*, 2015 में लोकगीतों और गीतों में 1857, 2016 में मुगल बादशाहों की हिंदी कविता आदि किताबों में उस समाज और देश को समझने की कोशिश करते हैं। यहां वे साहित्य और विचारधारा की दुनिया में के सहारे औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी ताकतों से टकराते एवं संवाद करते हुए स्वाधीनता के बाद के जनसमाज के सरोकारों को समझने की कोशिश करते हैं तथा उसे आलोचना एवं विचार का हिस्सा बनाते हुए रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा की तरह हिंदी समाज के गौरव को भारतीय समाज एवं चिंतन का गौरव बनाना चाहता है। इसके लिए वह भारतीय और पाश्चात्य विचारधाराओं से मुठभेड़ करते हैं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल की तरह उनके अंदर मौजूद देशीय तत्वों को वृहत्तर सामाजिक समुदायों से जोड़ते हुए हिंदी समाज के ज्ञान और उसके अर्थ का विस्तार करते हैं; आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह शोषित-वंचित-उपेक्षित जनसमाज के अंतर्मन का सामाजिकरण करते हुए उसे स्वाधीन एवं नये भारत के विकास का प्रतिभागी बनाना चाहते हैं एवं रामविलास शर्मा की तरह मार्क्सवाद के संदर्भों को हिंदी की जातीय अस्मिताओं से जोड़ते हुए उसे प्रगतिशील भारत के वैकल्पिक इतिहास के रूप में खड़ा करते हैं; जहां सभी के लिए समान और ठीक-ठीक जगह मिल सकें। इसीलिए, वे सोवियत संघ के विघटन एवं मार्क्सवाद पर पल प्रतिपल (2016) के लिए जेएनयू के तीन प्राध्यापकों एवं बातचीत की प्रक्रिया का हिस्सा बने दो शोधार्थियों को दिये एक साक्षात्कार में कहते हैं कि “मैं जिस मार्क्सवाद की भारत में कल्पना करता हूँ, उसमें गाँधी और अंबेडकर दोनों के विचारों का समावेश चाहता हूँ और आवश्यक मानता हूँ। भारत की कम्युनिस्ट पार्टियों और वामपंथी आंदोलनों की दुर्गति का एक कारण यह भी है कि न गाँधी से कुछ सीखा, न अंबेडकर से। मार्क्स ने 1871 के पेरिस कम्युन की असफलता के बाद कहा था, ‘क्रांति केवल एक पार्टी नहीं कर सकती, बल्कि पूरा राष्ट्र क्रांति करता है’। जाति व्यवस्था के अंत के बिना भारत में समाजवाद तो नहीं ही आयेगा, लोकतंत्र बच पाएगा या नहीं- इसमें मुझे संदेह होता है क्योंकि जाति व्यवस्था बुनियादी तौर पर लोकतंत्र विरोधी व्यवस्था है जाति व्यवस्था का स्थायी भाव भेदभाव है इसलिए भारतीय वामपंथ को गाँधी और अंबेडकर से सीखने की आवश्यकता है” (साहित्य शब्द और संसार के बीच विभिन्न तरह के संबंधों की अभिव्यक्ति है; मैनेजर पांडेय से जेएनयू के मणिंद्रनाथ ठाकुर, देवेंद्र चौबे और अखलाक अहमद आहन की बातचीत साथ में डॉ. गणपत तेली एवं डॉ.मीनाक्षी *पल प्रतिपल*, जुलाई-दिसंबर 2016)

आखिर, मैनेजर पाण्डेय हिंदी आलोचना में ऐसा क्या करते हैं जो उन्हें उनके समानधर्मी आलोचकों से अलग खड़ा कर देता है एवं उनका उल्लेख हिंदी की दुनिया में एक साहसी एवं विवेकशील आलोचक के रूप होने लगती है? हिंदी आलोचना में उनकी शुरुआत साहित्य के मूल्यांकन की ऐतिहासिक दृष्टि यानी कि मार्क्सवाद से होती है तथा साहित्य के समाजशास्त्र पर बात करते हुए वे आलोचना की सामाजिकता की बातें करने लगते हैं। यहां, वे साहित्यिक सिद्धांतों के साथ संवाद करते हैं उनकी व्याख्या करते हैं और हिंदी साहित्य को एक

नया सैद्धांतिक आधार देते हैं। इस दृष्टि से *साहित्य और इतिहास दृष्टि* उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय कृति है, जहां इतिहास भी है और सिद्धांत भी। इसी प्रकार, भक्ति साहित्य और उसमें भी वे सूरदास के साहित्य का व्यवहारिक मूल्यांकन करते हैं तथा आलोचना की यही व्यवहारिक दृष्टि उन्हें भारतीय समाज के इतिहास एवं उसकी संस्कृति की तरफ खींचकर ले जाती है जहां वे व्यास, वाल्मीकि, अश्वघोष, दारा शिकोह, गाँधी, अंबेडकर, रामचंद्र शुक्ल, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध आदि के बहाने बिना किसी भय के भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आलोचनात्मक व्याख्या करने की कोशिश करते हैं। इस दृष्टि से *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य और आलोचना की सामाजिकता* उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियां हैं जहां व्यवहारिक आलोचना का एक उदात्त रूप दिखलाई देता है। वे मानते हैं कि एक आलोचक के लिए अनुवाद कर्म उतना ही जरूरी है जितना कि रचना की सैद्धांतिक व्याख्या। इस रूप में *संकट के बावजूद* उनके आलोचना कर्म की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसकी भूमिका में उन्होंने उत्तर आधुनिकता की आलोचना करते हुए समकालीन विमर्श से जुड़े पांच साक्षात्कार और पांच आलेख दिया हैं। कार्ल मार्क्स के दो साक्षात्कार सहित जार्ज लूकाच, इवान क्लीना और रोबेर्तो फेर्नॉदेज रेतामार की बातचीत हमारे समय के सवाल, संकटों और विकल्पों को समझने में मदद करती हैं। इसी प्रकार, रेमण्ड विलियम के दो लेखों के अनुवाद सहित रिचर्ड हांगर्ट, फ्रेडरिक क्रूज और ज्योतिस्वरूप सक्सेना के आलेख क्रमशः *संस्कृति के मार्क्सवादी सिद्धांत में आधार और ऊपरी ढांचे की सार्थकता, लेखकीय प्रतिबद्धता एवं संबद्धता, साहित्यिक कल्पना और समाजशास्त्रीय कल्पना, साहित्यानुशासन में विचारधारा की स्थिति सहित एक सांस्कृतिक नीति के आयाम पर विचार प्रस्तावित करती है।* यहां, मैनेजर पाण्डेय उन सवालों से टकराने और उठाने से परहेज नहीं करते हैं जिन्हें देखकर सत्ता एवं मुख्यधारा के लोग असहज महसूस करने लगते हैं। उदाहरण के लिए, इस संदर्भ में ज्योतिस्वरूप सक्सेना की निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है जो समकालीन समय को समझने में मदद करती हैं “जानकर असंतोष को उभाड़ने, उत्कृष्ट उपभोगों के माध्यम से प्रतिष्ठा बनाने की भावना को जगाने, आधुनिक मनोवैज्ञानिक तरीकों से मतभेदों का बढ़ाने के लिए उत्तेजित करने, लोगों में असुरक्षा की भावना पैदा करके उन्हें ऐसे समुदायों से जुड़ने के लिए मजबूर करना जो ऊपरी तौर पर सद्भावनापूर्ण दिखलाई देते हुए भी आंतरिक प्रतिद्वंद्विता से बुरी तरह आक्रांत हो और जब जनता की मानवीय कमजोरियों को शिक्षा तथा मानसिकता द्वारा दूर करने की सर्वाधिक जरूरत तब उसकी मानवीय कमजोरियों का अपने लाभ के लिए उपयोग करने से” जैसा कि रिशमन ने कहा है कि एक सर्वसत्तात्मक राज्य के न होने पर भी निरंकुश समाज का अविर्भाव हो जाएगा। ऐसे समाज में सांस्कृतिक और सांस्कृतिक संस्थाएं विशाल वस्त्र भंडारों में लगे शीशों के समान हो जाती हैं, जहां वास्तविक चेतना और उसकी आवश्यकताएं प्रतिबिंबित होने की प्रक्रिया में ही विकृत हो जाती हैं।” (*संकट के बावजूद*, पृष्ठ: 190) हमारे समय का यह वही सच है जिसे कल्पना के सहारे रचना का विषय बनाना लेखक का काम है और साहस के साथ उसकी व्याख्या करना आलोचक का।

प्रसिद्ध विचारक एडवर्ड सईद ने अपने व्याख्यान के दौरान एक वक्तव्य दिया था जिसका उल्लेख बार-बार उनके प्रशंसक करते हैं कि “आलोचना का कार्य है सत्ता के सामने सच कहने का साहस।” अगर इस कथन को हम ध्यान में रखें और 1964 में नेहरू के निधन एवं कम्युनिस्ट पार्टी में हुए विभाजन के बाद देशीय संदर्भ में उभरकर आये सबाल्टर्न आंदोलन, किसान आंदोलन, नक्सलवाद, ग्रामीण संघर्ष, समानांतर आंदोलन

आदि पर विचार करें तो पता चलता है कि मैनेजर पाण्डेय हिंदी के इकलौते ऐसे आलोचक हैं जो साहस के साथ जो सच है, उसे कहते हैं; नित्यानंद तिवारी, विश्वनाथ त्रिपाठी, सत्यप्रकाश मिश्र, मधुरेश, नंदकिशोर नवल, रविभूषण आदि जैसे अपने समकालीन आलोचकों के साथ भी और रामविलास शर्मा, नगेंद्र, नामवर सिंह, शिवदान सिंह चौहान, रमेश कुंतल मेघ, खगेंद्र ठाकुर आदि जैसे वरिष्ठ आलोचकों के बीच भी। इस सच को कहने के लिए वे सटीक शब्दों का उपयोग करते हैं तथा बिना किसी भय के जनता एवं साहित्य चिंतकों के समक्ष अपनी बातें रखते हैं ताकि उनकी आवाज दूर-दूर तक जाए और साहित्य के जरिये भी देश को समझने एवं आत्मालोचन की प्रक्रिया शुरू हो सके। बौद्धिक ऐयासी, दलाल बुद्धिजीवी, भयावह भ्रांतियां, आर्थिक अराजकता, वैचारिक विभ्रम, इतराता पूंजीवाद, अर्थपिशाच, बौद्धिक फैशन आदि अनेक ऐसे शब्द हैं जो उनकी आलोचना में अर्थ का विस्तार करते हैं एवं समकालीन यथार्थ से मुठभेड़ करते हुए जीवन के ऐतिहासिक सच को सामने रखते हैं। उदाहरण के लिए, जब वे कहते हैं— “**पहले भारत में उपनिवेशवाद के साथ आधुनिकतावाद आया था। क्या अब भूमंडलीकरण के दौर में नव उपनिवेशवाद के साथ उत्तर आधुनिकतावाद आएगा? क्या भारत जैसे देश जो पश्चिम का उपनिवेश रह चुके हैं, वे विचारों का उपनिवेश बनते रहने के लिए अभिशप्त हैं? वह भी ऐसे विचारों का जो अब पश्चिम में मृत घोषित हो चुके हैं और जिनका खोखलापन साबित हो चुका है?**”; तब साफ पता चलता है कि उनके दिमाग में क्या चल रहा है! वे इस बात की ओर संकेत भी करते हैं कि जिस देश की जनता का एक बड़ा हिस्सा आदिम स्थितियों में जी रहा है सूरदास मध्ययुगीनता का शिकार हैं और तीसरा आधुनिक बनने के लिए संघर्ष कर रहा है; तब उस देश में उत्तर आधुनिकता मुट्ठी भर लोगों के लिए बौद्धिक फैशन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। 1998 में लेखों एवं अनुवादों की प्रकाशित किताब संकट के बावजूद में वे ये बातें तब कहते हैं, जब लेखन की दुनिया में संरचनावाद एवं उत्तर आधुनिकतावाद पत्र-पत्रिकाओं के लिए लोकप्रिय विचार बन चुका था और नयी-पुरानी पीढ़ी के अनेक लेखक उत्तर आधुनिकतावाद के सम्मोहन के शिकार थे। हिंदी के प्रकाशकों को इस विचारधारा में एक बड़ा बाजार दिखाई दे रहा था। कुछ एक विचारकों को छोड़कर हिंदी का पूरा वैचारिक जगत उत्तर आधुनिकतावाद पर नयी-नयी किताबें लिखकर मार्क्सवाद एवं अन्य विचारों के अंत की घोषणा-पर-घोषण किये जा रहा था, तब वह साहस के साथ जॉक देरिदा की विकेंद्रीकरण की धारणा (De-centering), भाषा को चिंतन का केंद्र बनाने की बात, मिशेल फूको की ज्ञान और सत्ता संबंधी धारणा (Knowledge is power), जुलिया क्रिस्तोवा की पाठ का अंतर्वर्ती संबंध की धारणा (Inter-textuality) और साहित्य को रहस्यात्मकता (डी-मीस्टीफिकेशन) से मुक्त करने की धारणा आदि विशेषताओं की चर्चा करते हुए, इस कारण विरोध करते हैं कि पश्चिम के मृत विचारों पर हिंदी के आलोचक आखिर क्यों एक नयी इमारत खड़ी करना चाहते हैं? आखिर क्यों यह देश पश्चिम का उपनिवेश बनते रहने के लिए अभिशप्त है जबकि संरचनावाद की अनेक धारणाएं या “**देरिदा की भाषा संबंधी चिंतन न केवल बौद्धों के भाषा संबंधी चिंतन से बहुत मिलता-जुलता है बल्कि स्वयं देरिदा ने नागार्जुन के भाषा संबंधी चिंतन पर ध्यान दिया है और उसका और उपयोग किया है।...पुराने साहित्यशास्त्र में ध्वनि को बहुत महत्व दिया गया है ध्वनि की पूरी प्रक्रिया है और आनंदवर्द्धन तथा अभिनवगुप्त द्वारा उसकी व्याख्या का जॉक देरिदा के भाषा चिंतन से बहुत दूर तक मेल दिखायी देता है।**” (देखें, उत्तर संरचनावाद को क्यों और कैसे पढ़ें; फ्रांसीसी चिंतन पर डॉ. मैनेजर पाण्डेय से हेमंत जोशी और दैवेन्द्र चौबे की बातचीत। *पल प्रतिपल*, अप्रैल-सितंबर 1992 के संदर्भ प्राचीन भारत में हुए भाषा संबंधी चिंतन से प्रभावित है।)

अर्थात्, अतीत में यूरोप ने जो ज्ञान भारत से लिया, उसे आधुनिक भारत क्यों नये चिंतन के रूप में स्वीकार करे? और अगर स्वीकार करे भी तो उसकी समीक्षा क्यों न करें ताकि जो ठीक-ठाक है, वही हमारे चिंतन का हिस्सा बने; जैसा कि मार्क्सवाद आदि विचारों को शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र आदि विचारकों सहित मैनेजर पाण्डेय ने भी स्वीकार किया तथा उसके सहारे हिंदी के प्रगतिशील साहित्य के मूल्यांकन का प्रयास किया। लेकिन मुश्किल यह है कि हिंदी के अनेक आलोचक इस प्रकार के पाश्चात्य विचारों को बिना समीक्षा को अपना देने के लिए तैयार बैठे हैं। इस क्रम में वे अपने एक निबंध **आलोचना की सामाजिकता** में सुधीश पचैरी के एक लेख- 'कबीर, धर्मवीर और फूको की जीनियोलॉजी' की निम्न पंक्तियों को उद्धृत करते हुए *"इंटरटेक्चुएलिटी के जमाने में सिर्फ़ मूर्ख ही दलित को कबीर में ढूँढ़ सकते हैं। जीनियोलोजिकल डिक्स्ट्रक्शन की यही खास बात है कि दलित कबीर की किताब में भले न हो, लेकिन जीनियोलोजी के वर्तमानत्व और दलितवाद के युद्ध में कबीर एक प्राथमिक सांस्कृतिक टेक्स्ट हो सकते हैं।"* लिखते हैं कि **"अभी तो मेरी चिंता केवल यह है कि ऐसी हिंदी में लिखी आलोचना कितनी सामाजिक होगी। हिंदी आलोचना की भाषा का एक और रूप वहां दिखाई देता है जहां आलोचना को रचना बनाने की कोशिश में व्यक्ति-वैचित्र्यवाद से होड़ करता उक्ति-वैचित्र्यवाद आलोचना की भाषा को 'संध्या-भाषा' बना देता है"** यही काम एक जमाने में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी हिंदी आलोचना में कलावाद, अभिव्यंजनावाद, व्यक्ति-वैचित्र्यवाद, प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा, फ्रायडवादी आलोचना आदि पाश्चात्य विचारों का विरोध करते हुए किया था जिसका विस्तार से उल्लेख वे 1929 में प्रकाशित **हिंदी साहित्य का इतिहास** में करते हैं तथा बाद में चिंतामणि के संग्रहित निबंधों में। महत्वपूर्ण बात है कि आचार्य शुक्ल 1917 की रूसी क्रांति या मार्क्सवाद का विरोध नहीं करते हैं और शायद यह भी एक कारण है कि हिंदी के मार्क्सवाद आलोचकों में रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र आदि उनका नाम आदर से लेते हैं तथा उनकी आलोचना पद्धति को आदर्श मानते हैं। एक आलोचक और साहित्य विचारक की यह भूमिका भी होती है कि वह अपने समय के अनावश्यक वैचारिक बाढ़ और शुक्ल जी के शब्दों में आ रहे **'कूडा-कड़कट'** रोकने के लिए डटकर खड़ा हो जाए तथा स्वीकारने के पहले उसकी कड़ी परीक्षा करें। इतना ही नहीं, साकारात्मक विचारधाराओं का समर्थन करते हुए साहस के साथ अनावश्यक विचारों का विरोध भी करें और उसे हिंदी में आने से रोके ताकि शुक्ल जी के शब्दों में **"हमारे साहित्य के स्वतंत्र और व्यापक विकास में सहायता पहुँचे।"** (*हिंदी साहित्य का इतिहास*: रामचंद्र शुक्ल, 1985, पृष्ठ 391)

कहा जाता है कि अपने अनुशासन को एक ऊँचाई प्रदान करने की यह भी एक पद्धति होती है कि आप पूरी आलोचनात्मक चेतना के साथ साहित्य के सामाजिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए आलोचना में साहस के साथ जो सच है, उसे **सच** कहें और जो झूठ है, उसे **झूठ**। तभी संबंधित साहित्य और विचार की दुनिया का विस्तार होता है एवं रचनात्मक संरचना की गाँठें खुलती हैं। नयी आलोचना की जमीन को तैयार करने के लिए इस प्रकार की आलोचनात्मक पहल करना जरूरी भी है। यहां, साहित्य के सामाजिक पक्ष का अर्थ यह भी है कि व्यवस्था द्वारा वृहत्तर समाज पर किये जा रहे प्रहारों का ठीक-ठीक आकलन करना ताकि निन्यानवे प्रतिशत समाज द्वारा अपनी जरूरतों के लिये किये जा रहे संघर्ष को एक सही दिशा मिल सके। यह आलोचना और

विचार का वही पक्ष है जिसे हाल के वर्षों में सोवियत संघ के विघटन के बाद 'ऑक्युपाई वाल स्ट्रीट' जैसे आंदोलन के दौरान लोगों ने देखा कि समाज, नव उदारवादी पूँजी से पीड़ित है और मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में "परिवर्तन की बैचेनी उसके मन में है इसलिए 'एक प्रतिशत बनाम निन्यानवे प्रतिशत' वाल-स्ट्रीट का नारा था। एक प्रतिशत लोगों ने दुनियां की सारी पूँजी पर कब्जा कर रखा है और बाकी लोग मर रहे हैं।" अर्थात्, वे मानते हैं कि लेखकों को अपने साहित्य में ऐसे सवालों से मुठभेड़ करना चाहिए जो सामाजिक विकास एवं देशीय संरचनाओं को समझने के लिए जरूरी हैं। और आलोचकों को भी साहस के साथ सत्ता के सामने इस प्रकार के सच कहने अथवा प्रस्तुत करने का समानांतर विकल्प रखना चाहिए; तभी, सही मायने में वे साहित्य और आलोचना की दुनिया का नेतृत्व कर पायेंगे। समकालीन आलोचकों में मैनेजर पाण्डेय यह काम साहस के साथ करते हैं और इस संदर्भ में अपने सहधर्मी आलोचकों के साथ संवाद एवं मुठभेड़ करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इस प्रसंग में वे कई बार उन आलोचकों पर सवाल भी खड़ा करते हैं जो आलोचना में पक्षधरता और पक्षपात में फर्क नहीं करते हैं और अपनी सुविधा के अनुसार सिद्धांत बनाते रहते हैं। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में ऐसे स्वधन्यमान् आलोचक कभी उत्साह में लेखक अथवा रचना की अतिरंजित प्रशंसा कर देते हैं तो कभी रक्तरंजित निंदा।

दरअसल, साहित्य और विचारधारा की दुनिया में ठीक-ठीक मैनेजर पाण्डेय का आगमन तब होता है, जब नेहरू के निधन के बाद जहाँ एक तरफ ग्रामीण भारत के आम जन जमींदारी एवं सामंती व्यवस्था के खिलाफ तनकर खड़े हो रहे थे, वहाँ दूसरी तरफ शहरी भारत सन् 70 के बाद वित्तीय एवं अन्य क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण के बाद एक वैश्विक ताकत बनकर उभरने के संकेत दे रहा था। साहित्य, सिनेमा, कला और विचारधारा की दुनिया में समानांतर आंदोलन अपनी धीमी उपस्थिति दर्ज कर रहा था। तभी आलोचना के जनवरी-मार्च 1974 के एक अंक में प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह का एक लेख प्रकाशित होता है- हिंदी साहित्य के पच्चीस वर्ष। इस लेख में नामवर सिंह आजादी के बाद के हिंदी साहित्य की उपलब्धियों का बखान करते हुए लिखते हैं कि "स्वाधीनता के प्रारंभिक तीन-चार वर्षों के संक्रांति काल के बाद देश में सांस्कृतिक नवजागरण की एक लहर आयी जिसका प्रभाव साहित्य में एक प्रकार के नव-रोमांटिक उत्थान के रूप में प्रकट हुआ।" यह लेख काफी प्रभावशाली है तथा इसमें नामवर सिंह स्वाधीनता के बाद के हिंदी साहित्य में उभरकर आई नयी रचनाशीलता का सर्मथन करते हैं तथा नयी कहानी, नयी कविता आदि का विश्लेषण करते हुए उस दौर के साहित्य को एक बड़ी उपलब्धि मानते हैं। यह सही भी है। कारण, नयी कहानी, नयी कविता तथा उस दौर में लिखे गये उपन्यास एवं नाटक आजादी के बाद के हिंदी साहित्य को एक बड़ी उपलब्धि प्रदान करते हैं। मुश्किल तब होती है, जब नामवर सिंह बातचीत के क्रम में 1964 के बाद के अकहानी, अकविता और 1967 के किसान आंदोलनों से जुड़े प्रतिरोध, संघर्ष एवं संघर्ष में मारे गये लोगों एवं उस दौर की रचनात्मक स्मृतियों को विस्मृत कर देते हैं। एक प्रतिबद्ध आलोचक की तरह मैनेजर पाण्डेय नामवर सिंह के इस आलोचनात्मक मूल्यांकन को बहस के केंद्र में खड़ा करते हैं तथा नामवर सिंह के सांस्कृतिक नवजागरण की धारणा का विरोध करते हुए प्रतिरोध की इस समानांतर धारा को इतिहास लेखन का आधार बनाने की वकालत करते हैं। इतना ही नहीं, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याओं पर विस्तार से चर्चा करते हुए स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएं लेख में वे नामवर सिंह द्वारा

'सांस्कृतिक नवजागरण' पर चर्चा के क्रम में छोड़ दिये गये सवालों को उठाते हैं तथा कहते हैं कि "विचारणीय यह है कि इस तथाकथित सांस्कृतिक नवजागरण की भूमि क्या है? इस काल-खण्ड में देश का बँटवारा हुआ, अभूतपूर्व सांप्रदायिक दंगों के भीषण हत्याकाण्ड में देश डूब गया, गाँधी की हत्या हुई, प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े कलाकारों, साहित्यकारों, पत्रकारों, रंगकर्मियों, पत्र-पत्रिकाओं का कठोर दमन किया गया, तेलंगाना के हजारों क्रांतिकारियों की निर्मम हत्या हुई, राजनीति और साहित्य में क्रांतिकारियों शक्तियों का विघटन और बिखराव हुआ, और शोषक वर्ग की सत्ता क्रमशः मजबूत होती गई।" (साहित्य और इतिहास दृष्टि: मैनेजर पाण्डेय, संस्करण: 2009, पृष्ठ 221)

स्पष्टतः 1947 के बाद के तथाकथित सांस्कृतिक नवजागरण पर यह एक जटिल सवाल है जो किसी भी आलोचक के सामने मुश्किल पैदा करेगा; परंतु, मैनेजर पाण्डेय जिस साहस और प्रतिबद्धता के साथ इन सवालों को उठाते हैं; उसका जितना गहरा संबंध हिंदी आलोचना एवं विचार की दुनिया के साथ है, उतना ही राष्ट्र की उन सामाजिक अस्मिताओं के साथ भी हैं जिन्हें गौण मानकर मुख्यधारा की दुनिया विस्मृत कर देती है। चाहे वह स्त्री अस्मिता का सवाल हो या दलित अस्मिता का अथवा आदिवासी अस्मिता का या इन अस्मिताओं के परे उन शोषित एवं वंचित अस्मिताओं का जिनका संबंध किसी भी वंचित-उपेक्षित समूह या समुदाय अथवा जाति होता है। आज के साहित्य का गहरा संबंध इन अस्मिताओं के साथ है जिसे समझने की कोशिश पिछली सदी के आठवें दशक से साहित्य के अध्येता लगातार करते आ रहे हैं। खास बात यह है कि रामविलास शर्मा एवं नामवर सिंह जैसे हिंदी के दोनों बड़े आलोचक चिंतन की प्रक्रिया में 1964 के बाद के संदर्भों एवं उन ऐतिहासिक परिघटनाओं को आलोचना का विषय नहीं बनाते हैं जिस पर आज 90 के बाद का साहित्य खड़ा है। चर्चा करते भी हैं तो अस्मितावादी या हाशिये के समाज के साहित्य को लेकर वे बहुत साकारात्मक नहीं हैं। जबकि यह सच है कि इन परिघटनाओं ने सामंतवाद और पूँजीवाद के गठजोड़ से 70 के दशक में खेतिहर मजदूरों और उपेक्षित-वंचित समुदायों को ताकत प्रदान किया था तथा गाँधी के किसान आंदोलन से परे जाकर कृषि-संघर्ष को दासता की बेड़ियों से मुक्त किया। उसी समय जमींदारी प्रथा का भी अंत हुआ तथा भूमि-सुधार की प्रक्रिया शुरू कर तत्कालीन सरकार ने पिछड़े समाज को बराबरी के सतह पर लाने की कोशिश की। फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास *परती परिकथा* इसका एक बड़ा उदाहरण है जिसकी तारीफ मैनेजर पाण्डेय हमेशा करते रहते हैं। बाबा नागार्जुन के *बलचनमा* में जहाँ समस्या की जड़ में जाने की कोशिश है, वहाँ रेणु के उपन्यास में उसके राजनीतिक-सामाजिक समाधान के प्रयास। यहां इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि तत्कालीन हिंदी आलोचना की मुख्यधारा ने उन लेखकों को भी विस्मृत कर दिया जो इस तरह की परिघटनाओं की ऊपज थे तथा जिससे ग्रामीण जीवन की संरचना एवं साहित्य तथा शहरी जीवन की मध्यवर्गीय चेतना में बड़ा परिवर्तन आया था। हिंदी में धूमिल, राजकमल चौधरी, कुमार विकल, जगदंबा प्रसाद दीक्षित, आलोक घन्वा, गोरख पाण्डेय, विजेंद्र अनिल, संजीव, अरूण प्रकाश, विजयकांत, मनमोहन, रामकुमार कृषक, सुरेश कांटक, कात्यायनी आदि जैसे लेखक या बाद के दलित आदि आंदोलनों से जुड़े ओमप्रकाश वाल्मीकि, धर्मवीर, मोहनदास नैमिषराय, कंवल भारती, राजकुमार पासी आदि इसी प्रकार की परिघटनाओं की ऊपज थे जिन्हें आलोचना की मुख्यधारा ने कभी ठीक से चर्चा का विषय ही नहीं बनाया और कभी नाम लिया भी तो ऐसे कि उनके न होने से भी हिंदी का सोलहों आना वैसा ही रहता, जैसा कि पहले था।

स्पष्टतः, मैनेजर पाण्डेय की असहमति नामवर सिंह की उन धारणाओं से नहीं है जिनका संबंध नयी कहानी, नयी कविता, उपन्यास, नाटक या आंचलिकता से है। वे इस दौर की रचनाशीलता का समर्थन करते हैं। बल्कि उन्हें दिक्कत तब होती है जब नामवर सिंह उस दौर में रचित साहित्य और उसके इतिहास को सांस्कृतिक नवजागरण से जोड़ते हैं और रचना की उस धारणा पर सवाल खड़ा करते हैं जिसे वे नव-रोमांटिक कहकर संबोधित करते हैं। यद्यपि, नामवर सिंह 1947 के बाद के साहित्य को जब नव-रोमांटिक कहकर संबोधित करते हैं, तब उनके ध्यान में 1947 के बाद की कविता में उभरकर आयी रागात्मकता एवं गीतात्मकता का होना एवं कहानी तथा उपन्यास में उदित आंचलिकता की धारा का केंद्र में आने से है जो जीवन में आये एक नये प्रकार के सम्मोहन-बोध का निर्माण करती हैं। परंतु, मैनेजर पाण्डेय को लगता है कि इस प्रक्रिया में उस दौर में लिखा गया वह यथार्थवादी साहित्य मूल्यांकन से बाहर हो जाता है जिसकी बुनियाद समकालीन समय के सवालों से हैं तथा जो समय के यथार्थ से सीधे मुठभेड़ करती हैं एवं जिनमें वृहत्तर समाज की गहरी पीड़ा और संघर्ष दर्ज हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इस दृष्टि से मूल्यांकन की प्रक्रिया में बहुत सारे लेखक साहित्य एवं विचार की दुनिया से बाहर हो जाते हैं। उन्हें न तो हिंदी आलोचना में जगह मिलती है और न ही साहित्य के इतिहास में। मैनेजर पाण्डेय ऐसे लेखकों की चिंता करते हैं, उनके अंदर मौजूद समकालीन समय के सवालों को गहरी संवेदनशीलता के साथ पकड़ने की कोशिश करते हैं तथा उनकी चिंताओं को मुख्यधारा के साहित्य चिंतन का हिस्सा बनाते हैं। स्त्री, दलित, आदिवासी साहित्य पर बात करना और उन्हें समकालीन विचार का हिस्सा बनाना उनकी इसी सोच का हिस्सा है। इसी प्रकार, वे जिस गहरी संवेदना के साथ वे मुक्तछंद के पहले कवि महेश नारायण आदि जैसे विस्मृत रचनाकार या महादेवी वर्मा के छायावादी व्यक्तित्व की बजाय उनकी *शृंखला की कड़ियां* आदि जैसे गद्य लेखन को स्त्री मुक्ति आंदोलन की प्रतिनिधि रचना मान; गंभीर एवं प्रतिबद्ध लेखन का हिस्सा मानते हुए विचार प्रक्रिया का हिस्सा बनाते हैं वह उनके आलोचनात्मक विवेक का एक बड़ा उदाहरण है। यद्यपि उनसे भी बहुत सारी चीजें छूट जाती हैं; जैसे 1890 से लेकर सन् 1930-35 के बीच का राधामोहन गोकुल का लेखन आदि। यद्यपि महेश नारायण, राधामोहन गोकुल, देवनारायण द्विवेदी आदि कई लेखकों की चर्चा आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी नहीं करते हैं और उस पर दुर्भाग्य यह कि उनका देखा-देखी या यूँ कहें कि साहित्य के इतिहास लेखन के प्रथमिक स्रोतों के लिए बाद के अधिकांश इतिहासकारों द्वारा आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर निर्भरता के कारण इस प्रकार के अनेक लेखक इतिहास में आने से रह जाते हैं। पर, देवनारायण द्विवेदी की *देश की बात* जैसे लेखक और उनकी पुस्तकों की चर्चा कर मैनेजर पाण्डेय इस कमी को पूरा करते हैं। ज्ञातव्य हो कि देवनारायण द्विवेदी उन लेखकों में से रहे हैं जो महावीर प्रसाद द्विवेदी, सखाराम गणेश देउस्कर आदि की तरह 1890 के बाद के ब्रिटिश कालीन भारत के आर्थिक-सामाजिक मुद्दों पर हिंदी साहित्य के इतिहास के द्विवेदी-काल (1900-1918) में किताबें लिखते हैं और सरकार के कोप का शिकार भी होते हैं। इस तरह के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए मैनेजर पाण्डेय उसका ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं तथा उसे वृहत्तर सामाजिक समूहों का हिस्सा मानते हुए साहित्य के केंद्र में खड़ा करते हैं।

दरअसल, मैनेजर पाण्डेय हिंदी के पहले ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने बगैर किसी परिणाम की चिंता किये, उन लेखकों को अपनी आलोचना एवं विचार का विषय बनाते हैं जिन पर कई तरह के आरोप लगाकर या वैसे उपनामों से घोषित कर लोग इतिहास और आलोचना से हमेशा बाहर रखने की कोशिश करते रहते हैं जिन्हें तथाकथित सभ्य समाज विचार या चर्चा का विषय नहीं बनाता है। यद्यपि इस चपेट में कई बार बाबा

नागार्जुन भी आये, परंतु उन्होंने अपने पारंपरिक ज्ञान की ताकत एवं व्यक्तित्व में फक्कड़पन के कारण आलोचना की मुख्यधारा की कुलीनता की कभी परवाह ही नहीं की और अनेक बार तो उसका मजाक भी उड़ाया। कई बार जब बाबा नागार्जुन जेएनयू आते, तब मैनेजर पाण्डेय के यहां ठहरते और प्रो. पाण्डेय कभी जेएनयू की सड़कों पर टहलते हुए या बातचीत में बाबा की कविताओं की जितनी मार्मिक व्याख्या करते, उसकी याद आते ही विश्वविद्यालय के पुराने छात्र आज भी रोमांचित हो उठते हैं। कुछ पंक्तियों की चर्चा में करूंगा जो उनके लेख नागार्जुन काव्य की भूमि और भूमिका का विस्तार में शामिल है— ‘उनकी एक कविता है ‘पैने दाँतों वाली’। यह कविता इस तरह शुरू होती है ‘ धूप में पसरकर लेटी है/मोटी-तगड़ी,अधड़, मादा सूअर।’ हिंदी में घोड़े पर अनेक कविताएं लिखी गई हैं, लेकिन सूअर पर केवल नागार्जुन ने कविता लिखी है यह कहते हुए कि यह भी तो मादरे हिंद की बेटी है।’ आगे वे लिखते हैं, “यह कविता सूअर पर होते हुए भी केवल सूअर पर नहीं है। वाक्य पूरी कविता को नया अर्थ देता है और उसे व्यापक भी बनाता है।”

सवाल यह नहीं है कि आप कविता लिखते हैं, सवाल यह है कि आप कविता में क्या लिखते हैं और अपनी बात कहने के लिए किन प्रतीकों और संदर्भों का उपयोग करते हैं? आमतौर से लोकप्रिय प्रतीकों का उपयोग करने वाले कवि आलोचकों को प्रिय लगते हैं। कारण, उससे कविता की व्याख्या सरल हो जाती है। तब आलोचक को उसे जटिल बनाने में अच्छा लगता है कि अब विद्वान-पाठक उसका लोहा मान लेगा। परंतु, बाबा जैसे कवि जिन वस्तुओं को प्रतीक बनाते हैं, उसे आलोचकों को खोलने की जरूरत ही नहीं पड़ती है। वहां तो आलोचक को ऐसी बुद्धि लगानी होती है कि अलोकप्रिय प्रतीक भी एक अर्थ दे और उसका एक संदर्भ निर्मित हो। और अगर वह अर्थ राष्ट्र से जुड़ा है तो इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है ? आलोचक की व्याख्या की क्षमता की परीक्षा यही होती है। मैनेजर पाण्डेय की आलोचना में रचना की व्याख्या की यह दृष्टि और चेतना देखी जा सकती है। 1964 के बाद के साहित्य में भी इस प्रकार के प्रतीक आ रहे थे और संभवतः इसीलिए हिंदी की मुख्यधारा की आलोचना उसे विचार का विषय नहीं बनाती है। धूमिल और राजकमल चौधरी इसके बड़े उदाहरण हैं। उस दौर के आलोचकों और उनकी आलोचनात्मक कृतियों में सातवें दशक के लेखकों के एक धारा के उपेक्षा की यह चेतना मुख्यधारा से जुड़े आलोचकों में देखी जा सकती है जिसे मैनेजर पाण्डेय एक चुनौती के रूप में लेते हैं तथा उसी मुख्यधारा के प्रतिमानों से आलोचना एवं विचारधारा की दुनिया में रचना को एक नया अर्थ देते हैं। यद्यपि वे समकालीन हिंदी आलोचना के एक बड़े विचारक हैं; परंतु, कई बार भक्ति-काव्य अथवा मध्यकालीन साहित्य के प्रति उनकी गहरी दिलचस्पी को देखकर लगता है कि क्या इसका बड़ा कारण कहीं भारतीय चिंतन परंपरा या दर्शन तो नहीं है? यह सच है कि बिना दर्शन के न तो सार्थक जीवन संभव है और न ही साहित्य। हिंदी अथवा मध्यकालीन भारतीय भाषाओं के भक्त कवियों का पूरा साहित्य इस दुनिया को समझने की कोशिश करता दिखलाई देता है; चाहे वह कबीर हो या सूर, तुलसी हो अथवा जायसी। मैनेजर पाण्डेय का यह मानना कि निर्गुण को लेकर राम के संदर्भ में कबीर का यह कथन कि “दशरथ सुत सब लोक बखाना, राम नाम को मरम है आना” और उसे याद करते हुए रामचरितमानस के शिव-पार्वती-सवांद में तुलसी का यह लिखना कि “एक बात नहीं मोहि सोहानी। /जदपि मोहे बस कहेहु भवानी।। /तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। /जेहि श्रुति गांव धरहि मुनि ध्याना।। /कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। /पाखंडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साच।।” भारतीय दर्शन के उन सवालों से संवाद करता दिखलाई देता है जहाँ ईश्वर के निर्गुण रूप को लेकर तुलसी निर्गुण पंथियों की कड़ी आलोचना करते हुए अतंतः यह

कहकर निर्गुण-सगुण के बीच एकता स्थापित करते हैं कि 'सगुनहिं अगुनहि नहि कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।। अगुन अरुप अलख अज जोड़े।। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।' वे मानते हैं कि आत्मसात करने की यह परंपरा विद्रोह के स्वर को दबाने की परंपरा है जिसके कारण "सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक प्रक्रिया के साथ सभी भक्त कवियों का संबंध एक जैसा" दिखलाई नहीं देता है।

वास्तव में, साहित्य और विचारधारा की दुनिया नये विचारों से जितना आतंकित होती है, उतना ही समाज की चुप्पी से भी। संकट का समय ऐसा ही होता है, जब कई बार लेखक अथवा आलोचक उन सवालों पर बातचीत करने से कतराते हैं, जो ज्ञान और सत्ता केंद्रों के लिए असहज होते हैं। लेकिन यह वही दौर होता है, जब लेखक अपने समय के अच्छे-बुरे सवालों से टकराते हुए दुनिया को समझने के नये दर्शन विकसित करता है। भारतीय चिंतन और दर्शन में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जहाँ संकट के समय महात्मा बुद्ध जैसे विचारकों ने जीवन और जगत को समझने के लिए दुनिया को एक नया मार्ग दिया। आज के समय के सवालों से टकराते हुए मैनेजर पाण्डेय जब गाँधी, अंबेडकर और मार्क्स की चर्चा करते हैं, तब वे कहीं-न-कहीं समकालीन विमर्श के बहाने समाज के सच को ही समझना चाहते हैं। उनका पूरा आलोचनात्मक लेखन एक दार्शनिक की तरह अपने समय के सवालों से संवाद करते हुए इस देश और दुनिया को ही समझने का प्रयास है। शायद, आलोचना एवं विचारधारा की दुनिया ऐसे ही काम करती है; समाज तो अपनी गति से चलता ही रहता है।

प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र; भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान; जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (भारत)

लेख

न पूरब से अभिभूत न पश्चिम से आक्रांत : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

शीतांशु

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के पहले इतिहासकार थे जिन्होंने हिंदी साहित्य को औपनिवेशिक प्रभावों से ग्रस्त दृष्टि से मुक्त करके, सभ्यता और ज्ञान की मात्र पश्चिमी परिभाषाओं से बाहर निकाल कर, गंभीरता के साथ उसे वैश्विक तथा भारतीय सामाजिक परिवर्तनों और सांस्कृतिक परिस्थितियों के आधार पर देखने का प्रयास किया। एक बार पुनः शुरुआत करते हैं उनके द्वारा दी गई साहित्य के इतिहास की परिभाषा से, जिसमें उनका कहना है, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।" अक्सर आचार्य शुक्ल के उक्त कथन को उद्धृत करते हुए बात यहीं खत्म कर दी जाती है। किन्तु इसकी आगे की पंक्तियों में आचार्य शुक्ल ने इस परिभाषा को और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही

साथ आवश्यक है। आचार्य शुक्ल का इतिहास और उनकी आलोचना इसका प्रमाण है कि उनके इस 'किंचित्' दिग्दर्शन का परिक्षेत्र कितना व्यापक था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पहले जो भी इतिहासकार हुए, विभिन्न कारणों से रचनाकार और युगीन प्रवृत्तियों के उनके विश्लेषण में विवेकपूर्ण गंभीर आलोचना की कमी मौजूद ही रही। शिवसिंह सेंगर ने तो अपने इतिहास की जो भूमिका लिखी है वह भी बहुत संक्षिप्त है। उसमें कवियों के विवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। ग्रियर्सन के प्रयास में थोड़ी परिपक्वता है किन्तु उनकी इतिहास-दृष्टि पर उनकी ईसाइयत और अंग्रेजियत हावी हो जाती थी। मिश्रबन्धुओं ने कुछ आगे बढ़ने का प्रयास किया किन्तु उनके इतिहास में भी आलोचना-दृष्टि का सम्यक् विकास नहीं हो पाया। राजभक्ति और रीतिवादी मूल्यों से अपने लगाव के कारण बदलते परिवेश की वास्तविकता को समझ पाने में वे सफल नहीं हो सके। (इन विद्वानों के बारे में व्यक्त उक्त मतों के परिप्रेक्ष्य में **हिन्दी समय** पर प्रकाशित कुछ अन्य आलेखों में विचार किया गया है।) पहली बार आचार्य शुक्ल एक ऐसी इतिहास-दृष्टि लेकर सामने आते हैं जिसमें विराट अध्ययन और चिन्तन की नींव दिखाई देती है। एक ऐसा इतिहास लिखा जाता है जिसे आज तक हिंदी साहित्य में मील का पत्थर समझा जाता है। बहुत सारे लोगों ने उस पत्थर से सर टकराने की कोशिश की किन्तु उसे उसकी स्थापित जगह से हटाया नहीं जा सका। आचार्य शुक्ल के इतिहास की इस उपलब्धि के पीछे चिन्तन और ज्ञान का एक संपूर्ण परिवेश है, एक ऐसी विश्वदृष्टि है जो सिर्फ हिंदी साहित्य के इतिहास पर लागू नहीं होती बल्कि किसी भी जाति के साहित्य को समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

अपना इतिहास लिखने से पहले आचार्य शुक्ल ने विश्व साहित्य, विज्ञान, दर्शन और इतिहास का अध्ययन कर जो आत्मविश्वास अर्जित किया था वह पहले के इतिहासकारों से कहीं परिपूर्ण था। इसीलिए साहित्येतिहास के क्षेत्र में अपने ग्रंथ से पहले प्रकाशित ग्रंथों को आचार्य रामचंद्र शुक्ल इतिहास का दर्जा नहीं देते। उनके लिए 'शिवसिंह सरोज' वृत्त-संग्रह, ग्रियर्सन की 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान' बड़ा कवि-वृत्त संग्रह और 'मिश्रबन्धु विनोद' बड़ा भारी कविवृत्त संग्रह था। ये ग्रंथ 'विचार-श्रृंखला-बद्ध' इतिहास के उनके मानदंडों पर खरे नहीं उतरते हैं। उन्होंने इन्हीं ग्रंथों की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि "भिन्न-भिन्न शाखाओं के हजारों कवियों की केवल कालक्रम से गुँथी उपर्युक्त वृत्तमालाएँ साहित्य के इतिहास के अध्ययन में कहाँ तक सहायता पहुँचा सकती थीं। सारे रचनाकाल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खंडों में आँख मूँद कर बाँट देना- यह भी न देखना कि खंड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं, किसी वृत्तसंग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।"² आचार्य शुक्ल मिश्रबन्धुओं की तरह अपने इतिहास में कवि-कीर्तन नहीं करना चाहते थे। उनका लक्ष्य था अपने इतिहास के लिए एक पक्का और व्यवस्थित ढाँचा तैयार करना। अपने पूर्ववर्ती इतिहास-ग्रंथों की ओर वे रुख तभी करते जब उन्हें कवियों का परिचय जानने की आवश्यकता पड़ती। वरना ये ग्रंथ उनके लिए न्यून महत्व के थे। इस स्पष्ट समझदारी के कारण ही वे हजार वर्षों की सामग्री को सुसंगत दृष्टि से विभाजित कर उसका विश्लेषण कर सके।

²आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल ग्रंथावली, खंड 5, संपादक ओम प्रकाश सिंह - 3 पृ. 2007, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान

सईदी अर्थों में प्राच्यवाद के प्रभाव से ग्रस्त होकर उत्तर औपनिवेशिक सैद्धांतिकी में उपनिवेशवाद के व्याख्याकारों में ऐसे लोग भी निकलें हैं जिन्हें लगता है कि उपनिवेशवादियों ने पश्चिम की संस्कृति और इतिहास के हिसाब से इतिहास लिखकर इतिहास-लेखन की प्रवृत्ति को ही दूषित कर दिया है। ऐसे में, इतिहास में काल-विभाजन इत्यादि कर मूलतः हम पश्चिम द्वारा स्थापित मान्यताओं के पीछे ही चला करते हैं; इतिहास इतना बहुमुखी है कि उसे विभिन्न कालावधियों, नामों, धाराओं में विभाजित कर हम उसे सीमित ही करते हैं। इस तरह की अतिरंजना हमें कहाँ तक ले जा सकती है इसकी चर्चा हम फिर कभी करेंगे, लेकिन यहाँ बस इतना ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि भारत में उपनिवेशवाद को खत्म हुए साठ साल हो गए, नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन से हमने अपनी अस्मिता के बहुत सारे पक्षों को पहचान भी लिया, उत्तर औपनिवेशिक और उत्तर आधुनिक सिद्धांतों को आए भी एक लंबा समय गुजर गया, किन्तु यह सब हो जाने के बाद भी औपनिवेशिक दौर में किया गया आचार्य शुक्ल का कालविभाजन तमाम सारी असहमतियों और भिन्न-भिन्न दृष्टियों से गुजरने के बाद भी परिवर्तित नहीं किया जा सका। आचार्य शुक्ल पर ब्राह्मणवाद, सामंतवाद, पुरातनपंथी, प्रगतिविरोधी और न जाने क्या-क्या आरोप लगाए गए विद्वानों द्वारा, किन्तु इन सारी कमियों को ढूँढने का दावा करने के बाद भी आचार्य शुक्ल का कालविभाजन इतिहास में अपनी जगह पर कायम है। यह स्थिरता न सिर्फ इस बात का प्रमाण है कि आचार्य शुक्ल का ढाँचा कितना व्यवस्थित और पक्का था बल्कि इस बात का भी कि इतिहास के लिए काल-विभाजन और नामकरण कोई वर्जित माध्यम नहीं हैं अगर उनमें युग की चेतना की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। आचार्य शुक्ल ने अपनी तरफ से कोई आरम्भिक, माध्यमिक, उत्तर-माध्यमिक काल जैसे नाम नहीं गढ़ दिए थे, बल्कि हर दौर की प्रवृत्ति विशेष को चिह्नित किया था। भक्तिकाल का नाम भक्तिकाल किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा की परिणति नहीं बल्कि एक युग की प्रवृत्ति विशेष का रेखांकन है। इस दौर में समाज विकास की जिस दशा में था, उस दशा में जिस तरह की चित्तवृत्तियाँ निर्मित हुईं और उन चित्तवृत्तियों के अनुरूप साहित्य का जैसा स्वरूप निर्मित हुआ, आचार्य शुक्ल ने उसे अपनी व्यवस्थित इतिहास-दृष्टि से पहचाना। हजार वर्षों के हिंदी साहित्य के इतिहास का, शोध और सुविधाओं की सीमाओं के उस दौर में, औपनिवेशिक आतंक के उस दौर में, ऐसा सुगठित अध्ययन हिंदी ही नहीं विश्व- इतिहास की महती उपलब्धि है।

प्राच्यवाद की जिस तरह की परिभाषा अभी तैयार हो गई है उससे ऐसा लगता है कि औपनिवेशिक दौर में और उत्तर उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद के दौर में भी पूरब के अध्येताओं के लिए पश्चिम की शब्दावलियों, व्याख्याओं, संरचनाओं के ढाँचे से पूरब के अध्ययन को मुक्त करना असंभव रहा है। किन्तु आचार्य शुक्ल, जैसा कि ऊपर बताया गया, इन सीमाओं से इतिहास को मुक्त करने में काफी हद तक समर्थ थे। तात्पर्य यह कि अगर आचार्य शुक्ल ऐसा करने में उपनिवेशवादी दौर में ही समर्थ थे, तो निश्चय ही प्राच्यवाद को परिभाषित करने में हम कोई न कोई गलती कर रहे हैं। प्राच्यवाद को मात्र साम्राज्यवाद के नजरिए से देखकर हम बहुत सारी बारीकियों को दरकिनार करते चले जा रहे हैं। विडम्बना यह है कि हाशिए पर धकेलने का कार्य इतिहास की वही धारा कर रही है जिसका दावा है कि उसका उद्भव हाशिए की आवाज के लिए ही हुआ है। खैर।

आचार्य शुक्ल अगर अपने इतिहास को औपनिवेशिक व्याख्याओं के दायरे से मुक्त कर सके तो इसके पीछे कई पुख्ता कारण हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है नवजागरण। इसी नवजागरण की चेतना ने उन्हें उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और सामंतवाद को पहचानने का पहला अस्त्र दिया। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि “आचार्य शुक्ल की आलोचना और इतिहास-दृष्टि के निर्माण में भारतीय पुनर्जागरण की चेतना सक्रिय दिखाई देती है। इस चेतना के कारण ही वे भारतीय समाज, संस्कृति, भाषा और साहित्य की परंपराओं के मूल्यांकन और नए विकास की संभावनाओं की तलाश का प्रयत्न करते हैं। उनकी इतिहास-दृष्टि के निर्माण में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की चेतना भी मौजूद है। इस चेतना के कारण ही वे साहित्य और समाज के विकास के बीच संबंध की खोज करते हैं और समाज, भाषा और साहित्य के इतिहास में जनता की महत्वपूर्ण भूमिका की पहचान करते हैं।”³ शुक्ल-पूर्व इतिहास-लेखन में यह विशेषता इतनी प्रबल होकर नहीं उभर पाई थी क्योंकि अभी तक के जो भी इतिहासकार थे उनकी चेतना के निर्माण में नवजागरण या स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव नहीं था। तासी या ग्रियर्सन की तो बात ही छोड़ दी जाए। उनकी तो राजभक्ति से संबंधित ब्यौरे ही बहुत अधिक हैं। स्वयं मिश्रबन्धु भी इस राजभक्ति की चेतना से मुक्त नहीं हो पाए थे और यही स्थापित करने में लगे रहे कि भारतीय आध्यात्मिक थे, सांसारिक चेतना का उनमें अभाव था और हिन्दुस्तान को कोई उबार सकता है तो वह ब्रिटिश हुकूमत ही है। 1913 के दौर में भी अगर मिश्रबन्धुओं के इतिहास में समकालीन समय की गूँज से ज्यादा रीति कविता की गूँज सुनाई देती है तो इसका कारण उनमें इसी प्रगतिशील चेतना का अभाव है।

मैनेजर पाण्डेय ने ने इस बात की ओर भी ध्यान दिया है कि “आचार्य शुक्ल के साहित्य-विवेक और इतिहास दृष्टि के निर्माण में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावाद की रचनाशीलता की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इस काल (भारतेन्दु युग) का साहित्य रीतिकाल की रूढ़ियों से मुक्त होकर समाज और जीवन के यथार्थ से जुड़ा, उसमें यथार्थवाद का विकास हुआ और सामंतविरोध तथा साम्राज्यवाद विरोधी जनभावना की अभिव्यक्ति हुई, रीतिकालीन सामंती संस्कृति और रूढ़िबद्ध प्रणाली से नई रचनाशीलता मुक्त हुई तो साहित्य की नई धारणा का भी विकास हुआ।”⁴ आचार्य शुक्ल ने भारतेन्दु युग के साहित्य की देशी जमीन को पहचाना था। यह वह साहित्य था जो अपने देश के ही सामान्य जीवन के रंग में रंगा हुआ था, उसकी गति के साथ गतिशील था और जिसका रूप किसी विदेशी शैली की छाया में तैयार नहीं हो रहा था। भारतेन्दु के बारे में आचार्य शुक्ल का कहना था कि उन्होंने जीवन और साहित्य के बीच के विच्छेद को दूर किया है और समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप हमें नया साहित्य दिया है। भारतेन्दु मंडल के लेखकों के बारे में अपने इतिहास में शुक्लजी ने लिखा है कि “काल की गति वे देखते थे, सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे, पर पश्चिम की एक एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे। प्राचीन और नवीन संधिस्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्रवर्धित रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर लपेटी हुई वस्तु।”⁵ कहना न होगा कि आचार्य शुक्ल की दृष्टि में भारतेन्दु मंडल के लेखक औपनिवेशिक दबावों और व्याख्याओं के बाद भी अपने स्वत्व को पहचानने का सामर्थ्य रखते थे।

³मैनेजर पाण्डेय 92.पृ, 2000 -द्वितीय संस्करण, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, साहित्य और इतिहास दृष्टि,

⁴वही 92.पृ,

⁵आचार्य रामचंद्र शुक्ल आचार्य रा, हिन्दी साहित्य इतिहास, मचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, 5 खंड, वही 363.पृ,

इस तरह साम्राज्यवाद का अकादमिक स्तर पर आचार्य शुक्ल ने एक नकार प्रस्तुत किया और स्थापित किया कि महत्वपूर्ण साहित्य वही है जिसमें युग की चेतना प्रतिबिम्बित होती हो। इसी तर्क पर वे अपने इतिहास में कालों का विभाजन करते हैं और इसी तर्क पर वे इतिहास की पूरी परम्परा के महत्व को रेखांकित करते हैं। अगर काल विभाजन में ग्रियर्सन या मिश्रबन्धु असमर्थ रहे तो औपनिवेशिक सत्ता के प्रभाव से और रीति परिपाटी से स्वयं को मुक्त करने में अपनी असमर्थता के ही कारण।

निःसंदेह आचार्य शुक्ल के इतिहास में ही पहली बार यह साम्राज्यवाद विरोध और सामंतवाद विरोध स्थापित होता है। भक्ति कविता को ग्रियर्सन ने भी महत्व दिया है और मिश्रबन्धु ने भी। किन्तु ग्रियर्सन को तुलसी याद आते हैं तो उसमें ईसाइयत याद आती है और मिश्रबन्धु को तुलसी याद आते हैं तो उसमें महात्मापन याद आता है। तुलसी का वास्तविक सामाजिक सांस्कृतिक महत्व समझाने का श्रेय आचार्य शुक्ल को दिया जा सकता है क्योंकि जब आचार्य शुक्ल को तुलसी याद आते हैं तो उसमें उन्हें लोकहृदय की अनुगूँज सुनाई देती है।

वस्तुतः आज जब यह स्थापित हो चुका है कि उपनिवेशवाद ने कुछ खास देशों का कितना अधिक सामाजिक-आर्थिक शोषण किया है, यह जानना महत्वपूर्ण है कि कितने बुद्धिजीवी औपनिवेशिक दौर में उपनिवेशवाद के तर्कों को अस्वीकार कर प्रतिरोध की आवाज बुलंद कर रहे थे। आचार्य शुक्ल से पहले उपनिवेशवाद के प्रबल विरोध की चेतना हिंदी साहित्य के किसी भी इतिहासकार में नहीं दिखाई देती। यही स्पष्ट कर देता है कि हमारी साहित्येतिहास की चेतना की कितनी सीमाएँ थीं और आचार्य शुक्ल के उद्भव के साथ एक ऐसी परिपक्वता हिंदी साहित्य में उपस्थित होती है जिसे प्राप्त करना आज भी साहित्यकारों और आलोचकों का लक्ष्य है।

चूँकि आचार्य शुक्ल के पहले का इतिहास लेखन साम्राज्यवाद और सामंतवाद की चेतना से मुक्त नहीं हुआ था, इसलिए भविष्य के प्रति सार्थक दृष्टि का विकास उसमें नहीं दिखाई देता। इतिहास-लेखन का कार्य हमेशा अपने वर्तमान के आलोक में भविष्य की चिन्ता के साथ होता है। आचार्य शुक्ल से पहले के हिंदी साहित्येतिहास लेखन में वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में इस चिन्तन का अभाव दिखाई देता है। अतीत की विभिन्न विशेषताओं को तो उद्धाटित किया जाता है लेकिन समकालीन चेतना के अभाव में। समाज और साहित्य के वास्तविक संबंधों की सीमित समझदारी के कारण ये विशेषताएँ आचार्य शुक्ल द्वारा उद्धाटिक विशेषताओं की तुलना में कमजोर दिखाई पड़ती हैं। आचार्य शुक्ल जब साहित्य की प्रवृत्तियों और विभिन्न सामाजिक प्रभावों का गम्भीर विश्लेषण लेकर उपस्थित होते हैं तो साहित्येतिहास लेखन की परवर्ती अवधारणाएँ भी उससे अत्यधिक प्रभावित होती हैं। समकालीन समय की इस गंभीरता को अगर मिश्रबन्धु समझते तो रीति कवियों को प्रतिष्ठित करने से ज्यादा, उनका ध्यान अन्य गंभीर मसलों की तरफ होता। इसी चेतना के अभाव में शुक्ल-पूर्व इतिहास-ग्रंथों में ऐसी बहुत सारी सामग्री मिलती है जिससे इतिहास को मुक्त करने की जरूरत थी और आचार्य शुक्ल ने और बाद में उनकी परंपरा के दूसरे इतिहासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने ठीक लिखा है कि “रचनाओं और रचनाकारों की भीड़ में से साहित्यिक को असाहित्यिक से अलग करने का काम मध्यकाल से

अधिक आधुनिक काल में जरूरी और कठिन था। मध्यकाल की रचनाओं के असली या नकली होने का काफी कुछ निर्णय इतिहास और लोकमानस की कसौटी पर हो चुका था, लेकिन आधुनिककाल की रचनाओं और रचनाकारों के संदर्भ में यह काम आचार्य शुक्ल को करना था और उन्होंने अत्यंत सावधानी से सफलतापूर्वक यह काम किया। मध्यकाल की रचनाओं और रचनाकारों का मूल्यांकन करते समय उन्होंने जनमानस में प्रतिष्ठित रचनाओं के महत्व का उद्घाटन किया, सामंती और दरबारी कवियों की आलोचना की और समय समय पर सर उठाने वाली साहित्यिक जालसाजी का भंडाफोड़ किया।⁶

किन्तु इस पूरे प्रसंग में एक महत्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि जिस नवजागरण से प्रेरणा प्राप्त कर आचार्य शुक्ल अपनी दृष्टि को परिपक्व बनाते हैं, स्वयं उसी नवजागरण के दौर में लेखकों में ऐसी प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं जो तार्किकता के विस्तार के साथ आज हमें अस्वीकार्य हैं। विद्वानों ने इन प्रवृत्तियों को देखते हुए यह भी पेशकश की है कि इसे नवजागरण के बजाय हिंदी आंदोलन से जोड़कर ज्यादा देखा जाना चाहिए। इस पूरे दौर को नवजागरण का दर्जा देने वाले विद्वान भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इसमें कई कमजोरियाँ भी दिखाई देती हैं। हिंदी नवजागरण की छवि स्पष्ट करने वाले प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह भी यह स्वीकार करते हैं कि नवजागरणकालीन प्रकाशित साहित्य में राजनीतिक स्वाधीनता का स्पष्ट स्वर कम सुनाई पड़ता है। शिष्ट साहित्य में सत्तावन के विद्रोह की अनुगूँजें नहीं सुनाई पड़तीं। सत्ता के प्रति उनके रुख में विद्रोही चेतना के अभाव को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है कि “सच तो यह है कि अधिकांश लेखक सुरक्षा, सुशासन, शिक्षा, उन्नति और शान्ति के लिए ब्रिटिश राज के प्रति उपकृत अनुभव करते हैं— विशेष रूप से मुगलों के शासन की तुलना में। इस प्रवृत्ति के अवशेष बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक मैथिलीशरण गुप्त की ‘भारत भारती’ जैसी राष्ट्रीय कही जाने वाली काव्य-कृति में भी मिलती है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो नवजागरण के अनेक उन्नायक राजसत्ता के साथ सहयोग करते दिखाई देते हैं।”⁷ निश्चय ही उपनिवेशवाद द्वारा भारतीय सभ्यता और ज्ञान की जो व्याख्याएँ हुईं, इस स्थिति को तैयार करने में उनकी भूमिका प्रमुख थी। प्राच्य का अध्ययन कर रहे अनेक साहित्यकारों, इतिहासकारों और विचारकों ने इसमें योगदान दिया। शुक्ल पूर्व इतिहासकार भी इन प्रवृत्तियों से ग्रस्त होकर ही आधुनिक युग में जनता की चित्तवृत्ति को समझ पाने में असमर्थ थे। इसी प्रभाव में वे उपनिवेशवाद की सामाजिक-आर्थिक संरचना और कुप्रभावों को विश्लेषित कर पाने में अक्षम थे। स्वयं साम्राज्यवाद के सबसे बड़े आलोचक कार्ल मार्क्स भी अपने प्रारंभिक चिंतन में उपनिवेशवादियों की एशिया संबंधी व्याख्याओं के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाए थे। यह रेखांकित किया जाना बहुत आवश्यक है कि इन विपरीत परिस्थितियों में भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल नवजागरण की चेतना से प्रगतिशील तत्वों को स्वीकार करते हैं, और त्याज्य प्रवृत्तियों को छोड़कर आगे बढ़ते हैं। हमारे नवजागरण की कमियों को रेखांकित करते हुए शुक्लजी ने लिखा है कि “शासन की अव्यवस्था और अशांति के उपरांत अंग्रेजों के शांतिमय और रक्षापूर्ण शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव भारतेंदुकाल में बना हुआ था। इससे उस समय की देशभक्ति संबंधी कविताओं में राजभक्ति का स्वर भी प्रायः मिला पाया जाता है। देश की दुखदशा का प्रधान कारण राजनीतिक समझते हुए भी उस दुखदशा में उद्धार के लिए कवि लोग दयामय भगवान् को ही पुकारते मिलते हैं। कहीं-कहीं उद्योग धंधों को न बढ़ाने, आलस्य में पड़े रहने और देश की बनी

⁶मैनेजर पाण्डेय 95. पृ. वही, साहित्य और इतिहास दृष्टि,

⁷नामवर सिंह), हिन्दी का गद्य पर्व, लेख, (हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ—राजकमल प्रकाशन 88. पृ., 2010, नई दिल्ली,

वस्तुओं का व्यवहार न करने के लिए वे देशवासियों को कोसते पाए जाते हैं। सरकार पर रोष या असंतोष की व्यंजना उनमें नहीं मिलती। कांग्रेस की प्रतिष्ठा होने के उपरांत भी बहुत दिनों तक देशभक्ति की वाणी में विशेष बल और वेग न दिखाई पड़ा। बात यह थी कि राजनीति की लंबी चौड़ी चर्चा साल भर में एक बार धूमधाम के साथ थोड़े से शिक्षित बड़े आदमियों के बीच हो जाया करती थी जिसका कोई स्थायी और क्रियोत्पादक प्रभाव देखने में नहीं आता था।⁸ आचार्य शुक्ल ऐसा इसलिए कर पाते हैं कि वे सिर्फ नवजागरण में ही खो नहीं जाते बल्कि पश्चिम में ही उद्भूत वैज्ञानिक चिंतन को आत्मसात करते हैं और इतिहास-दृष्टि को और भी संतुलित बनाते हैं। प्राच्य के बारे में एक तरह का ज्ञान जहाँ हमारी परंपरा को कमजोर और प्रगति को धीमा बना रहा था वहीं पश्चिम में ही उद्भूत दूसरा ज्ञान इन बाधाओं का काट प्रस्तुत कर रहा था। पूरब के बारे में दृष्टि बनाने वाले अध्येता सिर्फ उपनिवेशवाद के ही प्रभाव में नहीं थे बल्कि उनके ऊपर अन्य बहुत सारी संवेदनाओं और विचारधाराओं का प्रभाव पड़ रहा था।

हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में नामवरजी ने यह सही कहा है कि उपनिवेशवादी विमर्श के खिलाफ भारतीय नवजागरण ने अपनी एक प्रतिदृष्टि विकसित की थी। किन्तु यह भी सही है कि इस प्रतिदृष्टि के विकास में प्राच्यविद्या के ही अनेक तत्वों से, पश्चिम के अनेक विद्वानों की दृष्टियों से, बहुत सहायता ली गई थी। प्राच्यवाद के एक बड़े अंग ने अंग्रेजी राज्य को भारत में स्वीकृत तो बनाया था, जिसके कारण नवजागरण के बड़े से बड़े विद्वान भी अंग्रेजी राज के प्रति सहानुभूति रखते दिखाई देते हैं, किन्तु प्राच्यवाद और पश्चिमी ज्ञान के ही स्रोतों से इन्होंने उपनिवेशवाद की आलोचना भी प्रस्तुत की। यही कारण है कि प्राच्यविद्या के प्रति अवमानना का रवैया नवजागरण के विद्वानों में कम दिखाई देता है। सभी बड़े विद्वान अपने पक्ष में पश्चिम के चर्चित बुद्धिजीवियों को उद्धृत करते दिखाई देते हैं। कुछ लोग यह तर्क गढ़ सकते हैं कि ये सभी प्राच्यविद नहीं कहे जा सकते। यह सही बात है। किन्तु प्राच्यवाद की सीमा को सबसे पहले सईद ही भूलते दिखाई देते हैं जो हर किसी को अपने प्राच्यवाद की सीमा में खींच लेते हैं, जैसे कि, मार्क्स को। (विस्तार के लिए इस विषय पर एजाज अहमद और इरफान हबीब के लेखों को देखें) उनके लिए प्राच्यविद्या एक ऐसा विमर्श बन जाता है जो पूरब के बारे में कुछ भी सोचने से पहले अनिवार्य रूप से हावी हो जाता है। पूरब और पश्चिम के बीच संवाद में यह पश्चिम की सत्ता को स्थापित कर रहा होता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने लेखन में जिस तरह पूरब और पश्चिम के ज्ञान का विवेचन किया है उससे सईद के इस तर्क की कमजोरी स्पष्ट रेखांकित की जा सकती है। आचार्य शुक्ल ने अपने विचारों को गढ़ने में आरम्भ से ही पश्चिम के अनेक विचारकों से मदद ली है। सबसे पहले 1904 में सरस्वती में उन्होंने न्यूमैन के विचारों का साहित्य नाम से भावानुवाद किया। 1905 में उन्होंने जोसेफ एडिसन के निबंध 'प्लेजर ऑफ इमैजिनेशन' का 'कल्पना का आनंद' नाम से अनुवाद किया। इस निबंध ने उनकी कविता संबंधी दृष्टि को बहुत प्रभावित किया है। आई. ए. रिचर्ड्स की पुस्तक 'प्राॅक्टिकल क्रिटिसिज्म' का प्रभाव भी उनपर दिखाई देता है। हैकल की विश्वप्रसिद्ध पुस्तक का उन्होंने विश्वप्रपंच के नाम से जो अनुवाद किया उसकी भूमिका को डॉ. रामविलास शर्मा और नामवर सिंह दोनों ने ही हिंदी आलोचना की बड़ी उपलब्धि माना है। नामवरजी ने

⁸आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, 5 खंड, वही 511, पृ.

माना है कि विश्वप्रपंच का अनुवाद करने के क्रम में स्वयं आचार्य शुक्ल की दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ और वह धर्म से उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रचलित अंधविश्वासों तथा संस्कारों से मुक्त होकर एक वैज्ञानिक दृष्टि की ओर अग्रसर हुई।

रामविलास जी ने 'विश्वप्रपंच' पुस्तक की भूमिका में आचार्य शुक्ल के वैज्ञानिक चिन्तन के विकास का सटीक विश्लेषण किया है। आचार्य शुक्ल ने इस पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि "विकास सिद्धान्त के पहले लोगों का विश्वास था कि इस समय पृथ्वी पर जितने प्रकार के जीव हैं सब के सब सृष्टि के आदि में एक साथ ही उत्पन्न किए गए। डार्विन ने यह दिखाकर कि एक ही प्रकार के आदिम क्षुद्र जीवों से क्रमशः नाना प्रकार के जीवों का विधान होता आया है, स्थिर योनि सिद्धान्त का पूर्ण रूप से खण्डन कर दिया।"⁹ इसी तरह सभ्यता और धर्म को लेकर होने वाली बहस के बारे में शुक्ल जी का कहना है कि "आधुनिक मत यही है कि मनुष्य जाति असभ्य दशा से उन्नति करते-करते सभ्य दशा को प्राप्त हुई है। अत्यंत प्राचीन लोगों को बहुत अल्प विषयों का ज्ञान था। धीरे-धीरे उस ज्ञान की वृद्धि होती गई है। इसी प्रकार धर्मभाव भी पहले बहुत स्वल्प और सादे रूप में था, पीछे सामाजिक व्यवहारों की वृद्धि के साथ-साथ उसका भी अनेक रूपों में विकास होता गया।"¹⁰ रामविलासजी ने 'विश्वप्रपंच' पुस्तक की भूमिका पढ़ कर शुक्लजी के बारे में यह दृष्टि बनाई कि उन्होंने वैज्ञानिक चिंतन के प्रति जागरूक दृष्टि रखी और उसी आईने से अपनी सभ्यता के विकास को देखा। धर्म ने ब्रह्मांड के विकास की जो स्थिर धारणा स्थापित कर दी थी और अप्रकाशित रहस्यों पर जो पर्दा डाल दिया था, आचार्य शुक्ल ने पूरब और पश्चिम में हो रहे नए वैज्ञानिक अध्ययनों के माध्यम से उन्हें प्रश्नांकित किया। उन्होंने हैकल, स्पेंसर और जगदीशचंद्र बसु जैसे वैज्ञानिकों का हवाला देते हुए इस पुस्तक में प्रकृति की गतिशीलता और उसमें हो रहे सतत निरन्तर परिवर्तन के महत्व को स्वीकार किया है। अध्यात्मवाद के विरोध की दृष्टि का स्रोत यह भौतिकवाद था, जो आचार्य शुक्ल को यह सामर्थ्य प्रदान करता है कि सभ्यता के विकास की धार्मिक और उपनिवेशवादी व्याख्याओं का पोस्टमार्टम करें और सबल तर्कों के आधार पर नए समतावादी सामाजिक-मूल्यों को प्रतिष्ठित करें।

वस्तुतः बहुत पहले ही वैज्ञानिक चिन्तन के विकास के साथ औपनिवेशिक ज्ञान की व्याख्याओं को प्रश्नांकित किया जाने लगा था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी अपने समय के वैज्ञानिक विकास के संपर्क में थे और उनकी इतिहास दृष्टि पर इसका गंभीर प्रभाव था। यही कारण है कि औपनिवेशिक दौर में भी वे एक स्वतंत्र चिंतन विकसित करने में सक्षम थे। न सिर्फ इतना ही, बल्कि उपनिवेशवाद और इसके प्रसार के माध्यमों को भी रेखांकित करने और उसका विरोध करने में समर्थ थे।

आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट लिखा है कि "आजकल ऐसा ही कोई होगा जो इतिहास लिखने में इस बात का ध्यान न रखता हो कि किसी जाति के बीच ज्ञान, विज्ञान, आचार, सभ्यता इत्यादि का विकास क्रमशः हुआ है। इन सबको पूर्ण रूप में लेकर किसी जाति के जीवन का आरम्भ नहीं हुआ है।"¹¹ आचार्य शुक्ल का उक्त कथन

⁹रामविलास शर्मा 18.पृ., 1989 -चतुर्थ संस्करण, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना,

¹⁰आचार्य रामचंद्र शुक्ल), लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, संपादन, (रामविलास शर्मा -वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 -द्वितीय संस्करण, 97.पृ

¹¹वही 97.पृ.,

बताता है कि उनकी दृष्टि इतनी वैज्ञानिक चेतना संपन्न थी कि उपनिवेशवाद द्वारा शासक जाति को अन्य जातियों से श्रेष्ठ स्थापित करने के जो प्रयास हुए थे उनका खंडन वे पश्चिम में ही उद्भूत ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विचारों के माध्यम से करने में समर्थ थे। प्राच्यवाद के संदर्भ में इरफान हबीब के इस तर्क का यहाँ रेखांकन जरूरी है कि यह मान लेना कि प्राच्यवाद पर और किसी चीज का जैसे प्रभाव ही न पड़ा हो, बहुत ही गलत निष्कर्षों तक पहुँच सकता है। आचार्य शुक्ल अपने लेखन से हबीब की उक्त मान्यता को स्थापित करते दिखाई देते हैं। हिंदी साहित्य के बारे में लिखते वक्त शुक्लजी औपनिवेशिक ज्ञान की छाया से स्वयं को मुक्त रख सके तो इसीलिए कि पूरे दौर का लेखन, उसे प्राच्यवाद के दायरे में रखें या उससे बाहर, वैज्ञानिक चिंतन के विकास से प्रभावित हो रहा था। उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में बहुत सारे ऐसे विचार पैदा हुए जिन्होंने दुनिया को देखने की दृष्टि में ही आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया।

इस वैज्ञानिक चिंतन ने ही आचार्य शुक्ल की दृष्टि को वैश्विक बनाया था। अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में वे भारतीयता की पहचान भी वैश्विक परिप्रेक्ष्य में ही करते दिखाई देते हैं। समतावादी मानवमूल्यों को स्थापित करने वाले पश्चिमी विचारों को भी वे भारत के लिए आवश्यक मानते थे और दूसरी ओर अत्यंत प्रभावशाली भारतीय विचारों को भी वे सहज ही अस्वीकार कर देते हैं अगर उसमें उन्हें वैज्ञानिक चिंतन का अभाव लगे। 1918 के आस-पास से काव्यधारा के तृतीय उत्थान में बदले हुए परिवेश को देखकर, राजनैतिक-सामाजिक गतिविधियों को देखकर, उसकी प्रशंसा में उन्होंने लिखा है कि "तृतीय उत्थान में आकर परिस्थिति बहुत बदल गई। आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण किया और गाँव गाँव में राजनीतिक और आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगाई गई। सरकार से कुछ माँगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही स्वतंत्रता देवी की वेदी पर बलिदान होने को प्रोत्साहित करने लगी। अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जनसमुदायों को भी साथ लेकर चले। इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ। सबसे बड़ी बात यह हुई कि आंदोलन संसार के और भागों में चलने वाले आंदोलनों के मेल में लाए गए, जिससे ये क्षोभ की एक सार्वभौम धारा की शाखाओं से प्रतीत हुए। वर्तमान सभ्यता और लोक की घोर आर्थिक विषमता से जो असंतोष का ऊँचा स्वर पश्चिम में उठा उसकी गूँज यहाँ भी पहुँची। (जोर मेरा)"¹²

आचार्य शुक्ल का यह सभ्यता विमर्श अपने दौर से काफी आगे दिखाई देता है। मार्क्सवादी अर्थों में भौतिकवादी न होते हुए भी सभ्यताओं के विकास और उत्पादन संबंधों के बारे में उनके पास वैज्ञानिक चिंतन था और यही कारण है कि प्रगतिशीलों के बीच उनकी व्यापक स्वीकृति रही है। किस तरह यूरोप में महायंत्रप्रवर्तन ने दूसरे देशों से धन खींचकर कुछ पूँजीपतियों के पास धन इकट्ठा कर दिया है और कैसे अधिकांश श्रमजीवी जनता के लिए भोजन, वस्त्र मिलना कठिन हो गया है, इसका विश्लेषण उन्होंने अपने इतिहास में किया है। अंग्रेजों की बर्बर संस्कृति उन्हें मध्यकालीन बर्बर लुटेरों से ज्यादा कुरूप दिखाई देती है। शुक्लजी ने लिखा है कि पुरानी चढ़ाइयों की लूटपाट का सिलसिला आक्रमणकाल तक ही, जो बहुत दीर्घ नहीं हुआ करता था, रहता था। पर यूरोप के अर्थोन्मादियों ने ऐसी गूढ़, जटिल और स्थायी प्रणालियाँ प्रतिष्ठित कीं जिनके द्वारा भूमण्डल की न जाने कितनी जनता का रक्त चूसता चला जा रहा है- न जाने कितने देश चलते

¹²आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 5 खंड, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वही 511 पृ.,

फिरते कंकालों के कारागार हो रहे हैं।¹³ आधुनिक युग में सभ्यताओं के बीच श्रेष्ठ या कमतर का विश्लेषण करने के बजाय उनका ध्यान समानता के सूत्रों को तलाशने में था। आधुनिक काल के संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि “अब संसार के प्रायः सारे सभ्य भाग एक दूसरे के लिए खुले हुए हैं। इससे एक भूखंड में उठी हुई हवाएँ दूसरे भूखंड में शिक्षित वर्गों तक तो अवश्य पहुँच जाती हैं। यदि उनका सामंजस्य दूसरे भूखंड की परिस्थिति के साथ हो जाता है तो उस परिस्थिति के अनुरूप शक्तिशाली आंदोलन चल पड़ते हैं।”¹⁴

इस तरह पूरब और पश्चिम के वैज्ञानिक चिंतन का अध्ययन कर आचार्य शुक्ल ने समस्त मानवता को केन्द्र में रखकर अपनी विश्व-दृष्टि विकसित की। इसी विश्व-दृष्टि ने उन्हें प्रखर राजनीतिक दृष्टिकोण दिया जिसके माध्यम से उन्होंने जो भी लोकमंगल के खिलाफ लगा उसे प्रश्नांकित किया, चाहे वह अपने युग के महापुरुष गाँधी के ही विचार क्यों न हों। आक्रांत आचार्य शुक्ल को कोई न कर सका। शुक्ल-पूर्व हिंदी साहित्येतिहासकारों के पास ऐसी संपन्न राजनीतिक दृष्टि का अभाव था। इसलिए ज्ञान और सभ्यता के विकास का अतार्किक विश्लेषण कर उन्होंने अपनी इतिहास-दृष्टि को विकृत कर लिया, फलतः अपने इतिहास-लेखन को अप्रामाणिक कर लिया। इतना ही नहीं, कहीं कहीं ये इतिहासकार प्रतिक्रियावादी रवैया भी अपनाते दिखाई देते हैं। उपनिवेशवाद उस दौर में इस प्रभाव को कायम रखने में काफी हद तक समर्थ था। ज्ञान-विज्ञान और राजनीतिक चेतना के और विकास के साथ इस स्थिति में थोड़ा बदलाव आया। आचार्य शुक्ल के पूरे इतिहास में राजनीति की गंभीर समझदारी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आदिकाल की कविता में राजाओं की प्रशस्ति में की गई अतिशयोक्तियों को भी उन्होंने आड़े हाथों लिया है। भक्ति आंदोलन का सामंतवाद विरोधी चेहरा उन्होंने पहचाना है। रीतिकालीन कविता में लोकमंगल की चेतना का अभाव उन्हें क्षुब्ध करता है। आधुनिक काल में भारतेंदु मंडल और द्विवेदी युगीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को देखकर वे प्रसन्न होते हैं। स्वछंदतावादी कवियों की देशभक्ति उन्हें आकर्षित करती है। गार्सी द तासी ने जहाँ मजदूर आंदोलन का विरोध किया है और कड़ियों ने साम्राज्य का समर्थन किया है वहीं आचार्य शुक्ल हिंदी कविता में किसानों और मजदूरों के जीवन पर लिखे गए साहित्य की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण करार देते हैं।

गाँधीजी ने जब असहयोग आंदोलन शुरू किया तो आचार्य शुक्ल ने यह तर्क दिया कि यह आंदोलन राष्ट्रीय पूँजीपतियों के लाभ की सामग्री बनेगा। असहयोग आचार्य शुक्ल के लिए एक सतही विद्रोह था जो व्यापारियों का पक्षधर था और अंततः साम्राज्यवाद के हित में था। उन्होंने लिखा है कि ‘पश्चिम के राष्ट्र अपने को जिससे मुक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं उसी पूँजीवाद की ओर यह (असहयोग) एक बढ़ता कदम है। यह पूँजी बटोरने और समाज में व्यक्तिवादी जीवन-मूल्यों के क्षुद्र अमेरिकी मानदंड स्थापित करने का प्रयास भर है।’¹⁵ असहयोग आन्दोलन के बारे में आचार्य शुक्ल की इस राय पर विभिन्न मत हो सकते हैं किन्तु इस बारे में दो राय नहीं हो सकती कि न तो वे किसी से अभिभूत थे न किसी से आक्रांत।

¹³रामविलास शर्मा 39.पृ ,वही ,आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना ,

¹⁴वही 512.पृ ,

¹⁵नामवर सिंह आलोचक ,के मुख से 70.पृ ,2005 ,नई दिल्ली ,राजकमल प्रकाशन ,खगेन्द्र ठाकुर -संपादक ,

असल में, आचार्य शुक्ल भारतीय समाज को निष्क्रिय मानने वाले या निष्क्रियता की ओर ले जाने वाले किसी भी मत के खिलाफ थे। यही कारण है कि हिंदी के विद्वानों में अध्यात्मवाद के प्रसार का जैसा विरोध आचार्य शुक्ल ने किया, वैसा किसी और ने नहीं। अध्यात्मवाद में एक किस्म की निष्क्रियता है। संसार में होने वाली औद्योगिक, वैज्ञानिक, व्यापारिक अर्थात् आर्थिक प्रगति के प्रति इसमें एक निरपेक्षता की भावना है। हिन्दुस्तान के बारे में विचार करते हुए कई प्रगतिशील इतिहासकारों ने यह साबित किया है कि मुगल काल के दौरान हिन्दुस्तान व्यापार में बहुत प्रगति कर चुका था। रामविलास जी ने ठीक ही लिखा है कि अंग्रेजों की लूट के बाद 1857 में घटित हिन्दुओं और मुस्लिमों का राष्ट्रीय विद्रोह यह साबित करता है कि भारतीय निष्क्रिय नहीं थे, विरक्त नहीं थे। अंग्रेजों द्वारा भारत पर अधिकार जमाए जाने के बाद इस तरह की बातों का बहुत प्रचार किया गया कि यह एक अपरिवर्तनशील देश है, सांसारिक होड़ में यह भागीदार नहीं है और विभिन्न धार्मिक मतों ने अध्यात्मिकता का यहाँ अत्यधिक प्रभाव कर दिया है। ऐसे में निश्चय ही ये शासन नहीं कर सकते, इन्हें शासित होने की जरूरत है। आचार्य शुक्ल भारतीय जीवन और साहित्य में मात्र अध्यात्म ढूँढे जाने की इस राजनीति के प्रति पूर्णतः सतर्क थे। न सिर्फ इतना ही, अपने समय में लिखे जा रहे साहित्यकारों को वे सतर्क भी कर रहे थे कि इस औपनिवेशिक भुलावे में न आएँ। नामवर जी ने ठीक लिखा है कि “आचार्य रामचंद्र शुक्ल की अध्यात्मवाद संबंधी आलोचना और रहस्यवाद संबंधी आलोचना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उसमें इस अध्यात्मवाद और रहस्यवाद में निहित उस साम्राज्यवादी षड्यन्त्र, उस साम्राज्यवादी दर्शन का उद्घाटन करने की कोशिश की गई है। उसे पहचान कर उन्होंने बताया कि किस प्रकार यह हम लोगों को निरन्तर गुलाम बनाए रखने का, राजनीतिक दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से और यही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से गुलाम बनाए रखने का प्रयास है।”¹⁶

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में भी इस विचार का बहुत अधिक प्रभाव था। ग्रियर्सन ने तो अपने इतिहास में भक्तिकाल के साहित्य को इसी प्रभाव के तहत देखा है। सभी भक्त कवियों में आध्यात्मिकता ढूँढ ली जाती थी। नामवर जी ने लिखा है कि “डॉ. ग्रियर्सन ने पूरे प्राचीन हिंदी साहित्य का मूल्यांकन उस रहस्यवादी गुणवत्ता के कारण किया है, जिसे उन दिनों क्रिस्टोमैथी कहा करते थे। जिन लोगों ने ‘द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान’ नाम की पुस्तक देखी होगी, उन्होंने देखा होगा कि उसमें विद्यापति भी उसी क्रिस्टोमैथी के प्रभाव में हैं, सूर उसी में हैं, तुलसी उसी में हैं, जायसी हैं, सारी की सारी परम्परा, रीतिकाल को छोड़कर उसी में है।”¹⁷ इन्हीं प्रवृत्तियों पर, इतनी अधिक आध्यात्मिक व्याख्याओं पर कुपित होकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में व्यंग्य किया है कि पता नहीं ये लोग बाल-लीला के पदों का क्या करेंगे! विद्यापति के श्रृंगारिक पदों की आध्यात्मिक व्याख्याएँ देखकर यह कहा कि आजकल आध्यात्मिक रंग के चश्में बड़े सस्ते हो गए हैं।

मिश्रबन्धु तो अध्यात्म की औपनिवेशिक व्याख्या से इस कदर प्रभावित थे कि यह विचार उनके पूरे ग्रंथ में अनवरत प्रवाहित है। इसी अध्यात्म के प्रभाव के कारण वे भारतीयों में सांसारिक होड़ की कमी मानते हैं और अंग्रेजी राज को इससे मुक्ति के लिए आवश्यक ठहराते हैं। प्राच्यवाद पर बात करते हुए मैंने अन्य कुछ

¹⁶ नामवर सिंह 63, पृ. वही, आलोचक के मुख से,

¹⁷ वही 62, पृ.,

आलेखों में इस बात का पर्याप्त विश्लेषण किया है कि किसी विचारधारा का प्रभाव क्या पड़ता है और समाज उसे कैसे स्वीकार करता है- इसका विवेचन वर्तमान समय में बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। साम्राज्यवाद की आक्रामकता के इस युग में विचारधाराएँ अनुकूलन का पर्याप्त अवसर प्रदान करती हैं अगर उनकी संरचना परिपक्व न हो। कहना न होगा कि आचार्य शुक्ल के इतिहास की संरचना इतनी परिपक्व थी कि अपनी परंपरा की जितनी गँठी हुई समझदारी उस दौर में वे प्रस्तुत कर सके हैं, हिंदी का कोई और विद्वान नहीं कर सका। आचार्य शुक्ल समाज के निर्माण में परंपरा और इतिहास के स्वरूप और महत्व को बखूबी समझते थे। प्रगतिशील लेखक उनके कुछ विरोधी स्वयं के बावजूद उनके साथ खड़े इसीलिए दिखाई देते हैं क्योंकि परंपरा के प्रगतिशील तत्वों को चिह्नित करने में आचार्य शुक्ल समर्थ थे, उसके सार्थक तत्वों को आगे ले जाने के लिए प्रयासरत थे।

आध्यात्मिकता के प्रति यूरोप वालों के प्रेम के बारे में आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि “यूरोप वालों को हमारी आध्यात्मिकता बहुत पसंद आती है। भारतीयों की आध्यात्मिकता और रहस्यवादिता की चर्चा पश्चिम में बहुत हुआ करती है। इस चर्चा के मूल में कई बातें हैं। एक तो ये शब्द हमारी अकर्मण्यता और बुद्धिशैथिल्य पर परदा डालते हैं। अतः चर्चा या तारीफ करनेवालों में कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जो चाहते हैं कि यह परदा पड़ा रहे। दूसरी बात यह है कि ये शब्द पूरबी और पश्चिमी जातियों के बीच एक ऐसी सीमा बाँधते हैं जिससे पश्चिम में हमारे संबंध में एक प्रकार का कुतूहल-सा जाग्रत रहता है और हमारी बातें वहाँ अनूठेपन के साथ कही जा सकती हैं। तीसरी बात यह है कि आधिभौतिक समृद्धि के हेतु जो भीषण संघर्ष सैकड़ों वर्ष तक योरप में रहा उससे क्लान्त और शिथिल होकर बहुत से लोग जीवन के लक्ष्य में कुछ परिवर्तन चाहने लगे- शांति और विश्राम के अभिलाषी हुए। साथ ही साथ धर्म और विज्ञान का झगड़ा बंद हुआ। अतः यूरोप में जो इधर आध्यात्मिकता की चर्चा बढ़ी वह विशेषतः प्रतिवर्तन (रिएक्शन) के रूप में।”¹⁸ इस तरह आचार्य शुक्ल प्राच्यवाद की विभिन्न व्याख्याओं को एक ही साथ उक्त कथन में समेट लेते हैं। इसमें उन्हें कोई संदेह नहीं कि पश्चिम के अनेक विद्वान, प्राच्यविद्, साम्राज्य के हिमायती अध्यात्म का प्रचार साम्राज्यवादी विस्तार को कायम रखने के लिए करते हैं। किन्तु इसके साथ ही आचार्य शुक्ल यह भी जानते हैं कि इस विचार के विस्तार के पीछे और भी कारण हैं। प्राच्यवाद में सक्रिय साम्राज्यवादी तत्वों की उन्हें पूरी पहचान है। पूरब और पश्चिम की जातियों के बीच विभेद पैदा करने वाले तत्वों को तो वे पहचानते ही हैं, उपनिवेशवाद के साथ उसके गूढ़ संबंधों की समझ रखते हैं और इन सबके साथ उन तत्वों को भी पहचानते हैं जो इसके अलावा सक्रिय रहती हैं। इसी पहचान के कारण आचार्य शुक्ल इस दृष्टि के साथ आगे बढ़ पाते हैं कि जातियों के बीच भेद-विभेद पैदा करने की राजनीति नहीं होनी चाहिए। जातियों के बीच की सीमा को तोड़ने के वे हिमायती हैं।

प्राच्यवाद की एकरेखीय समझ से मुक्त होने के कारण ही जहाँ एक ओर आचार्य शुक्ल पश्चिम द्वारा अध्यात्म के प्रसार की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का पर्दाफाश करते हैं, वहीं दूसरी ओर पूरब की भाषाओं और संस्कृतियों के उत्थान में सक्रिय पश्चिमी विद्वानों को पूरी श्रद्धा से याद करते हैं। हिंदी के आलोचकों ने इस बात की ओर ध्यान तो दिलाया है कि आचार्य शुक्ल ने प्राच्यविदों द्वारा पूरब की सभ्यता की औपनिवेशिक व्याख्या को उद्घाटित किया है, किन्तु इस बात की ओर लोगों का ध्यान कम जाता है कि उसी प्राच्यवाद से

¹⁸आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 5 खंड, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वही 451, पृ.

जुड़े कुछ विद्वानों के प्रति आचार्य शुक्ल में यह सहृदयता कहाँ से आती है। इसके पीछे के कारणों को तभी समझा जा सकता है जब यह समझा जा सके कि दुनिया का इतिहास सिर्फ साजिशों का इतिहास नहीं है, ज्ञान के प्रसार ने व्यक्ति की चेतना में, चाहे वह पूरब का हो या पश्चिम का, बहुत कुछ परिवर्तित किया है। फ्रेडरिक पिन्काट एक ऐसे ही विद्वान हैं जिन्हें आचार्य शुक्ल ने बहुत ही श्रद्धा के साथ अपनी पुस्तक चिन्तामणि में याद किया है। पिन्काट पर आचार्य शुक्ल अपना मत रखते हुए कहीं उन्हें साम्राज्य के हिमायती के रूप में नहीं रखते। पिन्काट आचार्य शुक्ल को उन्हीं कारणों से पसंद हैं जिन कारणों से बहुत से विद्वान प्रारंभिक प्राच्यविदों को श्रद्धा से देखते हैं, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के साथ उनके गूढ़ संबंधों के बाद भी उन्हें ऋषियों के रूप में याद करते हैं। आचार्य शुक्ल यह जानते हैं कि ऐसे अनेक ज्ञान के पिपासु हैं जो अंततः ज्ञान की निःस्वार्थ सेवा की भावना से ही संचालित होते हैं। पिन्काट पर चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल ने प्राच्यवाद के इस रूप को भी याद में रखा है- “यह एक स्वाभाविक नियम है कि पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते उनके कर्ताओं और तद्गत पात्रों से पढ़ने वाले का एक प्रकार का काल्पनिक साहचर्य स्थापित हो जाता है। कल्पना द्वारा हम उनके समागम से तृप्त होना चाहते हैं, उनके वेश विन्यास, रूप रंग, तथा रहन सहन आदि का अवलोकन न सही तो उनका परिचय ही प्राप्त करना चाहते हैं। इनके अभाव में हम उनकी सन्तति, उनके इष्ट मित्र, उनके व्यवहार की वस्तुओं ही से प्रेम संबंध जोड़कर उनके प्रति उपकार करने के लिए आकुल होते हैं। मनुष्य की यही प्रवृत्ति उसको खंडहरों में दौड़ाती है और बरसों जमीन खोदने को विवश करती है। इसी के झोंक में लोग शेक्सपीयर की कुर्सी और हुमायूँ की कब्र देखने जाते हैं। वह सहानुभूति, जो इस काल्पनिक साहचर्य से उत्पन्न होती है, अत्यंत निर्मल और निःस्वार्थ होती है, इसी के बल से इंग्लैंड में बैठे बैठे पिन्काट साहब ने भारतवर्ष में कई प्रेमी मित्र ढूँढ लिए और भारतवासियों के हित साधन में यावज्जीवन लगे रहे।”¹⁹ नया कहने के चक्कर में बहुत सारे आधुनिक विद्वान दृष्टि का संतुलन खो देते हैं, किन्तु आचार्य शुक्ल पुनरुत्थानवाद के दौर में भी लोकचेतना से अपनी संपृक्ति के सौजन्य से परंपरा के प्रति अपनी दृष्टि को विकृत नहीं होने देते। रामविलास जी ने भी जब विलियम जोन्स और अन्य प्राच्यविदों का अध्ययन किया तो साम्राज्य के साथ उनके संबंधों की पूरी समझ होने के बाद भी बुद्धिजीवियों से यही कहा कि इस व्यक्ति से बहुत सारी प्रेरणाएँ ली जा सकती हैं। जोन्स की भारत संबंधी दृष्टि का अध्ययन आधुनिक भारत की समझदारी तैयार करने के लिए अत्यावश्यक है। यही कारण है कि हिंदी साहित्येतिहास की परंपरा के रेखांकन में इन विद्वानों का योगदान अतुलनीय है।

इसी तरह आचार्य शुक्ल लोकचेतना के धरातल पर ही पूरब और पश्चिम के कलावादी मूल्यों की आलोचना करते हैं। यह वही समय है जब यूरोप में ‘कला कला के लिए’ के नारे के बहाव में बहुत सारे साहित्यकार प्रवाहित हो गए थे। कला को जीवन से अलग करके देखा जाने लगा और कहा जाने लगा कि कला का साध्य और साधन सबसे पहले कला ही है। इसका प्रभाव यह पड़ रहा था कि साहित्य का जीवनानुभवों से संबंध विच्छेद हो रहा था और अमूर्त की अभिव्यक्ति का उसमें प्रधान्य होते जाने के कारण उससे सामंजस्य स्थापित करना दुष्कर था। साहित्य में अर्थ और सामाजिक मूल्यों का प्रसार अवरुद्ध हो रहा था। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में यह प्रवृत्ति काव्यक्षेत्र को सीमित करने वाली थी और भारतीय परिस्थितियों के तो एकदम ही अनुरूप नहीं थी। भारतीय परिस्थितियों में आचार्य शुक्ल सभी हृदयों का मेल और सामंजस्य देखते हैं और इसीलिए पश्चिम के इस प्रभाव के कारण देश के साहित्य में लोकहृदय के साथ संवेदना के जुड़ाव में बाधा

¹⁹आचार्य रामचंद्र शुक्लचिन्तामणि, 2004 संस्करण, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ.79.

देखकर उसकी आलोचना करते हैं- “इधर दो एक लेखकों की एक और प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है। ये यूरोप के कुछ कला संबंधी एकदेशीय और अत्युक्त मतों को सामने लाकर हिंदी वालों की आँखों में उसी प्रकार चकाचौंध उत्पन्न करना चाहते हैं जिस प्रकार कुछ लोग वहाँ के फैशन की तड़क भड़क दिखाकर। लेखों को यहाँ से वहाँ तक पढ़ जाइए, लेखकों के अपने किसी विचार का पता न चलेगा। उद्धृत मतों की व्याप्ति कहाँ तक है, भारतीय सिद्धांतों के साथ उनका कहाँ सामंजस्य है और कहाँ विरोध, इन सब बातों के विवेचन का सर्वथा अभाव पाया जाएगा।”²⁰

सामाजिक चेतना के अभाव में हम साहित्य में रूपवादी तत्वों को ढूँढने के लिए तत्पर रहते हैं। शुक्ल-पूर्व इतिहास-लेखन में भारतीय परंपरा और राजनैतिक-सामाजिक परिस्थितियों की समुचित समझदारी के अभाव में मिश्रबन्धु जैसे भारतीय विद्वान पश्चिमी मूल्यों के शिकार हो जाते हैं। वे अपनी साहित्येतिहास की परंपरा का रेखांकन अपने देश की वास्तविक परिस्थितियों के अनुरूप नहीं कर पाते और उन चीजों को श्रेष्ठ दिखाने में जुट जाते हैं जो किसी भी देश के साहित्य के लिए प्राथमिक तौर पर महत्व की बातें नहीं हो सकतीं। इस संदर्भ में रामविलास जी ने ठीक लिखा है कि “शुक्लजी ने पूर्व और पश्चिम दोनों ओर के भाववादी साहित्यशास्त्रियों की इन धारणाओं को निर्मूल किया कि काव्य का उद्देश्य केवल आनन्द देना है, उसकी अनुभूति जीवन की अनुभूति से मूलतः भिन्न होती है, कल्पना संसार के रूपों से परे अपना एक नया संसार रचती है। उन्होंने रस को काव्य की आत्मा माना लेकिन लोक हृदय में लीन होने को रस दशा कहा, ज्ञान को वास्तविक जगत् की सत्ता पर निर्भर बताया, साहित्यशास्त्र से अवैज्ञानिक रहस्यवादी कल्पनाओं को बाहर किया, काव्य के भाव-योग की परिणति लौकिक जीवन के कर्मयोग में की। इस तरह उन्होंने हिंदी में एक मौलिक साहित्यशास्त्र की नींव डाली, जो प्राचीन रूढ़िवाद और पश्चिमी कलावाद से स्वतंत्र ही नहीं है, उनका तीव्र विरोधी भी है।”²¹ आचार्य शुक्ल पश्चिम की किसी चीज से अचम्भित नहीं होते और न पूरब की किसी विशेषता से उत्तेजित। इसीलिए औपनिवेशिक प्रभामंडल से स्वयं को मुक्त कर वे ऐसे साहित्य सिद्धांतों का विकास कर पाते हैं जो किसी भी देश और समाज के विकास के लिए उसकी साहित्यिक-सांस्कृतिक समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है। उदाहरण के लिए लोक संस्कृति की महत्व स्थापना का तर्क लिया जा सकता है। लोक संस्कृति हमेशा ही अपनी जनता की चित्तवृत्तियों की वास्तविक अनुभूति होती है। उसमें जनता का दुख दर्द सबसे स्वाभाविक रूप में प्रकट होता है। जिन देशी-विदेशी विद्वानों ने इन लोकगीतों और लोक संस्कृति को महत्व दिया है वे उपनिवेशवादी साजिश के उतने शिकार नहीं हुए उनकी तुलना में जो इन्हें महत्व नहीं दे पाते। आचार्य शुक्ल के इतिहास में ऐसे तमाम साहित्यिक ग्रंथों की पहचान की गई है जो हमारे लोक के बीच से पैदा हुए हैं, जिनमें हमारी गँवई संस्कृति की महक है। उन्होंने लिखा भी है कि भारतीय हृदय के सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए पुराने प्रचलित ग्रामीण गीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परंपरा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है।²²

आचार्य शुक्ल रूपवाद का विरोध करते वक्त यह ध्यान भी बराबर रखते हैं कि कहीं उन्हें पश्चिम मात्र का ही विरोधी न समझ लिया जाए। उनका विरोध मात्र यह था कि भारतीय साहित्य का विकास भारतीय

²⁰आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 5 खंड, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वही 452.पृ.

²¹रामविलास शर्मा 35.पृ., वही, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना,

²²मैनेजर पाण्डेय साहित्य और इतिहास दृष्टि 116.पृ., वही,

परिस्थितियों के अनुरूप हो, वह पश्चिम की नकल न करे। अपने साहित्य के स्वतंत्र स्वरूप का विकास उनके लिए अभिप्रेत था। पश्चिम से उन्हें उतनी ही सामग्री स्वीकार्य थी जो अपने साहित्य के स्वरूप को स्वाभाविक बनाए रखे, उसे भद्दा न कर दे। उन्होंने लिखा भी है कि “यूरोप के साहित्यक्षेत्र में फैशन के रूप में प्रचलित बातों को कच्चे पक्के ढंग से सामने लाकर कुतूहल उत्पन्न करने की चेष्टा करना अपनी मस्तिष्क शून्यता के साथ ही साथ समस्त हिंदी पाठकों पर मस्तिष्क शून्यता का आरोप करना है। बाहर से सामग्री आए, खूब आए, पर वह कूड़ा करकट के रूप में न इकट्ठी की जाए। उसकी कड़ी परीक्षा हो, उस पर व्यापक दृष्टि से विवेचन किया जाए, जिससे हमारे साहित्य के स्वतंत्र और व्यापक विकास में सहायता पहुँचे।”²³ आचार्य शुक्ल आँख मूँद कर पश्चिम के पीछे भागने की प्रवृत्ति के विरोधी हैं। प्रेमचंद और प्रसाद के साहित्य के स्वरूप में अपने देश की स्वाभाविक परिस्थितियों का प्रभाव उन्हें आकर्षित करता है किन्तु दूसरी ओर यूरोप की सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप पैदा हुए साहित्य और आलोचना को बिना किसी परीक्षण के स्वीकार कर लेने वाले साहित्यकारों पर वे कुपित होते हैं। पश्चिम का ही साहित्य विश्व साहित्य है और अच्छा साहित्य उसके अनुरूप ही हो सकता है— यह दृष्टि आचार्य शुक्ल के शब्दों में अनाड़ीपन और जंगलीपन है। इसी प्रभाव में हिंदी में जिन उपन्यासों में उन्होंने यूरोपीय रहन-सहन के ढाँचे में ढले हुए वर्ग का जीवन चरित देखा उसे व्यापक जनसमुदाय का प्रतिबिम्ब न होने के कारण महत्व नहीं दिया। प्रेमचंद के प्रति उनका आकर्षण इसीलिए था कि उनके साहित्य में देश का रहन-सहन, रीति-व्यवहार और राजनीतिक-सामाजिक दशाओं का वास्तविक स्वरूप उभर कर आता है।

यह आचार्य शुक्ल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है कि विभिन्न कलावादी मूल्यों को ही भारतीयता की पहचान के रूप में स्थापित करने वालों और मात्र इन तत्वों को ही पश्चिम की विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों की तुलना में श्रेष्ठ स्थापित करने में लगे हुए लोगों से मुक्त किया। रचना ही नहीं इतिहास-लेखन और आलोचना में भी इन प्रवृत्तियों के दुष्प्रभाव के प्रति विद्वानों को उन्होंने सजग किया। जैसे, मिश्रबन्धु कुछ विशिष्ट प्रभावों के कारण आलोचना की तुलनात्मक शैली को ही लेकर आगे बढ़ रहे थे, आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में इस प्रवृत्ति की कमजोरियों की ओर इशारा किया। इसके साथ ही उन्होंने भारतीय परंपरा में सामाजिक विकास की स्थितियों से संबद्ध स्वाभाविक साहित्य की छवि को उजागर किया। आचार्य शुक्ल लोकजीवन के साथ साहित्य के इस संबद्ध को लेकर इतने सजग थे कि कहीं कहीं अतिरंजना तक जाते हुए वे विदेशी प्रभावों का विरोध कर गए हैं। हिंदी की अपनी संस्कृति को लेकर वे बांग्ला तक के प्रभावों को स्वाभाविक नहीं मानते थे।

यह आकर्षक है कि आचार्य शुक्ल सिर्फ विदेशी प्रभाव को लेकर नाखुश नहीं थे बल्कि हिंदी पर बांग्ला प्रभाव भी उन्हें अगर स्वाभाविक नहीं लगा तो उससे वे नाखुश थे। तात्पर्य यह कि जब वे पश्चिम से आगत प्रवृत्तियों का साहित्य में विरोध करते हैं तो इसलिए नहीं कि वे प्रवृत्तियाँ पश्चिम से हैं और उनका विरोध किया जाना चाहिए। ये प्रवृत्तियाँ आचार्य शुक्ल को इसलिए स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि वे हिंदी साहित्य की भावधारा के स्वाभाविक विकास को बाधित करती हैं। रहस्यवाद और छायावाद के विरोध का भी प्राथमिक तर्क यही है। शुक्लजी ने लिखा है कि “रवीन्द्र बाबू की गीतांजलि की धूम उठ जाने के कारण नवीनता प्रदर्शन के इच्छुक नए कवियों में से कुछ लोग तो बंग भाषा की रहस्यात्मक कविताओं की रूपरेखा लाने लगे, कुछ लोग

²³आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 5 खंड, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वही458.पृ.

पाश्चात्य काव्य पद्धति को 'विश्वसाहित्य' का लक्षण समझ उसके अनुसरण में तत्पर हुए। परिणाम यह हुआ कि अपने यहाँ की रीतिकाल की रूढ़ियों और द्वितीय उत्थान की इतिवृत्तात्मकता से छूटकर बहुत सी हिंदी कविता विदेश की अनुकृत रूढ़ियों और वादों में जा फँसी। इने गिने कवि ही स्वच्छंदता के मार्मिक और स्वाभाविक पथ पर चले।²⁴

जिस तरह प्राच्यविदों और उपनिवेशवादियों द्वारा हिंदी साहित्य की विभिन्न आध्यात्मिक और रहस्यवादी व्याख्याओं को उन्होंने अस्वीकार किया है, उसी तरह इस प्रवृत्ति में अगर देशी रचनाकार या चिन्तक उन्हें फँसे दिखाई दिए तो उसका उन्होंने विरोध किया। छायावाद के प्रति उनकी यह दृष्टि थी कि उसका मुख्य लक्ष्य काव्य-शैली ही था इसीलिए अर्थ के विस्तार की गुंजाइश उसमें नहीं है। अभिव्यंजना में रोचकता लाने के लिए कवियों का अंग्रेजी और बांग्ला पदावलियों से प्रभावित होना उनकी दृष्टि में स्वाभाविक नहीं था। उन्होंने लिखा है कि बांग्ला के प्रभाव से "छायावाद नाम चल पड़ने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विश्रृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले। शैली की इन विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना में ही लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही। विभावपक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया। असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति अत्यंत चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारों तक ही काव्य की गतिविधि प्रायः बँध गई।"²⁵

छायावाद का स्वरूप जिस समय तैयार हो रहा था वह भारत में स्वाधीनता आंदोलन के उभार का दौर था। ऐसे में आचार्य शुक्ल का चिंतित होना स्वाभाविक था कि कहीं साहित्य गंभीर सामाजिक विषयों से विमुख होकर रहस्यमयी प्रियतम के प्रति रहस्यवादी प्रेम में तो नहीं फँसता जा रहा है। छायावाद के प्रति उनके रूखेपन का कारण यह भी है कि उन्हें यह लगता रहा कि इस प्रवृत्ति के कारण हिंदी में गलत समय पर पश्चिम के कलावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा हो रही है। उनकी व्यवस्थित इतिहास-दृष्टि साहित्य में ऐसी प्रवृत्तियों को हानिकारक मानती है। किन्तु आज छायावाद जिस तरह हिंदी साहित्य में स्वीकृत है उससे यह लगता है कि उक्त प्रवृत्ति छायावाद का मात्र एक पहलू है, उसमें स्वाभाविक भाव-बोध का विकास भी उत्कृष्ट है। ऐसा लगता है कि शुक्लजी की साहित्य के स्वाभाविक विकास की चिन्ता उनके ऊपर इतनी हावी हो गई थी कि वे यह समझ नहीं सके कि ऐसी शब्दावली में भी स्वाभाविक कविताओं का उद्भव हो सकता है।

इसी प्रसंग में यह भी सवाल उठता है कि क्या औपनिवेशिक व्याख्याओं से उबरने के लिए शुक्लजी ने पुनरुत्थानवाद का रास्ता अपना लिया था। आचार्य शुक्ल निश्चय ही साहित्येतिहास में प्रगतिशील चेतना की स्थापना करने वालों में प्रथम थे किन्तु यह सवाल महत्वपूर्ण है कि इस चेतना के प्रसार में उन्होंने मात्र यथार्थ को उद्घाटित किया या समय के प्रभाव में, स्वाधीनता आंदोलन के ऊफान में, राष्ट्रवाद के दबाव में, नवजागरण की अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या की है। नामवर जी ने रामविलास जी पर विचार करते हुए यह माना है कि उनमें एक तरह का 'भारतीय प्राच्यवाद' सक्रिय है। भारतीय प्राच्यवाद से नामवर जी का मत है कि

²⁴वही481.पृ.,

²⁵वही516.पृ.,

भारत को ही पश्चिम की तुलना में श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास करना। इस बात का विश्लेषण जरूरी है कि ऐसी प्रतिक्रिया जो उस समय के कई विद्वानों में लक्षित होता है उससे हिंदी साहित्य के इतिहासकार कितने प्रभावित थे। यह सवाल इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इतिहास ग्रंथ ही माध्यम हैं अपने अतीत को जानने का, समझने का और उनसे सीखने का। अगर हमें यह लगता है कि अंग्रेजी इतिहासकारों ने उपनिवेशवाद के दबाव में यथार्थ को अनुकूलित कर उद्घाटित किया जिसने समय की चेतना को प्रभावित किया तो हमें यह भी लगना चाहिए कि जब हम इतिहास लिखें तो एक दूसरी ही अतिवादिता न तैयार करें क्योंकि अतिवादिता सदैव फासीवादी मानसिकता के पैदा होने का प्राथमिक कारण रही है।

छायावाद और ऐसे ही एक दो प्रसंगों में आचार्य शुक्ल विदेशी प्रभाव को लेकर थोड़े अधिक रोष में दिखाई देते हैं किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी इतिहास-दृष्टि में पूरब और पश्चिम की विद्वत्ता का स्वाभाविक विकास है जिसका लाभ पूरब और पश्चिम दोनों की ही साहित्यिक धाराएँ समान रूप में उठा सकती हैं। अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता की समझ, परसंस्कृति की हीनता स्थापित किए बगैर भी प्रमाणित की जा सकती है, इस दृष्टि का विकास शुक्लजी ने कर लिया था और यही कारण है कि पुनरुत्थानभावना उनमें उभरता तो है किन्तु विकृत रूप नहीं ले पाता। आचार्य शुक्ल की दृष्टि की यह सूक्ष्मता प्रमाणित करती है कि प्राच्यवाद को एकरेखीय धरातल पर नहीं परखना चाहिए। एडवर्ड सईद बीसवीं सदी में भी जिस प्राच्यवाद का विस्तार देखते हैं, उसका वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने का सामर्थ्य आचार्य शुक्ल ने आजादी से पहले ही अर्जित कर लिया था।

यही कारण है कि बाद में जाकर आचार्य शुक्ल ने छायावाद के कई कवियों की कविता और शैली की प्रशंसा भी की। प्रसाद उनकी नजर में एक श्रेष्ठ कवि और कामायनी विशद कल्पनाओं और मार्मिक उक्तियों से परिपूर्ण काव्य था। उन्होंने माना है कि छायावाद में हृदय पक्ष को पूर्णतः अस्वीकारा नहीं गया है और उसमें काव्य शैली का सुन्दर विकास भी हुआ है। निरालजी के बारे में भी उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उनमें बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा विद्यमान है। कुल मिलाकर आचार्य शुक्ल के लिए मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि “हिन्दी लेखकों से उनकी माँग केवल यही थी कि पाश्चात्य साहित्य की परंपरा से कुछ भी सीखते और ग्रहण करते समय हिंदी साहित्य के जातीय स्वरूप, अपने समकालीन समाज से उसके संबंध और उसके स्वतंत्र विकास का ध्यान रख कर नए रचानात्मक प्रयत्न होने चाहिए केवल पश्चिम का अनुकरण नहीं।”²⁶

आचार्य शुक्ल के चिन्तन पर प्राच्यवाद के प्रभाव को समझने के लिए भाषा के बारे में उनकी समझदारी का विश्लेषण भी आवश्यक है। कहा जा चुका है कि साहित्येतिहास लेखन के लिए भाषा के इतिहास की भी स्पष्ट समझदारी होनी चाहिए। उन्नीसवीं सदी में उपनिवेशवाद के प्रभाव में हिंदी भाषा के स्वरूप और विकास के संदर्भ में बहुत ही भिन्न साथ ही विघटनकारी मान्यताओं का विकास हुआ था। औपनिवेशिक इतिहासकारों ने किन प्रभावों के कारण और किस तरह इन मान्यताओं को बढ़ावा दिया वह कहने की आवश्यकता नहीं। समानता के बिंदुओं को तलाशने के बजाय शासकों और कई प्राच्यविदों का ध्यान अलगाववादी बिंदुओं की ओर ही था। उपनिवेशवाद के प्रभाव के कारण ही हिंदी क्षेत्र की जातीय प्रगति को, भाषाई एकता को क्षति पहुँची थी। इन अंग्रेजों के लिए यह स्वीकार करना, यह समझना लगभग असंभव था। कुछ विद्वान फारसी मुक्त हिंदी के

²⁶मैनेजर पाण्डेय 127.पृ. वही, साहित्य और इतिहास दृष्टि,

पक्ष में खड़े थे, कुछ संस्कृतनिष्ठ हिंदी के, कुछ उर्दू के। किन्तु लोग इसके लिए नहीं खड़े थे कि इन भाषाओं में समानता के कुछ सूत्र भी तलाशे जा सकते हैं। भाषा के इतिहास की ऐसी समझदारी कुछ एक देशी विद्वानों में थी किन्तु उनका प्रभाव बहुत ही सीमित था। आज भी हमारे साहित्य का इतिहास हमारी भाषा के इतिहास से मेल नहीं खाता। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों के भीतर भाषा के इतिहास की सही समझदारी होती और उपनिवेशवादी चेतना से वे कम ग्रस्त होते तो शायद हिंदी साहित्येतिहास की परम्परा को वे ठीक से स्थापित कर पाते।

आचार्य शुक्ल में हिंदी भाषा के व्यापक जातीय स्वरूप की इतनी पहचान तो जरूर थी कि उन्होंने अपने इतिहास में अवधी, ब्रज, मैथिली इत्यादि विभिन्न बोलियों के साहित्य को शामिल किया। किन्तु उर्दू के साहित्य को विभिन्न कुतर्कों से अलगाकर जिस तरह एक सम्मिलित परंपरा की नींव तोड़ी गई उससे हिंदी साहित्य का औपनिवेशिक दौर का कोई इतिहासकार उसे उबार न सका। वस्तुतः तासी ने भी अपने इतिहास में चीजें सम्मिलित रूप में रखीं किन्तु समय के साथ वे अपनी लीक से हट गए। ग्रियर्सन ने भी हिंदी जाति की विभिन्न बोलियों के बारे में तो हिंदी साहित्येतिहास में चर्चा की है किन्तु खड़ी बोली के इतिहास को खंडित रूप में पेश किया जाता है। एफ। ई। के ने उनका अनुकरण ही किया है। आचार्य शुक्ल भी हिंदी साहित्य को इस दृष्टि से समृद्ध कर पाने में असमर्थ ही रहे। यह या तो उपनिवेशवाद के प्रभाव से हुआ या अस्मिता के प्रभाव से।

अपने हिंदी साहित्येतिहास में हिन्दी-उर्दू के भेदपूर्ण स्वरूप को लेकर प्रारंभिक गद्य लेखकों का विवेचन करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि “इन अनुवादकों (ईसाई धर्म पुस्तकों के) ने सदासुख और लल्लूलाल की विशुद्ध भाषा को ही आदर्श माना, उर्दूपन को बिल्कुल दूर रखा, इससे यह सूचित होता है कि फारसी-अरबी मिली भाषा से साधारण जनता का लगाव नहीं था जिसके बीच मत का प्रसार करना था।”²⁷

दो पृष्ठ पहले ही शुक्लजी का मानना यह था कि-

“लल्लूलाल की काव्य भाषा गद्यभक्तों के काम की ही अधिकतर है, न नित्य व्यवहार के अनुकूल है, न संबद्ध विचारधारा के योग्य।”²⁸

वस्तुतः प्रेमसागर की भाषा के उबाऊपन की परख होने के बावजूद हिंदी साहित्य के इतिहास में इस ग्रंथ को स्थापित करने में आचार्य शुक्ल की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने ही सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, शकुन्तला नाटक और माधोनल की भाषा को एक ही साँचे में रखकर यह घोषणा कर दी कि चारों पुस्तकें बिल्कुल उर्दू में हैं। उर्दू से अलग हिंदी की एक साहित्यिक परंपरा के रेखांकन के लिए यह जरूरी था कि इन चारों रचनाओं को भिन्न टोकरी में डाल दिया जाए। माधोनल में फारसी-अरबी के शब्द अधिक हैं और वह व्यापक जनसमुदाय की भाषा का प्रतिनिधित्व भी नहीं करती लेकिन सिंहासन बत्तीसी और बैताल पच्चीसी को भी उसी श्रेणी के अन्तर्गत रख देना ठीक नहीं था। इसी प्रारंभिक दिशा-निर्देश की परिणति है कि आज भी विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य के ज्यादातर पाठ्य-क्रम संस्कृतवादी हिंदी साहित्येतिहास की परंपरा में ही बँधे हुए हैं। फिर भी, आचार्य शुक्ल की इन त्रुटियों को मैनेजर पाण्डेय के इस मत के संदर्भ में ही देखना चाहिए

²⁷आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन 252.पृ., 2004, नई दिल्ली,

²⁸वही 251.पृ.,

कि “स्वयं आचार्य शुक्ल हिन्द के व्यापक जातीय स्वरूप की पहचान के बावजूद उर्दू साहित्य को हिंदी साहित्य में शामिल नहीं करते, जबकि हिंदी और उर्दू के साहित्य में एक ही भाषा भाषी जाति के जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ प्रकट हुई हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में उर्दू साहित्य को शामिल न करने के पीछे एक तो उस समय का हिंदी उर्दू विवाद है और दूसरे, हिंदी जाति के निर्माण की अधूरी समझ। हिंदी और उर्दू के संबंध के बारे में आचार्य शुक्ल के विचार काफी उलझे हुए, तदयुगीन भाषा विवाद से प्रभावित और अंतर्विरोधों से भरे हुए हैं। इस संदर्भ में शुक्लजी के विचारों की सीमाओं पर विचार करते समय उस काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों और विचारधारात्मक संघर्षों पर भी ध्यान देना चाहिए।”²⁹ कहना न होगा कि आचार्य शुक्ल के समय तक हिंदी उर्दू का अलगाव इतना अधिक परिपक्व हो चुका था कि उसमें एकीकरण कायम होना कठिन था। किन्तु अगर साहित्येतिहास में इन्हें ठीक रूप में स्थान मिलता तो शायद इस भाषा के जातीय स्वरूप को और अपनी समृद्ध परंपरा से हम और लगाव रख पाते। ऐसे अनेक साहित्यकारों के साहित्य से परिचित हो पाते जिन्हें इस पूरी जाति के लोगों का साहित्यकार कहा जा सकता है, जातीय परंपरा का वाहक कहा जा सकता है।

इस सीमा के होते हुए भी आचार्य शुक्ल के भाषाई चिंतन में कई विशेषताएँ थीं। जैसे कि आचार्य शुक्ल की भाषा-दृष्टि में साम्राज्यविरोध और नवजागरण का पुट प्रबल है। रामविलास शर्मा और नामवर जी ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। रामविलास जी ने इस संदर्भ में लिखा भी है कि “भारत की सभी भाषाओं और उनके साहित्य पर सबसे पहले और सबसे ज्यादा दबाव अंग्रेजी भाषा और साम्राज्यवादी अंग्रेजों की संस्कृति का था। यहाँ पर अन्धविश्वासों को कायम रखने, सामन्ती अवशेषों को मजबूत बनाने और शिक्षा के नाम पर अंग्रेजी का आतंक जमाने और नौजवानों को अपने देश से विमुख करने में सबसे ज्यादा प्रयत्नशील यहाँ के अंग्रेज शासक थे। इसीलिए शुक्लजी का वार सबसे पहले उन्हीं पर होता है।”³⁰ दूसरी बात यह कि आचार्य शुक्ल उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का प्रतिरोध करते हुए इस किस्म के पुनरुत्थानवाद की तरफ नहीं बढ़ते कि संस्कृत को प्रतिष्ठित करने लग जाँ। महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य में ऐसी प्रवृत्तियों के विकास का प्रतिरोध करते हैं। आचार्य शुक्ल भी हिंदी को संस्कृत या फारसी शब्दों से भर देने के खिलाफ खड़े थे। इस तरह के सायास प्रयासों का वे प्रतिरोध करते हैं। उनका मानना था कि हिंदी का एक अपना स्वाभाविक रूप है जिसे संस्कृत का प्रभाव भरकर नष्ट नहीं करना चाहिए। उर्दू संबंधी दृष्टि की अपनी सीमाओं के बावजूद वे पुनरुत्थानवादियों की इस प्रवृत्ति से सहमत नहीं थे कि भारतीय अतीत में ही सब कुछ ढूँढ निकालें।

संक्षेप में, उक्त विश्लेषण का सार यह है कि आचार्य शुक्ल के पहले के इतिहास उपनिवेशवाद के तर्कों का आलोचनात्मक प्रतिरोध तैयार करने में असमर्थ रहे थे। साम्राज्यवाद और सामंतवाद की चेतना से मुक्त न होने के कारण ही शुक्ल-पूर्व इतिहास-ग्रंथों में युग की चेतना प्रतिबिम्बित नहीं होती और मात्र अतीत की विभिन्न विशेषताओं को उद्घाटित किया जाता है। साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में पहली बार आचार्य शुक्ल ने ही वर्तमान और भविष्य की चिंता करते हुए साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी चेतना के साथ, भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टियों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन कर, जनता की चित्तवृत्तियों और विभिन्न सामाजिक-

²⁹वही 99 पृ.

³⁰रामविलास शर्मा 179 पृ. वही, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना,

सांस्कृतिक प्रभावों का गम्भीर विश्लेषण कर एक ऐसा इतिहास तैयार किया जिसने इतिहास-लेखन की परवर्ती अवधारणाओं को भी अत्यधिक प्रभावित किया। भारतीय नवजागरण की चेतना को आत्मसात कर आचार्य शुक्ल भारतीय समाज, संस्कृति, भाषा और साहित्य की परंपराओं के मूल्यांकन और नए विकास की संभावनाओं की तलाश का प्रयत्न करते हैं। उपनिवेशवाद ने सभ्यता और ज्ञान की जिस तरह की व्याख्या की थी आचार्य शुक्ल जनता की चित्तवृत्ति की परख और तद्जनित राजनीतिक-सामाजिक दृष्टि के कारण उसके भ्रमजाल में नहीं फँसते। आचार्य शुक्ल में राष्ट्रवादी आंदोलन के ऊफान में पुनरुत्थानवाद जन्म तो लेती है किन्तु अपने आलोचनात्मक विवेक से, पूरब और पश्चिम के व्यवस्थित अध्ययन से, वे उसे विस्तार नहीं लेने देते। इसी कारण रीतिवाद-रूपवाद, रहस्यवाद, आध्यात्मिकता, राजभक्ति जैसी प्रवृत्तियों की सही आलोचना आचार्य शुक्ल प्रस्तुत कर पाते हैं, जो करने में शुक्ल-पूर्व इतिहास-लेखन की अवधारणाएँ सर्वथा असमर्थ रहीं। किन्तु उपनिवेशवाद और अस्मिताई प्रभावों ने हिंदी की जातीय परंपरा में जो फूट पैदा कर दी थी, आचार्य शुक्ल भी उसे दूर कर पाने में असमर्थ रहे। आज भी हमारे साहित्य का इतिहास हमारी भाषा के इतिहास से मेल नहीं खाता। हिंदी जाति की विभिन्न बोलियों के बारे में तो हिंदी साहित्य में चर्चा की जाती है किंतु खड़ी बोली का इतिहास खंडित रूप में ही आता है। आचार्य शुक्ल के उर्दू संबंधी विचार जातीय परंपरा की उनकी गंभीर समझ में एक दरार पैदा कर देते हैं।

संदर्भ-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, खंड 5, संपादक- ओम प्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2007, पृ। 3

मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 2000, पृ। 92

¹वही, पृ। 92

¹आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, खंड 5, वही, पृ। 363

¹मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वही, पृ। 95

¹नामवर सिंह, हिंदी का गद्य पर्व, (लेख- हिंदी नवजागरण की समस्याएँ), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ। 88

¹आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, खंड 5, वही, पृ। 511

¹रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण- 1989, पृ। 18

¹आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोक जागरण और हिंदी साहित्य, (संपादन- रामविलास शर्मा), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 2004, पृ। 97

¹वही, पृ। 97

¹आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, खंड 5, वही, पृ। 511

¹रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, वही, पृ। 39

¹वही, पृ। 512

एसोसिएट प्रोफेसर डिफू परिसर, असम

लेख

दिनकर राष्ट्रवादी नहीं, मानवतावादी

सत्यपाल शर्मा

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हिंदी साहित्य में एक तरफ छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद जैसे साहित्यिक काव्य आंदोलन क्रमशः चल रहे थे, दूसरी तरफ इसके समानांतर एक दूसरी काव्यधारा भी पूरी तरह मजबूती के साथ आगे बढ़ रही थी, जिसे हम राष्ट्रवादी काव्यधारा के नाम से जानते हैं। राष्ट्रवादी काव्यधारा के कवियों में मैथिलिशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, राम नरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि प्रमुख हैं। इन कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर' का निःसंदेह विशिष्ट स्थान है।

दिनकर हिंदी साहित्य के पाठकों के भीतर ही नहीं, बल्कि भारत की आम जनता के भीतर भी एक प्रखर राष्ट्रवादी कवि के रूप में लोकप्रिय हैं। दिनकर की कविता राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। उनकी राष्ट्रवादिता को सिद्ध करने की जरूरत है। भारत की गुलामी के दौर में दिनकर से बड़ा स्वाधीनता का गायक हिंदी में कोई दूसरा कवि नहीं है। लेकिन, दिनकर ने अपनी कविता के संदर्भ में 'चक्रवाल' की भूमिका में लिखा है:

'संस्कारों से कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था किंतु आत्मा मेरी अब भी 'रसवंती' में बसती है।.... राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है।'¹

एक घोषित राष्ट्रवादी कवि द्वारा अपनी कविता में व्यक्त राष्ट्रीय भावना के संदर्भ में उपरोक्त स्वीकारोक्ति के कारण यह देखना न सिर्फ दिलचस्प बल्कि जरूरी भी है कि उसकी कविता में राष्ट्रवाद का स्वरूप क्या है? उसकी कविता में राष्ट्रवाद कितना महत्वपूर्ण है? इस संदर्भ में इस प्रश्न का पुनर्मूल्यांकन और विश्लेषण करने की जरूरत है कि दिनकर के काव्य का केंद्रीय विषय राष्ट्रवाद है या कुछ और?

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान देश की जनता को प्रेरित करने के लिए युद्ध हिंसा और क्रांति के आह्वान संबंधी तमाम ओजपूर्ण रचनाओं के बावजूद दिनकर के समूचे रचना संसार से गुजरने के बाद अब तक मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ, यह है कि दिनकर राष्ट्रवादी से ज्यादा मानवतावादी कवि हैं। उनके काव्य का केंद्रीय विषय राष्ट्रवाद नहीं बल्कि मानवतावाद है। छात्र जीवन से लेकर अब तक दिनकर की रचनाओं से बार-बार गुजरते हुए मेरी यह धारणा और भी बलवति होती गई है। मेरी धारणा या निष्कर्ष के कुछ निश्चित आधार हैं, जिन पर मैं आगे विस्तार से चर्चा करूंगा।

मेरी दृष्टि में एक सच्चा मानवतावादी, इन्सानियत का पुजारी जिस प्रकार धर्म, वर्ण, जाति, नस्ल और लिंग भेद जैसी संकीर्ण सीमाओं को स्वीकार करता है, उसी प्रकार उसका मानवतावाद एक राष्ट्र की संकुचित

सीमाओं के दायरे में कैद नहीं हो सकता। उसकी मानवतावादी दृष्टि जितनी व्यापक और गहरी होगी, उसके लिए राष्ट्र की सीमाएं उतनी ही खोखली और निरर्थक होंगी। इस कसौटी पर दिनकर की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कविताओं का असल मूल्यांकन किया जाए तो वे मानवतावादी कम और राष्ट्रवादी अधिक नजर आएंगे लेकिन काव्य का गंभीर विश्लेषण और मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि उनकी राष्ट्रवादी कविताओं के मूल में भी मानवतावादी दृष्टि है।

दिनकर की राष्ट्रीयता अपने आदर्श रूप में अंतरराष्ट्रीय या मानवतावाद में परिणत होने का प्रयास करती है। दिनकर की राष्ट्रीयता दूसरे शब्दों में भारतीयता है और दिनकर के अनुसार 'भारत का मन राष्ट्रीय कम, अंतरराष्ट्रीय अधिक रहा है।² दिनकर ही नहीं बल्कि हिंदी कवियों की राष्ट्रीयता उनके विश्व प्रेम और विश्व मंगल की कामना में है। इसका प्रमाण हमारी संस्कृत की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में है, जिसे दिनकर जैसे राष्ट्रवादी हिंदी कवियों ने कभी छोड़ा नहीं।

दिनकर का राष्ट्रवादी नजरिया मैक्यावली या चाणक्य का विस्तारवादी नजरिया नहीं है और न ही वह राष्ट्रवाद का साम्राज्यवादी या तानाशाही नजरिया है। दिनकर का राष्ट्रवाद मात्र सुरक्षा, शांति, विश्व विकास और मानवता के कल्याण से जुड़ा है। फिर राष्ट्रीयता की यह भावना उनके काव्य के मूल रूप में नहीं है। उनके काव्य में राष्ट्रवादी स्वर तभी दिखाई पड़ता है, जब राष्ट्र की अस्मिता या प्रतिष्ठा दांव पर होती है। राष्ट्रवादी स्वर उनका मूल स्वर नहीं बल्कि परिस्थितिजन्य है। दासता किसी भी मानव जाति के लिए कलंक है, दासता मानवता का अपमान है। दिनकर की दृष्टि में पराधीन जातियों के लिए राष्ट्रीयता ही मोक्ष का साधन है, किंतु स्वाधीन होने के बाद भी यदि देश जातीय सीमाओं में बंधे रहें तो इससे विश्व की एकता असंभव हो जाएगी। दिनकर का तर्क है कि 'राह चलते यदि पांव में कांटा चुभ जाए तो उसे निकालने के लिए दूसरे कांटे की आवश्यकता होती है। किंतु कांटा निकल जाने पर दोनों ही कांटों को फेंक देना चाहिए।'³ इस तरह जैसे दासता एक शूल है, वैसे ही राष्ट्रीयता भी शूल है। भारत ने एक शूल (राष्ट्रीयता) का उपयोग करके दूसरे शूल (दासता) को निकाल दिया। अतः स्वाधीनता के बाद यह उचित है कि वह इस धारक शूल को भी फेंक दे।

'नील कुसुम' संग्रह की कुछ कविताओं में यह स्पष्ट व्यंजित है कि दिनकर राष्ट्रीयता का बंधन तोड़कर महामानवता का आलिंगन करना चाहते हैं। उनकी एक कविता का तो शीर्षक ही है 'राष्ट्र देवता का विसर्जन'। इसकी कुछ पंक्तियां देखिए—

'खंड प्रलय हो चुका, राष्ट्र देवता! सिधारो,
छीरो दधि को अब प्रवाह जग का धोने दो।'⁴

इसी तरह इसी संग्रह की कविता 'हिमालय का संदेश' में दिनकर की कल्पना का आदर्श रूप विश्व मानव है और उनके अनुसार संघर्षों का मूल कारण राष्ट्रवाद है। पंक्तियां देखिए—

'है कहां विश्व मानव? जो है केवल स्वदेश के प्राणी है:
मानवता नहीं, मातृभू की महिमा के सब अभिमानी हैं।

स्पष्ट है कि मानवता की रक्षा के लिए दिनकर राष्ट्रवाद का खात्मा चाहते हैं। इस संदर्भ में तारकनाथ बाली का मत विचारणीय है कि, 'दिनकर की राष्ट्रीयता युद्ध काल की राष्ट्रीयता है और इसी संदर्भ में उसका बुनियादी मूल्यांकन होना चाहिए। 5. युद्ध काल की राष्ट्रीयता में शक्ति और क्रांति का आह्वान स्वाभाविक है लेकिन दिनकर की विशेषता इस बात में है कि उपरोक्त परिस्थितियों में भी दिनकर अहिंसा और शांति के मूल्यों को भूले नहीं।

दिनकर के काव्य के मूल में मानवतावादी दृष्टि को स्वीकार करने में दिनकर के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के अलावा सबसे बड़ा बाधक तत्व है—दिनकर का युद्ध संबंधी दर्शन और विचार जो उनके काव्य में व्यक्त हुआ है। युद्ध की समस्या मानव समाज की एक चिरंतन समस्या है। अभी तक मनुष्य इस समस्या को हल करने में पूरी तरह समर्थ नहीं हुआ है। दिनकर की दृष्टि में 'युद्ध का अनिवार्य पाप है।' 7. दूसरे शब्दों में, युद्ध का अनिवार्य विकार है। युद्ध का प्रारंभ हो जाने पर शांत प्रेमियों को भी युद्ध की ज्वाला में कूदना पड़ता है। युद्ध का उत्तर युद्ध से ही दिया जा सकता है। क्योंकि विषम रोग का उपचार मिष्ठान नहीं बल्कि कड़वी औषधि है—

'रुग्ण होना चाहता कोई नहीं, रोग लेकिन आ गया जब पास हो तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या? समित होगा नहीं वह मिष्ठान से।' 8.

स्पष्ट है कि दिनकर ने युद्ध को किसी राष्ट्र के विकास या विस्तार के साधन के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे आत्मरक्षार्थ और प्रतिवाद के रूप में स्वीकार किया है—

'चाहता कोई नहीं इसको, मगर जूझना पड़ता सभी को, शत्रु जब आ गया हो द्वार पर ललकारता।' 9.

दिनकर का युद्ध संबंधी यह दृष्टिकोण और उसका समर्थन स्थायी धर्म नहीं बल्कि आप धर्म है जो मात्र संकटकाल में प्रयुक्त होता है। दिनकर का स्थायी धर्म तो मानव धर्म है। इसी दृष्टिकोण के कारण अपने रचनात्मक काल के आरंभ में 'कलिंग विजय' नामक कविता में युद्धोपरांत लोम हर्षक दृश्य देखकर उसे युद्ध से वितृष्णा होती है लेकिन जब द्वितीय विश्व युद्ध की लपटें भारत की ओर भी पड़ने लगीं तो उसी आप धर्म का निर्वाह करते हुए 'कुरुक्षेत्र' नामक प्रबंध काव्य लिखकर तमाम द्वंद्वों और तर्कों से गुजरते हुए भी यह युद्ध के समर्थन में खड़ा होता है। इसी तरह स्वाधीनता के उपरांत 1962 में भारत और चीन के आक्रमण के समय 'परशुराम की प्रतीक्षा' लिखकर वह देश की जनता और नेताओं से अहिंसात्मक दृष्टिकोण को त्यागकर पूर्णतया हिंसावादी दृष्टिकोण अख्तियार करने के लिए प्रेरित करता है।

हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आपात धर्म के रूप में युद्ध का समर्थक होने के बावजूद दिनकर ने युद्ध का समर्थन आंख मूंदकर नहीं किया है। उन्होंने युद्ध का जो तर्कशास्त्र गढ़ा है, उसके अनुसार अत्याचार सहन करना पाप है, अन्यायी को अन्याय करने का अवसर प्रदान करना और उसका प्रतिरोध न करना पाप है—

‘छीनता हो स्वत्व कोई और तू त्याग तप से काम ले, यह पाप है। पुण्य है विछिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ, जो हाथ है।’ 10.

इसी तरह मानवता के श्रेष्ठ गुणों, यथा क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल आदि का होना श्रेयस्कर है लेकिन पराजित, शोषित और दलित जाति को ये गुण शोभा नहीं देते।

उसका एकमात्र धर्म है, आत्म सम्मान की प्राप्ति। ‘क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो, उसको क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो।’ 11.

इस प्रकार दिनकर का ध्येय लाचार और बेबस मनुष्य नहीं बल्कि वह मनुष्य है जो आत्मसम्मान के साथ खड़ा हो। शायद इसी आत्मसम्मान के रक्षार्थ गाँधी जी ने कायरता के वरकश हिंसा को जायज ठहराया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका की पृष्ठभूमि में लिखा गया-‘कुरुक्षेत्र’ नामक काव्य दिनकर के युद्ध संबंधी चिंतन का प्रौढ़ व्यावहारिक रूप है। कहने को महाभारत का युद्ध धर्म-युद्ध था लेकिन युद्धोपरांत विजय के पश्चात् युधिष्ठिर ‘कुरुक्षेत्र’ नामक काव्य में अपनी विजय को बिखरी लाशों, विधवा मां-बहनों और अनाथ बच्चों से तौलते हुए पश्चताप के गर्त में डूब जाते हैं और तब उन्हें युद्ध की भयावहता का अंदाजा लगता है। दुष्परिणामों पर गहन विचार के दौरान अनेक द्वंद्वों और तर्कों से गुजरते हुए कवि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि युद्ध तभी ठीक है जब वह अत्याचार व अन्याय के खात्मे के लिए लड़ा जाए।

निश्चित रूप से यहां युद्ध ध्येय नहीं है बल्कि वह अत्याचार और शोषण के खात्मे का एक साधन है। साध्य है मानवता की रक्षा और मानवता की रक्षा के लिए अन्याय और शोषण का खात्मा जरूरी है। इस तरह हम देखते हैं कि दिनकर के युद्ध दर्शन के भी मूल में मानवतावाद ही है। हां, यहां यह प्रश्न खड़ा किया जा सकता है कि क्या मानवता की रक्षा अहिंसात्मक साधनों से नहीं हो सकती? निश्चित तौर पर यह प्रश्न विचारणीय है, पर यह भी सच है कि अहिंसात्मक रास्ते से मानवता की रक्षा कर पाना हर संभव नहीं है। सामने वाला यदि पशु हो गया हो तो मजबूरी में ही सही, अपनी या मानवता की रक्षा के लिए हाथ में हथियार उठाना पड़ सकता है। लेकिन किसी भी तरह की हिंसा या युद्ध के बाद उसे ग्लानि या पश्चताप का होना उसका मनुष्य होना सिद्ध करता है। ‘कुरुक्षेत्र’ काव्य में युद्धोपरांत युधिष्ठिर की ग्लानि या पश्चताप हो, विस्तार से चित्रित करने के पीछे दिनकर का मूल उद्देश्य युद्ध की नीयत रखने वालों को उससे विमुख करना ही है।

यहां अज्ञेय की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं, यद्यपि उनका संदर्भ दूसरा है-

‘दुख सबको मांजता है, और चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किंतु जिनको मांजता है उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।

मेरे ख्याल से युद्ध के संदर्भ में बातें इतनी ही सही हैं। युद्ध चाहे स्वयं किसी को मुक्त न कर सके लेकिन युद्धग्रस्त आदमी को वह यह सीख जरूर देता है कि वह दूसरों को इससे मुक्त रखे। युधिष्ठिर संभवतः इसी चिंता में युद्ध के बावजूद डूबे हैं कि युद्ध के प्रभाव और विनाश से मानवता को कैसे बचाया जाए। वस्तुतः ये महाभारत के व्यास द्वारा चित्रित युधिष्ठिर नहीं हैं बल्कि ये दिनकर के युधिष्ठिर हैं।

आप कर्म के रूप में भी दिनकर को युद्ध तक स्वीकार है जब उसके परिणामस्वरूप एक समतामूलक मानवतावादी समाज की स्थापना हो। ऐसा समाज जिसमें शोषण न हो- 'श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञानस्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।

धर्म का दीपक दया का दीप। कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?' 12.

एक कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण के लिए इससे बड़ा प्रमाण क्या चाहिए। ये पंक्तियां कहीं और की नहीं 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग की हैं। 'कुरुक्षेत्र में ही दिनकर ने विज्ञान का विरोध इसलिए किया है क्योंकि उसने मनुष्य को हृदय से संचालित होने वाले इंसान की बजाए मात्र बुद्धि से संचालित होने वाला एक यंत्र बना दिया है। विज्ञान के विकास के कारण ही आणविक हथियारों का जन्म हुआ जो समूची मानव जाति को खतरे में डाल सकता है। इसका प्रमाण हम द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर परमाणु हथियारों के उपयोग के कारण उसकी बर्बादी के रूप में देख चुके हैं। दिनकर विज्ञान के ऐसे विकास से मनुष्यों को चेतावनी देते हुए कहते हैं-

'सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार, तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार। हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान,
फूल कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान। खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार काल लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।' 13.

एक मानवतावादी विचार की बड़ी खूबी यह हो ती है कि वह भयंकर संकट के दौरान या निराशा की गर्त या अवसाद के क्षणों में आशा और विश्वास का दामन नहीं छोड़ता है। दिनकर के काव्य में यह आशावाद और मानव में अटूट विश्वास कूट-कूटकर भरा है। उनके आशावाद का एक उदाहरण देखिए-

'लोहे के पेड़, हरे होंगे तू गान प्रेम का गाता चलनम होगी यह मिट्टी जरूर आंसू के कण बरसाता चल। दीपक के जलते प्राण, दीपावली तभी सुहावन होती है रोशनी जगत को देने को अपनी अस्थियां जलाता चल।' 14.

इतना ही नहीं, वे लक्ष्य के नजदीक पहुंचकर थककर बैठ गए। मनुष्य को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि-
'यह प्रदीप जो दिख रहा है, झिलमिल दूर नहीं है थककर बैठ गए क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है।' 15.

मानव जीवन में दिनकर की आस्था इतनी मजबूत है कि वे चांद को भी चुनौती देते हुए कहते हैं-

‘स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे, रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे, रोकिए, जैसे बने इन स्वप्न वालों को

स्वर्ग की ही ओर बढ़ते जा रहे हैं वे’ 16.

दिनकर का मानवतावादी नजरिया उनकी प्रायः हर रचना में मजबूती के साथ व्यक्त हुआ है। ‘कुरुक्षेत्र’ के अलावा दिनकर के सर्वाधिक चर्चित काव्य ग्रंथों में हुंकार, रसवंती, रश्मिरथी और उर्वशी का नाम लिया जाता है। ‘हुंकार’ में कवि का गर्जन ऐसी मानवता या व्यवस्था के खिलाफ है जिसमें अमीर स्वानों को दूध पिलाता है जबकि गरीब के बच्चों को भोजन तक नहीं मिलता-

‘स्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं, मां की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं, युवती की लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं, मालिक तेल फुलेलों पर जब पानी सा द्रव्य बहाते हैं, पापी महलों का अहंकार तब मुझको आमंत्रण झनझन, झनझन, झनझनझन।’ 17.

‘रसवंती’ संग्रह की कविताएं प्रेमपरक हैं तो ‘रश्मिरथी’ का नायक महाभारत का अपमानित और उपेक्षित पात्र ‘कर्ण’ है। यह दिनकर का मानवतावादी नजरिया ही है जिसे महाभारत के उपेक्षित पात्र को आदर्श के इतने ऊंचे सिंहासन पर बैठा दिया कि उसके सामने महाभारत के धर्मराज युधिष्ठिर और धनुषवीर अर्जुन भी छोटे नजर आते हैं। वास्तव में कर्ण इस स्थान का अधिकारी भी था। महाभारत को धर्मयुद्ध भी कहा जाता है लेकिन हम सब जानते हैं कि धर्म पथ पर चलने वाले पांडवों ने युद्ध के दौरान कितने अधर्म का सहारा लिया था। चाहे वह भीष्म को पराजित करने का प्रकरण हो या द्रोणाचार्य के। महाभारत के युद्ध में सच्चे अर्थों में यदि किसी ने धर्म का निर्वाह किया तो वह कर्ण। कृष्ण द्वारा अपनी असलीयत को जानने के बाद भी उसने मित्र धर्म का निर्वाह करते हुए दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ा। कुंती के निवेदन करने पर उसने माँ को यह वचन दिया कि वह अर्जुन के सिवा किसी और भाई का वध नहीं करेगा। उसने अपने वचन का पालन भी किया जब युद्ध में पराजित होकर निहत्था होने पर युधिष्ठिर को उसने छोड़ दिया। लेकिन अर्जुन ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया? जब कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया, वह अपने अस्त्रों को उतारकर अपने रथ का पहिया कीचड़ से निकाल रहा था, ऐसे समय निहत्थे कर्ण पर वार करके अर्जुन ने उसका वध कर दिया। निश्चित रूप से दिनकर की सहानुभूति कर्ण के साथ है, अर्जुन के साथ नहीं, जिसने युद्ध जैसी विषम परिस्थिति में भी सामान्य मानव धर्म ‘निहत्थे पर वार न करना’ का पालन किया। इतना ही नहीं, दिनकर ने कर्ण की दानशीलता का बढ़-चढ़कर बखान भी किया है।

दिनकर ने अपनी अनेक कविताओं में क्षमा, दया, तप और त्याग जैसे मानवता के श्रेष्ठ गुणों का बखान ही नहीं किया बल्कि जनता से उन्हें आत्मसात करने का आवाहन भी किया है। ‘उर्वशी’ नामक उनका काव्य तो विशुद्ध प्रेम काव्य है। कहने की जरूरत नहीं कि मानवता के मूल में प्रेम ही है। ‘उर्वशी’ नामक काव्य में दिनकर ने परलोक की अप्सरा को लोक सुंदरी बनाकर प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में उनका दृष्टिकोण है कि-

‘मनुष्य को देवताओं का प्रेमी बनाने के बदले मनुष्यों का प्रेमी बनाओ।’ 18. यह है कि दिनकर का मानव प्रेम जो देवताओं के बरखस मानव के पक्ष में खड़ा है।

दिनकर ने चार खंडों में एक लंबी कविता लिखी है-‘बापू।’ इसका रचनाकार (1946-47) ‘कुरुक्षेत्र’ के बाद का है। इस कविता में दिनकर को यह आभास होता है कि बापू उसके अंगारों से ऊपर हैं। उसके अंगार कविता के आरंभ में ही लजा जाते हैं और कवि को यह भान होता है कि शांति युद्ध से बड़ा अस्त्र है क्योंकि उसने देख लिया था कि देश में स्वतंत्रता जिस राह से आई, वह दुनिया के इतिहास में एक नई राह है। और इसका बहुत कुछ श्रेय महात्मा गाँधी की अनोखी और अभूतपूर्व अहिंसात्मक आध्यात्मिक शक्ति को है। इसे दिनकर के विचारों में विरोधाभास समझा जाता रहा है, पर मैं इसे विचारों का द्वंद्व समझता हूँ। और दिनकर के विचारों का द्वंद्व एक कवि का द्वंद्व नहीं बल्कि यह उस युग का द्वंद्व है जिससे देश और समाज गुजर रहा है। द्वंद्व विरोधाभासी होने पर अनिवार्यता खराब नहीं होता, बल्कि मेरी दृष्टि में द्वंद्वों से गुजरने के बाद भी जो वैचारिकी बनती है, वही दृढ़ और प्रौढ़ होती है।

दिनकर अपनी वैचारिक में न सिर्फ गाँधीवाद बल्कि मार्क्सवाद की तरफ भी आकृष्ट हैं। हम जानते हैं कि गाँधी और मार्क्स अपने-अपने नजरिए से मानवता की रक्षा और स्थापना का प्रयास करते हैं। दिनकर की खूबी यह है कि उनकी मानवतावादी नजरिए में गाँधीवाद, मार्क्सवाद और राष्ट्रवाद का अदभुत त्रिकोण बनता है। दिनकर तीनों वादों की तरफ आकृष्ट हैं लेकिन किसी एक वाद की सीमा में कैद नहीं होते। वे सच्चे अर्थों में मानवता के पुजारी हैं। दिनकर और गाँधी के साध्य में फर्क करना मुश्किल है लेकिन गाँधी से उनका विरोध इस बात में है कि साधन के अपवित्र या हिंसात्मक होने की स्थिति में भी वे गाँधी की तरह साध्य को छोड़ते नहीं हैं।

मार्क्स की तरह दिनकर से समाज का खात्मा चाहते हैं लेकिन मार्क्स से उनका विरोध इस बात में है कि वे मार्क्स की तरह शोषण के खात्मे के लिए खूनी क्रांति को अनिवार्य नहीं मानते, यद्यपि उन्हें इससे परहेज भी नहीं है। लेकिन हिंसा या युद्ध का समर्थन वे अंतिम विकल्प के रूप में करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैचारिक स्तर पर दिनकर कहीं-न-कहीं गाँधी और मार्क्स के बीच में खड़े हैं। अपने एक रोचक निबंध, जिसका शीर्षक है- ‘गाँधी से मार्क्स की परिष्कृति’ में दिनकर ने लिखा है कि-‘जो आदमी मार्क्स के यहां से घबराकर भागेगा, वह गाँधी के यहां भी शांति नहीं पा सकता। जिसे यह भय है कि मार्क्स उसकी दौलत को छीनकर सर्वहारा में बांट देगा, वह जब गाँधीजी के पास जाएगा, तब गाँधीजी भी उससे यही कहेंगे कि जिन चीजों की तुम्हें नितांत आवश्यकता नहीं है वे चीजें तुम्हारी हो ही नहीं सकती। तुम्हारा धर्म है कि तुम स्वेच्छा से इन फाजिल चीजों को समाज के दायित्व में दे दो।’ 19. स्पष्ट है कि दिनकर की दृष्टि में साध्य अर्थात् व्यापक मानवता का कल्याण महत्वपूर्ण है। वह जैसे भी सधे, गाँधीवादी तरीके से या मार्क्सवादी तरीके से या कभी राष्ट्रवाद की सीमा में बंधकर भी। दिनकर किसी भी सूरत में अपने ध्येय से समझौता करने के लिए तैयार नहीं हैं।

आमतौर पर दिनकर के राष्ट्रवादी नजरिए पर चर्चा करते हुए सारा ध्यान उनकी कविताओं पर केंद्रित किया जाता है जबकि दिनकर ने तकरीबन दो दर्जन गद्य पुस्तकों की भी रचना की है। निबंध, आलोचना, संस्मरण, डायरी, यात्रा वृत्तांत संबंधी उनकी पुस्तकों में दिनकर ने संस्कृति, परंपरा, आधुनिकता, राष्ट्रवाद जैसे मानव जीवन से जुड़े शाश्वत मसलों पर विस्तार से चिंतन किया है। राष्ट्र के संदर्भ में दिनकर पर विचार करते समय उनकी इन रचनाओं की अनदेखी करना उचित नहीं है।

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित और तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा भूमिका लिखित उनकी पुस्तक 'संस्कृत के चार अध्याय' में उनका नजरिया न तो हिंदूवादी है और न ही शुद्धतावादी। भारतीय संस्कृति के चिंतन में उन्होंने उस सामाजिक-सांस्कृतिक वकालत की है जो और द्रविड़, हिंदू-मुसलमान जैसी नाना जातियों के संघर्ष-समन्वय के उपरांत बनी हैं। उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के बीच एकता के बाधक तत्वों की तरफ इशारा करते हुए उनमें एकता के सूत्र तलाशने की कोशिश की है। निःसंदेह दिनकर के संस्कृत चिंतन के मूल में राष्ट्रवाद से बढ़कर मानवतावाद है।

दिनकर को ओज और क्रांति का कवि कहते हुए उन्हें युद्ध का कवि भी कहा जाता है। लेकिन पश्चिम जर्मनी की यात्रा करते हुए युद्ध के कुपरिणामों के संबंध में दिनकर के विचार देखिए- 'हिटलर अपना तांडव करके चला गया। रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन भी जा चुके हैं। बच गई है जनता, जन्मी है नई जनता, जो उन महापुरुषों के न्याय का कुपरिणाम भोग रही है।' 20. स्पष्ट है कि दिनकर के युद्ध दर्शन और द्वितीय विश्व युद्ध के दर्शन में बुनियादी फर्क है। दिनकर ने कभी साम्राज्यवादी, विस्तारवादी या तानाशाही नजरिए के युद्ध का समर्थन नहीं किया।

युद्ध की आड़ में प्रायः राष्ट्रवाद भावनाओं का प्रचार-प्रसार किया जाता है। युद्ध के समय का नेता बड़ा राष्ट्रवादी हो जाता है, यह समय की मांग होती है। ऐसे समय में दिनकर भी राष्ट्रवादी हो जाते हैं लेकिन उनकी चिंता का मूल विषय राष्ट्रवाद नहीं बल्कि मानवतावाद है। , बल्कि मानवतावाद है। उन्हीं के शब्द देखिए- 'पाकिस्तानी मरे, तो हिंदुस्तानी खुश और हिंदुस्तानी मरे, तो पाकिस्तानी खुश। वह समय कब आएगा जब किसी के मरने पर कोई खुश नहीं होगा?' 21. क्या अब भी दिनकर को संकीर्ण अर्थों में मात्र राष्ट्रवादी कहना उचित होगा?

संकेत विवरण

1. दिनकर 101 पृष्ठ , 1998 , नई दिल्ली , राधाकृष्ण प्रकाशन (संपादक) सावित्री सिन्हा ,
2. वही पृष्ठ 26 ,
3. वही 93 पृष्ठ ,
4. वही , पृष्ठ 93
5. वही 118 पृष्ठ ,
6. वही 113 पृष्ठ ,
7. वही 96 पृष्ठ ,

8. वही116 पृष्ठ ,
9. वही116 पृष्ठ ,
10. वही117 पृष्ठ ,
11. वही117 पृष्ठ ,
12. रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 72-66, 2002, राजपाल एवं संस, कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली
13. वही71 पृष्ठ ,
14. स्मृति से
15. स्मृति से
16. दिनकर ,(संपादक) सावित्री सिन्हा ,पृष्ठ 57
17. स्मृति से
18. दिनकर की डायरी227 पृष्ठ ,1998 ,नई दिल्ली ,नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,रामधारी सिंह दिनकर ,
19. अर्ध नारीश्वर99 पृष्ठ ,पटना ,उद्यांचल ,रामधारी सिंह दिनकर ,
20. मेरी यात्राएं81 पृष्ठ ,1971 ,पटना ,उद्यांचल ,रामधारी सिंह दिनकर ,
21. दिनकर की डायरी ,दिनकर271 पृष्ठ ,

संस्कृत की उपेक्षा न करें

प्रो. चौइरि उपेन्द्र राव

दुनिया में बहुत सारी भाषाएँ हैं। समस्त संसार में कितनी भाषाएँ हैं यह गिनना भी कठिन है। भारत में भी भाषाओं की कमी नहीं। यहाँ भी अनेकानेक भाषाएँ हैं। लेकिन इतनी सारी भाषाओं में संस्कृत ही सर्वप्राचीन भाषा है। ऐसा कहना शायद कुछ लोगों को सही नहीं लगता होगा। कुछ को तो यह बात बहुत अजीब भी लगती होगी। क्योंकि भारत में आज ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है, जो इन बातों को समझना नहीं चाहते हैं। असल में संस्कृत की निन्दा करना और भारतीय संस्कृति की अवहेलना करना आज एक फैशन हो गया है। लेकिन यथार्थ तो यही है कि संस्कृत सबसे प्राचीन भाषा है। इसमें कोई भी विसंवाद नहीं है। संसार में बहुत प्राचीन भाषाएँ भी जैसे ग्रीक, लैटिन संस्कृत से पुरानी नहीं हैं। इस बात को भाषा-शास्त्रीयों ने भी स्वीकार किया है।

भारतीय संस्कृति संसार में एक विशिष्ट संस्कृति है।"सम् + कृ धातोः क्तिन् प्रत्यये सति संस्कृतिः रूपं सिध्यति"। असल में संस्कृति निम्नलिखित १० अंशों का समाहार स्वरूप है -

१. धार्मिकी भावना २. सदाचार ३. पारलौकिकी भावना ४. आध्यात्मिकी भावना ५. वर्णव्यवस्था ६. आश्रम व्यवस्था ७. वैदिक धर्मनिष्ठता ८. पुनर्जन्मवाद ९. मोक्षप्राप्ति १०. निर्भयत्व भावना।

भारतीय संस्कृति संस्कृत पर निर्भर है, "संस्कृतिः संस्कृताश्रिता"। संस्कृत एक परिनिष्ठित, व्याकरणशुद्ध, अति प्राचीन होते हुए भी नित्य-नवीन भाषा है। सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से संस्कृत शब्द की उत्पत्ति हुई। संस्कृत इतनी विलक्षण भाषा है कि उसे दैवी वाक् के रूप में लोग पूजा करते हैं।

"संस्कृतं नाम दैवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभिः।" इसका मतलब यह नहीं है कि संस्कृत केवल देवताओं की भाषा है। दैवीयगुण सम्पन्न समस्त विद्वान् देवता के समान है। "विद्वांसो वै देवाः" ऐसा कहा गया। संस्कृत सीखने की इच्छा तो व्यक्त करते हैं लेकिन प्रारम्भ नहीं करते हैं और संस्कृत भाषा को कठिन भाषा समझते हैं। लेकिन ऐसा सोचना बिल्कुल गलत है। कार्य सिद्धि प्रयत्न से होती है, केवल तमन्ना से नहीं। वास्तव में यह सरल तथा मधुर भाषा है। कहा गया है- "भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती"।

जिससे भाषण किया जाता है, वह भाषा है। संस्कृत एक भाषा है, क्योंकि संस्कृत के माध्यम से ही प्राचीन भारत में नित्य व्यवहार हो रहा था। लोग इसे समझते थे, इसलिए संस्कृत में अनन्त साहित्य का निर्माण हुआ है। इस भाषा में नाटकों की भी रचना हुई है। उन नाटकों में संस्कृत से ही बातचीत होता है। यह संस्कृत व्यवहार का एक ज्वलन्त प्रमाण है। महर्षि तथा महाकवि वाल्मिकी रामायण की अद्भुत रचना की है। महाकवि वाल्मिकी अपने रामायण में वर्णन करते हैं कि, अशोक वाटिका में प्रविष्ट वीर हनुमान संस्कृत में बोले थे। हनुमान सोचते हैं कि,

यदि वाचं वदिष्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना माँ सीता भीता भविष्यति ॥

इससे पता चलता है कि रामायण काल में ब्राह्मणों में संस्कृत का व्यवहार ज्यादा होता था, इसका मतलब यह नहीं कि इसे केवल ब्राह्मण लोग ही बोलते थे, अन्य लोग अन्य प्रकार की संस्कृत बोलते थे। कुछ लोग शायद प्राकृत में भी बोलते थे। पालि प्राकृतों में विनिर्मित बौद्ध तथा जैन साहित्यों को दिखाते हुए कुछ लोग ऐसा सिद्धान्त करने की कोशिश करते हैं कि संस्कृत ब्राह्मणों की भाषा है और पालि-प्राकृत ब्राह्मणोत्तर लोगों की भाषा है। लेकिन हजारों सालों से प्राचीन भाषाओं के बारे में इतना आसानी से और जल्दी से इस प्रकार सिद्धान्त करना अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करना ही है।

प्राचीन भारत में साधारण लोग भी संस्कृत में बात करने थे। संस्कृत ग्रन्थों में प्रमाण मिलता है कि उन दिनों में लकड़ी बेचने वाला भी संस्कृत में बोलता था। एक बार राजा भोज ने किसी लकड़ी बेचने वाले से कहा, “किं त्वां भारो बाधति?” राजा भोज की इस बात को सुनकर लकड़ी बेचने वाले ने कहा –“भारो न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते”

राजा भोज ने जान-बूझकर बाध् धातु को परस्मैपद में ‘बाधति’ कर प्रयोग किया। लेकिन यह रूप इतना प्रसिद्ध था उन दिनों में कि, एक लकड़ी बेचने वाला भी इसे पहचान पाते थे। राजा के वचन को सुन वह बोला –“राजन् मेरा भार मुझे उतना बाधित नहीं कर रहा है, जितना आपका यहा ‘बाधति’ वाला अशुद्ध-प्रयोग”। उन दिनों में पालि-प्राकृत भाषाओं का भी प्रयोग होता था। ये तीनों भाषाएँ प्राचीन भारत में चलती थी। इनके अलावा कोई भाषा नहीं थी। लेकिन कुछ लोग जानबूझ कर इन भाषाओं को आपस में प्रतिस्पर्धित करते हैं। यह तो एक राजनीति है।

मण्डन मिश्र का घर ढूँढते हुए आचार्य शंकर ने जब कुएँ से पानी लाने वाली एक कन्या से उनके घर का पता पूछा तो उन्होंने कहा-

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं
शुकाङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तर सन्निरोद्धा
जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम ॥

इससे पता चलता है कि उस समय का सम्पूर्ण वातावरण संस्कृत का था। विश्व की आदिम पुस्तक ‘ऋग्वेद’ संस्कृत में ही है। तत्पश्चात् कालक्रम में बहुत सी भाषाएँ आ गईं। लेकिन उन सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है। इसलिए जो संस्कृत को जानता है, वह भारत की हर भाषा को सरलतया सीख सकता है। क्योंकि सभी भारतीय- भाषाओं में साठ से लेकर अस्सी प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। इन भाषाओं में पालि-प्राकृतों के शब्द भी हैं। केवल भारतीय भाषाओं में नहीं एक अति प्राचीन भाषा होने के नाते संस्कृत के शब्द तो अन्य अनेक विदेशी भाषाओं में भी विद्यमान हैं। ग्रीक भाषा में संस्कृत के शब्द विद्यमान हैं। जर्मन, रूस, लिथुएनिअन,

फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं में तो अनेक संस्कृत शब्द मिलते हैं। रूस भाषा में तो अनन्त शब्दराशि संस्कृत की है। कुछ शब्द देखिए-

संस्कृत	रूस
सदा	सिग्दा
कदा	कग्दा
तदा	तग्दा
धाम	दोम
धीम	धूम
द्वार	द्वेर

इत्यादि अनेक शब्द हैं, जो संस्कृत से ही रूस भाषा में गए हैं। इस तरह संस्कृत एक विश्व-व्यापक भाषा है। केवल शब्द नहीं संस्कृत का विज्ञान शास्त्र भी उन भाषाओं में प्रविष्ट होकर उन देशों में विज्ञान की प्रगति के कारण बन गए हैं। पाश्चात्य देशों के अनेक विद्वानों ने संस्कृत साहित्य पर गहरा शोधकार्य किया।

मैकडोनाल्ड जैसे विद्वान ने लिखा है कि विज्ञान भारत से अरब देशों के द्वारा पश्चिमी देशों में पहुँचा। तत्पश्चात् वे उसी के आधार पर विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढे। भारत में तो भौतिक जीवन की नश्वरता को अनुभव करते हुए भारतीय वैज्ञानिकों ने जानते हुए भी उस पर जोर नहीं दिया। उन्होंने तो हमेशा शाश्वत-सनातन सत्य की खोज में अपना जीवन बिताया। भारतीय मनीषियों का मत था कि यदि खोज करना ही है तो शाश्वत तथा परम सत्य के विषय में खोज करना है। अनित्य तथा क्षणभंगुर भौतिक आविष्कारों के विषय में अमूल्य जीवन को समर्पित करना श्लाघनीय बात नहीं है।

साहित्य-संगीत आदि ललित कलाओं के क्षेत्र में तो भारतीयों का सामना कौन कर सकता है? संस्कृत के एक महान विचारक तथा कवि भर्तृहरि अपने नीतिशतक में कहते हैं कि-

“साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात्-पशुः पुच्छविषाणहीनः”

अर्थात् जिनके पास साहित्य तथा संगीत आदि कला नहीं है वह साक्षात् पशु के समान है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत एक निधि है। संस्कृत साहित्य एक सर्वांगपूर्ण साहित्य है। अन्य साहित्यों की अपेक्षा संस्कृत साहित्य एक पूर्ण समृद्ध तथा विकसित साहित्य है।

इस भाषा में अनेक शास्त्र जन्म लिए। आज आयुर्वेद दुनिया भर में इतना प्रसिद्ध हो गया। भारत में भी आयुर्वेद काफी बढ गया। आयुर्वेद का सम्पूर्ण साहित्य संस्कृत में ही है। जैसे आयुर्वेद, वैसे राजनीति, दण्डनीति, अर्थनीति आदि साहित्य भी संस्कृत में उपलब्ध है। खगोल विज्ञान में हमारे प्राचीन भारतीय

अद्वितीय थे। भाषा के रूप में संस्कृत एक समृद्ध भाषा है। एक ही वस्तु के लिए अनेक शब्द, अनेक वस्तुओं के लिए एक शब्द इस भाषा की खूबी है। वर्णमाला की दृष्टि से लिपिविज्ञान की दृष्टि में भी संस्कृत समृद्ध है। अंग्रेजी में 26 वर्ण मात्र होने से भाषागत संदिग्धता खड़ी हो गई। अन्य पाश्चात्य भाषाओं के बारे में कहना ही क्या?

लेकिन आज बहुत सारे भारतीय संस्कृत को खास स्थान नहीं दे रहे हैं। वे उसकी प्रशंसा तो करते हैं लेकिन पढते नहीं। इसलिए आज संस्कृत के प्रशंसकों की नहीं, उसे पढने वालों की जरूरत है। संस्कृत भाषा को पूजा सम्मान देना अच्छी बात है, लेकिन एक भाषा का सम्मान तभी होता है जब लोग उस भाषा का प्रयोग करेंगे। जिसके द्वारा भाषण किया जाता है उस माध्यम को भाषा कहते हैं। इसलिए संस्कृत में भाषा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दिया गया “भाष्यते अनया इति भाषा ।” संस्कृत को भाषा के रूप देने के लिए उसमें बात करना अनिवार्य है।

प्राचीन भारतीय सभ्यताओं को जानने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि संस्कृत में अनेक प्राचीन भारतीय शिलालेख हैं। यहाँ का अति प्राचीन वैदिक साहित्य भी संस्कृत में ही उपनिबद्ध है। अति प्राचीन होने के कारण उसे वैदिक संस्कृत भाषा कहते। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत भाषा का अध्ययन इसलिए किया कि संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति को समझना एक नितान्त कठिन कार्य है। सारे वेद तथा वैदिक साहित्य संस्कृत में है ही उसके अलावा रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, एवं अन्य पुराण, स्मृति ग्रन्थ, दर्शन, धर्मग्रन्थ, महाकाव्य, नाटक, गद्य-पद्य, चम्पूकाव्य, आख्यान-साहित्य, नीति ग्रन्थादि संस्कृत भाषा में ही रचित हैं। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण काव्यशास्त्र, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याकरण शास्त्र, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुकला शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, संगीतशास्त्र, इतिहासग्रन्थ, छन्दःशास्त्र, कोशशास्त्र, शिक्षाशास्त्र इत्यादि अनेक शाखाएँ संस्कृत भाषा में विद्यमान हैं। लेकिन इन शाखाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन करने वाले छात्र कहाँ हैं ? आज संस्कृत विभागों में जो शोधकार्य पी.एच.डी इत्यादि उपाधियों के लिए किया जा रहा है, उसमें इस प्रकार की दृष्टि विलुप्त हो गई।

संस्कृत में वराहमिहिर, भास्कराचार्य आदि ऋषियों के द्वारा विरचित ज्योतिष तथा तत्सम्बद्ध शास्त्र हैं, वैसा ही कृषिशास्त्र भी बड़ा विख्यात है। पराशर, कश्यप, शार्ङ्गधर आदि ऋषि-मुनियों के द्वारा प्रवर्धित यह कृषिशास्त्र संस्कृत साहित्य की एक विरल सम्पत्ति है। वाचस्पत्यम् में कहा गया कि-

मनुष्याणां तु पोष्यामं कृषिं कुर्यात् कृषीवलाः।

वचांसि चान्यसत्त्वानि क्षुत्तृष्णातो विमोचयन् ॥

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्लोकस्तमवाप्नुयात्।

सर्वसत्त्व हितोद्युक्तं इहामुत्र सुखी भवेत् ॥

अवस्त्रत्वं निरन्नत्वं कृषितो नैव जायते।

अनातिथ्यं च दुःखित्वं दुर्मनो न कदाचन ॥

और काश्यपीय कृषिशास्त्र में कहा गया है कि -

नानाविधानन्दकरं कृषिकर्म प्रशस्यते।

इस प्रकार कृषि कार्य का विस्तृत वर्णन संस्कृत साहित्य में मिलता है। संस्कृत में प्रायः सारे शास्त्र रचे गए हैं। क्योंकि संस्कृत एक वैज्ञानिक भाषा है। उन्नीसवीं सदी में अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने पेरिस विश्वविद्यालय में संग्रहित हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की एक प्रामाणिक सूची बनाई थी। बहुत छात्रों को इन्होंने संस्कृत पढाया। उनके शिष्यों में अन्यतम श्री श्लेगल महोदय जर्मन राष्ट्र में विद्यमान तत्कालीन संस्कृत विद्वानों में अग्रगण्य थे। श्री दरोजी पेरिस विश्वविद्यालय में अध्यापक थे। मनुस्मृति तथा अमरकोश का सम्पादन किया। फ्रांस के श्री वर्गोन्स ने ऋग्वेद का अध्ययन किया। उनके शिष्य सिल्वालेवी ने संस्कृत के ब्राह्मण ग्रन्थों पर तथा नाट्यशास्त्र पर अच्छा काम किया। इन्होंने संस्कृत से प्रभावित भोट भाषा का भी अध्ययन करके बहुत बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया। जर्मन के ही मैक्समूलर महोदय ने ऋग्वेद का पहला संस्करण प्रकाशित किया।

इतना ही नहीं इन्होंने “सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट” नामक श्रृंखला में अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया। बेन्के तथा राथ महोदयने साम तथा अथर्ववेदों का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया। वेबर ने तैत्तरीय संहिता तथा शुक्ल यजुर्वेद ग्रन्थों पर काम किया तथा प्रकाशन भी किया। जर्मन के “हिलबांट” ने ‘वैदिक मैथॉलाजी’ नामक ग्रन्थ को तीन भागों में प्रकाशित किया। वैदिक तथा पालि भाषाओं के ज्ञाता श्री ओल्डेन बर्ग महोदय ने ऋग्वेद संहिता को जर्मन भाषा में अनुवाद कर दो भागों में प्रकाशित किया। इटली में भी गॉस्पेरोगोरेसिओ महोदय ने रामायण की प्रामाणिक प्रति को प्रकाशित किया। भर्तृहरि के वैराग्य-नीतिशतक हॉलैंड से डच भाषा में अनुदित होकर प्रकाशित हुआ। हैश्रिक जार्न ने वराहमिहिर की बृहत्संहिता का सम्पादन किया। मोनियर विलियम्स, मैकडानल्ड, थामस आदि अनेकानेक पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों ने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया। इस प्रकार संस्कृत के विषय में जितना भी लिखा जाए वह कम ही है।

जब तक इस दुनिया में ऋषि-मुनि विरचित कवि पण्डित विलसित संस्कृत भाषा रहेगी तब तक भारतीय संस्कृति के लिए किसी प्रकार की खतरा नहीं है। संस्कृत भाषा समग्र विश्व तथा भारत के बीच में विद्यमान एक भव्य द्वार है। भारतीय समाज एवं संस्कृति को समझने के लिए जिन पाश्चात्य विद्वानों ने प्रयास किया था उन सबने संस्कृत का ही अध्ययन किया था, क्योंकि वेदोपनिषद्-धर्मशास्त्र-तर्क-व्याकरणादि समस्त वाङ्मय संस्कृत में ही सुरक्षित है। अनेकानेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। सबसे पहले ब्रिटिश शासक वैन हेस्टिंग के काल में हुआ। लेकिन समस्त यूरोप खण्ड में संस्कृत साहित्य का परिचय “चार्लेस-विल्किन्स” महोदय के ग्रन्थों से हुआ। वारेन हेस्टिंग की प्रेरणा से वाराणसी में संस्कृत भाषा का समुचित अध्ययन करके उन्होंने भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद “The song of the Adorable” नाम से किया। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने इस संस्कृत द्वार में प्रवेश कर भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास किया। जिससे भारत का अखिल विश्व के साथ दार्शनिक-धार्मिक-सामाजिक आदि संबंध स्थापित हुआ।

भूगोल-खगोल-गणित-ज्योतिष-आयुर्वेद-राजनीति आदि भौतिक शास्त्रों में न्याय-वैशेषिक-वेदान्तादि दार्शनिक विषयों में व्याकरण-निरुक्त कोश शास्त्रादि भाषा शास्त्रीय विषयों में हमारे प्राचीन भारतीयों का

परिश्रम अद्वितीय है। ये सारे ग्रन्थ संस्कृत भाषा में विरचित हैं। अतएव संस्कृत विज्ञान की भाषा है। यह बड़ी गलत धारणा है कि संस्कृत में केवल पौरोहित्यादि धार्मिक साहित्यमात्र विद्यमान है। यदि हम गवेषणा बुद्धि से खोजें तो पता चलता है कि समस्त विश्व में आज जो भी आध्यात्मिक-भौतिक प्रगति दिखाई पड़ रहा है, वह सब संस्कृत के शास्त्रों की ही देन है। संस्कृत के शब्द समस्त संसार में फैल गए हैं जो आज वर्ण-ध्वनि आदि भाषा शास्त्रीय परिवर्तनों के साथ तत्तद् भाषाओं में सुरक्षित है।

दक्षिण पूर्वी देशों में भारतीय संस्कृति किस प्रकार से फैल गई ? इस बात को जानने के लिए प्रो. सत्यव्रत शास्त्री जी का साहित्यावलोकन करना पड़ेगा। उन देशों में अतिप्राचीन समय में ही भारतीय संस्कृति, संस्कृत पालि आदि भाषाएँ पहुँच गईं। इसका प्रमाण उन भाषाओं में विद्यमान अपार संस्कृत शब्दराशि से मिलता है। उस विषय पर प्रो. सत्यव्रत शास्त्री जी का विशेष अध्ययन है।

पश्चिम में हमारा पितृ शब्द ही पीटर और फादर के रूप में परिणत हो गया। भ्रातृ शब्द ब्रदर मातृ शब्द मदर के रूप में परिवर्तित हो गए। इतना ही नहीं nose, tooth, station, mind, hand आदि शब्द नासा, दन्त, स्थापन, हस्तादि शब्दों का ही विकृत रूप है। ऐसे यदि देखा जाए तो सम्पूर्ण विश्व की भाषाओं में संस्कृत शब्द ही नाना प्रकार के परिवर्तनों से उपस्थित है। रूसी भाषा में तो प्रायः सारे शब्द संस्कृत जन्य हैं। संस्कृत के ही शब्द द्वेर, धीम, दोम, वास, किम आदि शब्दों में विद्यमान हैं। हाल ही में मैंने बेलारूस का संदर्शन किया था। वहाँ तो और भी यह साम्य दृष्टिगोचर होता है। वहाँ मिन्स्क से यदि मीर कासेल नामक स्थान को जायेंगे तो रास्ते में अनेक भूर्ज वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। भूर्ज को वे 'बिरोजा' कहते हैं। गाडी में जाने के समय एक बेलरूसी दूसरे से पूछा "केम् रबूतेत", अर्थात् क्या काम करते हो ? संस्कृत का ही किम् वहाँ केम् के रूप में प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत भाषा विश्व के हर कोने में दर्शन देती है। इण्डोनेशिया में रामायण-महाभारत आदि ग्रन्थों की जो कथा है, उन से आज भी वहाँ के लोग प्रेरणा पाते हैं। इन कथाओं को इण्डोनेशिया राष्ट्र में अपनी राष्ट्रीय कथाओं के रूप में स्वीकार किया जाता है। वहाँ की समस्त शब्दराशि संस्कृत की ही है। उनके भूतपूर्व राष्ट्रपति का नाम सुकर्णो है तथा विमान सेवा का नाम गरुड़। वहाँ के द्वीपों के नाम भी संस्कृतमय हैं। यव-बालि-सुमात्रा आदि संस्कृत के ही हैं।

कम्बोडिया शब्द भी कम्बोज शब्द का ही तद्भव रूप है। वहाँ भी संस्कृत भाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। इण्डोनेशिया देश में आज जिस प्रकार मुहम्मदीयों का आधिक्य है उसी प्रकार कम्बोडिया में भी आज बौद्धों का आधिक्य है। तथापि उन देशों में भारतीय पौराणिक कथाएँ आज भी समादृत होती हैं। वहाँ के स्थानों के नाम संस्कृत से ही बने हैं। इसी प्रकार फारसी-पश्तो भाषाएँ भी संस्कृत से ही प्रभावित हैं।

जब चार्ल्स विलिकन्स भगवद्गीता तथा हितोपदेश का अनुवाद कर रहे थे प्रायः उसी समय में विलियम जोन्स महोदय ने भारत में पधारकर संस्कृत का अध्ययन करना शुरू किया। संस्कृत को पढ़कर उन्होंने कलकत्ता शहर में "रॉयल एसियाटिक सोसायटी" के नाम से संस्था को स्थापित किया। इस संस्था की वार्षिक

संगोष्ठियों में संस्कृत तथा संस्कृति के विषय में एक विस्तृत चर्चा होती थी। सारे चर्चित विषयों को फ्रेंच भाषा में पुस्तक के रूप में प्रकाशित करते थे। वे सारे ग्रन्थ पाश्चात्य समाज में एक औत्सुक्यपूर्ण चर्चा के कारण बन गए थे। 1758 वर्ष में ही जोन्स ने महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक को अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस अनुवाद को पढ़कर पाश्चात्य समाज में वहां के कवि-पण्डितों को अत्यन्त हर्ष की प्राप्ति हुई थी तथा उनकी विचारसरणी विकसित हुई। दो साल के बाद इसका जर्मन भाषानुवाद आ गया। इस अनुवाद को पढ़कर जर्मनी के राष्ट्रकवि गेटे महोदय ने आनन्द-नृत्य किया। इस नाटक को पढ़कर कवि गेटे बोले कि – “यह नाटक स्वर्ग तथा पृथिवी के बीच में विद्यमान सीढ़ी जैसा है।”

1814 में ही पेरिस विश्वविद्यालय संस्कृत का अध्ययन शुरू हुआ। वहीं प्रख्यात विद्वान मैक्समूलर महोदय ने संस्कृत का अध्ययन किया था। इटली-डेनमार्क-स्वीडन-जर्मनी-फ्रांस-इंग्लैंड आदि पाश्चात्य देशों में उन्नीसवीं सदी में ही संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। उस समय भारत पराधीन था। परन्तु विश्व के सारे विद्वानों के लिए यह एक तीर्थस्थली बन चुकी थी। भारत आकर संस्कृत का अध्ययन कर अपने देशों में लौटने वाले पाश्चात्य विद्वानों का अपने देशों में समुचित रूप में सत्कार होता था। लेकिन भारत में रहने वाले ही कुछ भारतीय संस्कृति के विरोधी हैं। इनमें तीन प्रकार के वर्ग या संप्रदाय हैं-

१. पाश्चात्य मानसिकता वाले।
२. भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत के विषय में गलत तरीके से प्रतिपादन करने वाले प्रतिकूल साहित्य को पढ़कर संस्कृत तथा संस्कृति को अनुचित रूप में समझने वाले।
३. संस्कृत के अध्येता आचार्य तथा कतिपय छात्र।

इनमें से प्रथम वर्ग के पाश्चात्य भावदास प्रभावित लोग संस्कृत भाषा की निन्दा करते हैं। कहा गया है- “जंगली को क्या मालूम जाफ़ान का मजा ?” वैसे ही वो कभी संस्कृत को समझने का प्रयास नहीं करते। केवल भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत भाषा को दूषित करते रहते हैं।

द्वितीय वर्ग के विद्वानों में ऐसे लोग मौजूद हैं जो गलत साहित्य को पढ़कर हमेशा पूर्वाग्रही बन जाते हैं। संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति की निन्दा करते रहते हैं और तृतीय वर्ग में जो विद्वान हैं वे तो संस्कृत के आचार्य तथा छात्र ही हैं। आज संस्कृत का विरोध जितना बाहर के प्रतिकूल तत्वों से किया जा रहा है उतना ही संस्कृत के कुछ विद्वानों द्वारा हो रहा है। वे कहते हैं कि संस्कृत एक भाषा नहीं है तथा संस्कृति का आचरण करने की जरूरत नहीं है। संस्कृत में बोलने से उन्हें लज्जा आती है, ये सब तो मैकाले महोदय के पुत्र हैं। उनके आग्रह से ही संस्कृत की ऐसी स्थिति आ गई है।

लॉर्ड मैकाले ने कहा था कि -

We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and millions which we govern. A class of persons, Indians in blood and colour but English in taste in opinion in words and in intellects.

ऐसा लगता है कि मैकाले का यह दुःस्वप्न आज साकार हो गया। आज मैकाले के मानस पुत्र बहुत घूम रहे हैं।

लेकिन यथार्थ रूप में बहुत सारे भारतीय विद्याएँ अन्य देशों में गईं। उदाहरण के रूप में चेस नामक विश्वप्रसिद्ध क्रीड़ा की प्रशस्ति पहली बार भारतीय साहित्य में हुई। इसे हम चतुरङ्गविद्या कहते थे। चतुरङ्गक्रीड़ा की प्रसक्ति तो बाण की कादम्बरी में आती है। लेकिन यह उससे भी सैंकड़ों वर्ष पुरानी क्रीड़ा है। संस्कृत का दर्शनशास्त्र भी ग्रीस राष्ट्र में प्रवेश किया। इसलिए दर्शनशास्त्र में भारतीय तथा ग्रीक साहित्यों में साम्य मिलता है। बीजगणित तो भारत में शायद पाँच हजार वर्ष पुराना है। भास्कराचार्य ने अत्यन्त सरलता से इसका प्रणयन किया। अंकगणित क्षेत्र में प्रसिद्ध और आज सब के द्वारा उपयुक्त अरबी संख्याएँ यद्यपि 'अरबी संख्या' के नाम से आज सारे संसार में जानी जाती हैं, लेकिन अरबदेश में उन्हें हिन्दसा कहते हैं। अर्थात् हिन्दुओं के द्वारा आविष्कृत।

अतः आज संस्कृत सप्ताह के पवित्र समय में हम सब को संस्कृत का सम्मान करने का तथा उस श्रेष्ठ भाषा के बारे में, उसके उत्थान के विषय में पुनर्विचार करने की बहुत ही आवश्यकता है।

जयतु संस्कृतम् जयतु भारतम्

अध्यक्ष, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जेएनयू

विदेशी भाषा अधिगम – आत्मनिर्भरता की सौगात

डॉ.संदीप कुमारपाण्डेय

[भाषाविद् – स्लाव भाषाएं]

सामाजिक जीवन शैली को जिस किसी भी वातावरण में पनपने दिया जाए, पर आत्मनिर्भरता रूपी चट्टान में परतंत्रता का बीज कभी अंकुरित नहीं हो सकता। आज चारों तरफ देशज, विकास और विश्वास के आत्मबल की बात हो रही है, जिसका मूल आधार आत्मनिर्भरता ही है। आत्मनिर्भरता देशज की तत्वगणिमा को अपने में धारण किये रहता है। बात जब देशज स्वावलंबन को अंतरराष्ट्रीय आधार देने की हो तो विदेशी भाषा का देशीय आत्मसमन्वय होना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। विदेशी भाषा में आत्मनिर्भर होना केवल विदेशीयत को पूर्णरूपेश अपनाना ही नहीं वरन् उस संस्कृति, कला, विज्ञान, सम्मान और सरोकार को समझना होता है, जो समसामयिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि ऐतिहासिक कालखंड के प्रवाह के भूत को उद्दमित कर, वर्तमान के बागवान में लहराते हुए भविष्य को संसाधित करने का दमखम रखता है।

आज के इस समसामयिक परंतु तत्क्षण परिवर्तित अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक व्यवहार की दुनिया में दो देश सिमटकर मोबाइल के एक क्लिक मात्र रह गये हैं। हों भी क्यू ना! कोई भी देश तरक्की में पीछे नहीं रुकना चाहता और आज के विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने कम से कम इतना तो संभव कर ही दिया है, चाहे भले हमारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता कभी-कभार खतरे में पड़ी महसूस करती रही हो। संगणकीय अनुप्रयोग की दिशा में जगत की स्वदेशी क्रांति ने जहाँ हमारे देश की पूर्ण रूप से स्वालंबित होने की दिशा में आगे पढ़ने का मौका दिया है, वहीं हमारे युवाओं की बौद्धिक विरासत ने अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों का सामना कर विदेशी मुद्रा भंडार के आगम को स्वदेशी आधार प्रदान किया है।

विदेशी मुद्रा को लाने का सबसे बड़ा श्रेय व्यापार का बढ़ना एवं पर्यटन है। विदेशों से व्यापार जहाँ हमारी अर्थव्यवस्था को विकासशील से विकसित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने की मुख्य वजह बनता जा रहा है, वहीं पर्यटन विश्व स्तर पर हमारी सनातन पहचान को वास्तविक और सम्मानजनक स्थिति दिलाने का दमखम रखता है, जिसके कमजोर होने पर हम खुद की पहचान के लिए तरसते दिखेंगे।

समसामयिक अंतरराष्ट्रीय परिवर्तन के लिए चाहे वह सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या रणनीतिक किसी भी क्षेत्र में क्यों ना हो, विदेशी भाषाएं बहुत हद तक जिम्मेवार हैं। विदेशी भाषा के माध्यम से रोजगार की अपार संभावनाएँ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में तो पैदा होती है, साथ ही विदेशी भाषा का ज्ञान अपनी प्राचीन संस्कृति और विरासत को अच्छे ढंग से संसार के सम्मुख प्रस्तुत करने का सबसे अच्छा माध्यम भी

होता है। विदेशी भाषाओं के प्रफुल्लित प्रयोग से सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक रणनीतिक क्षेत्र में पारस्परिक व्यवहार तेज हो जाता है जिसका सीधी, तात्कालिक असर हमारे देश की समसामयिक प्रगति पर पड़ता है।

21वीं सदी की तुलना यदि पिछली सदियों से की जाए तो दोनों में विदेशी भाषा को सीखने का उद्देश्य एकदम व्यक्तिरेकी है। पिछली सदियों में विदेशी भाषा को सीखने का प्रमुख उद्देश्य होता था व्यवसाय करना या औपनिवेशिकता को बढ़ावा देना। उदाहरण भारत में मैकाले की शिक्षा नीति (छन्ननी पद्धति से केवल उनलोगों को अंग्रेजी पढ़ाना जिससे कि वे अंग्रेजियत को सुचारू रूप से चलवाने में मदद कर सकें), अमेरिका में आमतौर पर मान्यता के लिए अंग्रेजी भाषा का केवल एक वोट से डच (जर्मन) भाषा से जीतना, यूरोप में एलीट भाषा के रूप में उच्च वर्ग के मध्य प्रचलित होना इत्यादि।

आधुनिकता के दौर में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कला और फिल्म जगत का इतना आत्मीय संबंध बनना विदेशी भाषा के पारस्परिक परंतु सापेक्षिक प्रयोग को बयाँ करता है। 21वीं सदी में विदेशी भाषाएं जानना या यों कहें विदेशी भाषाओं से अपने जनमानस को प्रबुद्ध करना सकल ब्रह्मांड में रणनीतिक हिस्सेदारी में वर्चस्व बनाए रखना है। जो आज के समय की विवशता ही नहीं बल्कि संप्रभुता के लिए सम्मानजनक लड़ाई है। हमारे देश के लिए अब समय आ चुका है कि हम अपने पाठ्यक्रम में विदेशी भाषाओं को पूर्ण स्थान दें, यदि तुरंत यह संभव ना हो तो कम से कम संयुक्त राष्ट्रसंघ कार्यकारी भाषाओं को तो प्रमुखता से स्थान दें ही। अधिकारिक तौर पर विदेशी भाषाओं को लेकर सीबीएसई द्वारा उठाया गया कदम सराहनीय है परंतु विदेशी भाषा शिक्षण को युवा भाषा शिक्षण के रूप में संभावना को तलाशना पड़ेगा। हमारे देश में दूसरे पाठ्यक्रमों की तुलना में विदेशी भाषा शिक्षण की व्यापकता की कमी है, जो व्यावहारिक और रणनीतिक समृद्धि के लिए दूर होना जरूरी है।

रक्षा एकेडमियों में विदेशी भाषा अधिगम का उदाहरण-

रणनीतिक साझेदारी में सर्वोच्चता बनाए रखने के लिए हमारे रक्षा एकेडमियों में विदेशी भाषाओं को सिखाने की प्रशंसनीय व्यवस्था की गई है। हमारे यहाँ लगभग सभी रक्षा एकेडमियों में विदेशी भाषाएं पढ़ाई जाती हैं। फिर भी कुछ जगहों पर यह पूर्णरूपेण पाठ्यक्रम में शामिल न होकर आंशिक रूप से सिखाई जाती है। इसके पीछे कारण विदेशी भाषा के प्रशिक्षकों की अनुपलब्धता या प्रशिक्षु के ऊपर अतिरिक्त बोझ बताया जाता है। पहला कारण तो कुछ हद तक मान भी लिया जा सकता है, लेकिन दूसरा कारण एकदम ठीक नहीं प्रतीत होता। लगता है उनके ऊपर दूसरे प्रमुख विषयों के पाठ्यक्रम का बहुत दबाव होता है, या बहुत हद तक शारीरिक प्रशिक्षण के कारण से वो अपने को बहुत थका महसूस करते हैं।

शारीरिक प्रशिक्षण को तो एकदम भी कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह यौवन की मर्यादा को सुरक्षित रखता है। जहाँ तक रही बात विषयों के पाठ्यक्रम की तो लगता है जैसे यहाँ मानविकी के पाठ्यक्रम में कुछ बदलाव की जरूरत है। ऐसा इसलिए क्योंकि इतिहास, रक्षाविज्ञान, नीतिशास्त्र जैसे विषयों को अलग-अलग व्यापक रूप से पढ़ाने से अच्छा होगा कि 'संस्कृति और सभ्यता' नामक अलग विषय समेकित रूप से

तैयार कर विशेषरूप से इन्हीं विदेशी भाषाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाएँ और साथ-साथ उस विदेशी भाषा का सामान्य परिचर भी कराए जाए। 'संस्कृति और सभ्यता' नामक यह पाठ्यक्रम प्रत्येक देश या कुछ देशों के समूह के लिए अलग-अलग तैयार कराए जाएँ। इनको तैयार कराने के लिए 'स्मार्ट इंडिया हेक्टाथन-मानविकी' नामक प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रयोग से बहुत से परिणाम सामने आ सकते हैं जिसको बाद में विद्यालय या विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में भी शामिल किया जा सकता है।

इन एकेडमियों में प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम कम से कम चार वर्षों का होता है। शुरू के दो वर्षों तक तो विदेशी भाषा को सामान्य रूप से पढ़ाया जाए बाद के दो वर्षों में इसे 'विषय' के रूप में न पढ़ाकर एक 'टूल' के रूप में पढ़ाया जाए। इस 'टूल' के रूप में पढ़ाने से तात्पर्य है बेसिस साइंस के जो भी विषय हों (भौतिकी, रसायन, पर्यावरण, गणित, इंजीनियरिंग आदि) उनके प्रमुख 'शब्दों या वाक्यविन्यासों' का विदेशी भाषाओं में सामान्य परिचय करवाना आखिकार 'सिक्स्थ जेनेरेशन' का वार 'एटामिक' वार ना होकर 'साइबर' वार होना है। विश्व के लगभग सभी विकसित देशों की भाषाओं का सामान्य परिचय करना हमारे देश के इन सपूतों को जरूरी हो गया है जिससे कि हम अपनी भविष्य की पीढ़ी तैयार कर सकें और देश की संप्रभुता को अटल बना सकें।

सहायक प्रोफेसर, रूसी अध्ययन संस्थान, जेएनयू, 304, भाषा साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान -1
(9899333657, sandeepkrpandey@gmail.com), (लेखक विदेशी भाषा विशेषज्ञ हैं)

लेख

भारत में ग्रे-वाटर (GW) के पुनः उपयोग में समस्या व समाधान

कश्यप कुमार दुबे

जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, जेएनयू

भारत की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण सुरक्षित और साफ पानी की मांग बढ़ रही है, और साथ ही यह वृद्धि विभिन्न तरीकों से पानी के प्रदूषण को भी बढ़ा रही है जो कि संभावित रूप से मानव स्वास्थ्य, खाद्य श्रृंखला और जलीय जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा है। जल प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक अमूल्य धरोहर है, आम जनमानस के मन में जल की समस्या को लेकर अभी तक चेतना नहीं जागी है और वह इसे प्राकृतिक संशाधन समझकर उपभोग कर रहा है, जो कि अनिश्चितकाल तक चलने वाला नहीं है। देश में जल की गंभीर समस्या को ध्यान रखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2019 में जल शक्ति मंत्रालय का गठन किया गया है, नवगठित मंत्रालय जल संरक्षण, जल शुद्धिकरण तथा जल के सदुपयोग के विषय को केंद्र में रखकर काम करेगा।

ग्रे-पानी एक वैकल्पिक जल संसाधन के रूप में उपयोग लाया जा सकता है, जो पानी की कमी को लगभग 70% से अधिक पूरा कर सकता है। ग्रे-वाटर (GW) बाथटब, शावर, हैंडबेसिन, किचनसिंक, डिशवॉशर और कपड़े धोने की मशीन में उत्पादित अपशिष्ट है। यह अनुमान है कि घरेलू पानी की खपत का 50-75% हिस्सा है। जल प्रयोग के संदर्भ में देखा जाए आज के समय में सात मिनट के शॉवर में लगभग 55 लीटर पानी का उपयोग होता है, जबकि एक शौचालय फ्लश में 5-10लीटर का उपयोग होता है। यदि प्रत्येक घर, छात्रावास, स्कूलों और कॉलेजों में ऑन साईट उपचार करके पुनः प्रयोग में ला सकते हैं।

ग्रे-वाटर गुणवत्ता और मात्रा उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की जीवन शैली पर निर्भर करती है जैसे घरों की आय, पानी की गुणवत्ता, और सफाई रसायनों की पसंद आदि।

मुख्यतः भारत जैसे बड़े देश में निम्न समस्याएं मुख्य रूप उल्लेखित की जा सकती है, जैसे:

- नागरिकों में पानी के पुनः प्रयोग करने की जागरूकता की कमी
- ग्रे और काले पानी के ट्रीटमेंट के लिए बुनियादी ढांचे की कमी
- ऑनसाइट उपचार का विकेंद्रीकृत प्रबंधन न होना
- रिसाइकिल पानी की उपयोग में नागरिकों की नकारात्मक धारणा, संशोधित जल के प्रयोग को सामाजिक रूप से अभी तक स्वीकार करने में लोगों को तकलीफ होती है, उन्हें कहीं न कहीं ऐसा महसूस होता है कि यह पानी बिलकुल अलग है

घटते जल संसाधनों के अतिरिक्त, उपयोग के लिए गैर-दूषित जल की उपलब्धता भारत में जलसंकट के लिए महत्वपूर्ण विषय है। जल प्रबंधन के संबंध में 2018 में नीति आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में उपलब्ध कुल जल संसाधन (भूमिगतजल + भूजल) 1,869 बिलियन क्यूबिक मीटर है, जिसमें से केवल 690 बिलियन क्यूबिक मीटर पानी ही उपयोग योग्य है, क्योंकि शेष जल दूषित है।

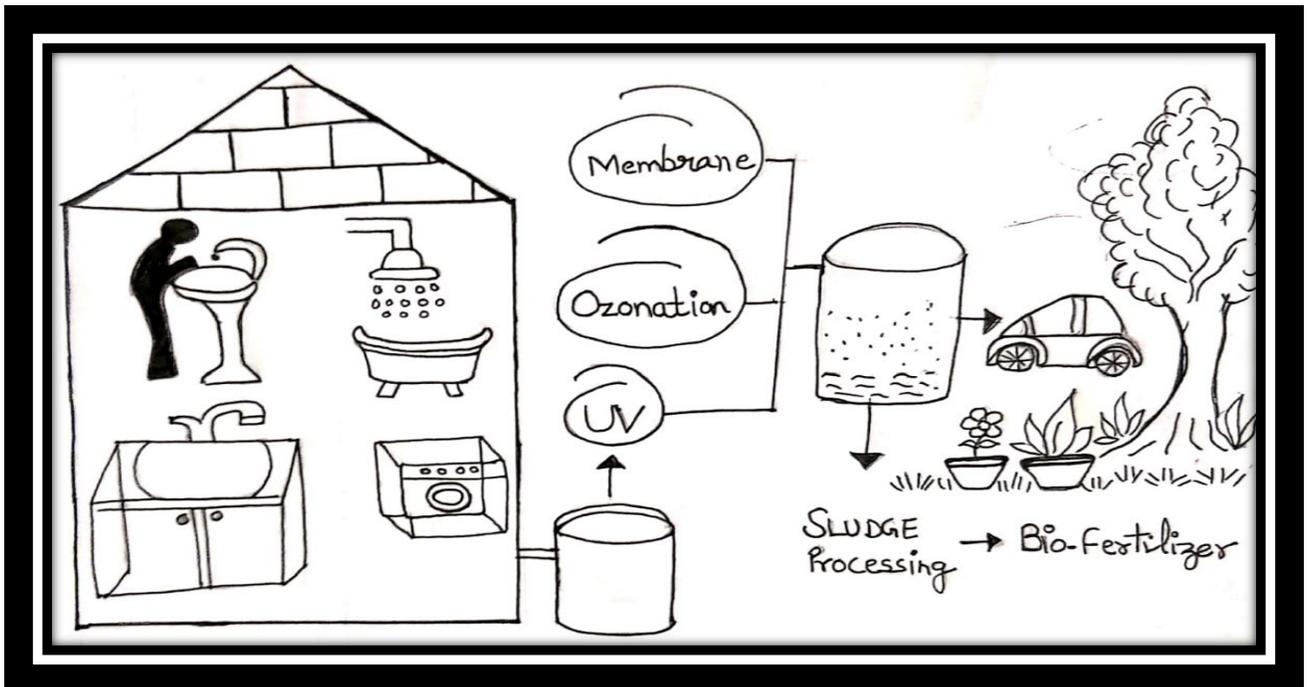
भयावह स्थिति यह है कि वर्तमान समय में भूमिगतजल व भूजल दोनों में ही दवाई एवं दवाई बनाने वाली कंपनियों का अपव्यय द्वारा जलस्रोत/ जलाशय दूषित होते जा रहे हैं जिसके संशोधन के लिए अभी तक यन्त्र उपलब्ध नहीं है, जिस कारण से पेयजल दूषित होता जा रहा है इस कारण से दवाइयों की मनुष्यों में रेजिस्टेंस पाँवर भी बढ़ती जा रही है। समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो स्थिति बेहद खतरनाक साबित हो सकती है।

आजकल, कई प्रकार के जल उपचार तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है लेकिन ज्यादातर औद्योगिक अपशिष्ट के लिए प्रयोग में लाये जा रहे हैं। हालांकि, एक पूरी तरह से एकीकृत समाधान हासिल किया जाना अभी बाकी है। इसके लिए शोध द्वारा नवीन तकनीकों का प्रयोग करके सशक्त, सुद्रुण यंत्र और कम लागत में उपचारित करने वाली प्रणाली तैयार करने की आवश्यकता है, जो कि स्मार्टशहर, स्वच्छ भारत मिशन व जलसंरक्षण जैसी योजनाओं को बलदेंगी।

समाधान:

- भारत में घरों, आवासीय परिसरों, शैक्षणिक संस्थानों, अस्पतालों, कार्यालयों वनगरपालिका/पंचायतों को संबल बनाकर, ग्रेपानी के उपचार के लिए छोटे- छोटे सयंत्र लगाना
- ग्रेपानी के उपचार के बाद बचे हुए कीचड़ का उपयोग जैव-उर्वरक के रूप में करने को प्रेरित करना
- कम लागत के उपचार सयंत्र विकसित करना
- कम ऊर्जा लागत में संचालित सयंत्रों की आवश्यकता
- विकेन्द्रित उपचार सयंत्र, जो कि ग्रेपानी को वहीं पर उपचारित कर के पुनः प्रयोग में लिया जाये

ग्रे-वाटर के श्रोत, उपचार एवं पुनः प्रयोग को दर्शाता चित्र



कोरोना महामारी और पर्यावरण विमर्श

ज्योति

पीएचडी शोध छात्रा, भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू

सन् 2020 किसी भी देश और मनुष्य जाति के लिए अभी तक बेहद दुखद और चुनौतियों से भरा हुआ साल है। कोरोना संक्रमण और चौपट होती अर्थव्यवस्था से जुड़ी खबरों ने अखबार के हर खाने को अपनी आगोश में ले लिया है। भारत में हर रोज कोरोना संक्रमण के मामले तेज़ी से रिकॉर्ड तोड़ रहे हैं। देश में मरने वाले लोगों की संख्या एक लाख होने की ओर तेज गति से बढ़ रही है। इस लेख को लिखे जाने तक कोविड-19 से मरने वालों की संख्या 63 हजार के पार हो गई है और संक्रमण के कुल मामले 49 लाख के पार हो चुके हैं। वर्ल्डओ मीटर वेबसाइट पर उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक पूरी दुनियां में कोरोना वायरस से संक्रमित लोगों की संख्या 3 करोड़ से अधिक है। भारत संक्रमित लोगों की संख्या के मामले में पूरी दुनियां में दूसरे स्थान पर मौजूद है। इसी वेबसाइट पर दिए गए आंकड़ों के अनुसार 17 सितंबर तक विश्वशक्ति अमेरिका में कोरोना संक्रमण 67 लाख से अधिक मामले हैं और मरने वाले लोगों की संख्या लाख से अधिक है। दुखद यह है कि यह अंतिम आंकड़े नहीं हैं। इनमें प्रतिदिन तीव्र बढ़ोतरी हो रही है। इंसान, जो अपने को शक्तिशाली मान कर कुदरत को मुट्ठी में करने की जिद्द के साथ बढ़ रहा था, आज घुटनों के बल बैठा दिया गया। इंसान को घुटने के बल बैठाने वाला यह अदृश्य वायरस, नंगी आंखों से दिख भी नहीं रहा। क्या यह कुदरत की शक्ति का उदारहण नहीं है ?

इस महामारी के कारण इंसान को यह महसूस होना शुरू हो गया है कि वह कुदरत से बढ़कर नहीं है। बल्कि उसके द्वारा की गई संरचनाओं में से एक है। हर व्यक्ति इस महामारी का गवाह बन रहा है। आगे आने वाले समय में कोरोना महामारी के दूरगामी प्रभाव मनुष्य जाति पर पड़ेंगे और साथ ही साथ ये प्रभाव एक राष्ट्र और समाज के रूप में पर्यावरण के बारे में गंभीरता से सोचने पर मजबूर करेंगे। हमें अब यह सोचना ही होगा कि क्या यह महामारी कुदरत का एक संकेत है, “अभी भी वक्त है संभल जाने का?”

कोरोना महामारी के मामले में अखबारों और तमाम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया घरानों की रिपोर्टिंग में केवल कुछ ही जगहों पर पर्यावरण और कोरोना महामारी को जोड़कर देखा गया है, जबकि अधिकतर मीडिया स्रोतों को इस पर सोचने की फुर्सत भी नहीं है। एक समझदार नागरिक और मनुष्य को यह सोचना ही चाहिए कि खबरों में गैप कहाँ-कहाँ हैं और क्या छोड़ा जा रहा है। इस साल मार्च के महीने से सरकार हरकत में आई कोरोना संक्रमण में देश में पहले से चल रहे हलचल के माहौल में दस्तक दी। इससे पहले अमेरिकी राष्ट्रपति का भारत दौरा, दिल्ली में दंगे और सीएएएक्ट के खिलाफ बड़े पैमाने पर जगह-जगह विरोध प्रदर्शनों का दौर जारी था। इस बीच बीती सर्दियों में दिल्ली के प्रदूषण को कोई नहीं भूल सकता जो लोगों की सांस में जहर की तरह घुल

रहा था। इन सब भयावह परिस्थितियों के बाद भी पर्यावरण अभी तक माध्यमिक कक्षाओं में निबंध की शकल में दबा पड़ा हुआ है। सरकारों ने इसे एक पाठ्यक्रम के रूप में तब्दील कर दिया है। विद्यार्थियों ने भी इसे रट्टा लगाकर लगाकर याद कर लिया है। यह अभी तक गंभीर चर्चा का विषय भी नहीं बना है। वर्तमान में जब कई करोड़ लोगों की नौकरियां छूट रही हैं तब वाजिब है कोरोना और अर्थव्यवस्था के बीच पर्यावरण के साथ जुड़ी मानुष हरकत की समस्याओं पर कौन ही सोचे और चर्चा करें। इस वर्ष 23 मार्च को देशव्यापी लॉकडाउन का ऐलान हुआ और तमाम जन गतिविधियां एक झटके में ही आज की स्थिति में आ गई। राजधानी दिल्ली की हवा बीते कई सालों से जहर में तब्दील हो चुकी थी। 305 की स्थिति के चलते हवा और वातावरण बिल्कुल साफ हो गए। वातावरण में शाम में पारदर्शिता को लोगों ने महसूस किया। काला आसमान नीला दिखाई देने लगा छोटे बच्चों को बादलों की अठखेलियों में तरह-तरह की शकलें दिखाई दीं। घरों में कैद लोगों को गहराई से यह आभास हुआ कि प्रकृति बहुत अद्भुत और सुख में है।

लॉकडाउन के अंतराल में पर्यावरण की स्थिति में बेहद अच्छे बदलाव देखे गए। इसी वजह से पर्यावरणीय चर्चाओं और चिंताओं की समाज के हर वर्ग तक लहर पहुंची। यह सच है कि कोरोना महामारी हमसे बहुत कुछ छीन रही है। पर इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि इसमें कहीं भीतर जाकर यह समझने की स्थिति और स्पेस बनाया है कि मनुष्य को प्रकृति पर विजय के बजाय उसके संग अपने अस्तित्व को देखना चाहिए। प्रकृति इस्तेमाल कर फेंकने से नहीं जुड़ी है। दिवाली जैसे त्यौहार पर बम-पटाखे फोड़े जाने की प्रवृत्ति लोगों में कितने सालों से चल रही है। एक बहस दिल्ली की सड़कों पर चलने वाले वाहनों को लेकर भी है। इसके बारे में कहा जाता है कि वायु और ध्वनि प्रदूषण का मुख्य स्रोत यह वाहन ही है। कोरोना महामारी के चलते किए गए लॉकडाउन के कारण यह रहस्य अब पुष्ट चुका है कि भारी संख्या में सड़कों पर दौड़ती, इंसानी जगत द्वारा इजाद की गई मशीनें प्राणवायु को नष्ट कर रहे हैं। जैसे ही सड़कों पर दौड़ती गाड़ियों के पहियों पर लगाम लगी वैसे ही हवा साफ होना शुरू हुई और ध्वनि प्रदूषण में गिरावट आई। आसमान का रंग जो आसमानी था वह भुलाया जा चुका था। अब हर आंख और जेहन में वह आसमानी रंग उभरा जो आसमान की सच्चाई है। इसके साथ ही एयर क्वालिटी इंडेक्स में भारी बदलाव दर्ज किया जा रहा है। पार्टिकुलेट मैटर जैसे कण जो दिखाई नहीं देते परंतु उनमें धूल और धातु के महीन कण शामिल होते हैं।

सांसों में घुसकर हमारी जिंदगी की उम्र घटा देते हैं। लॉकडाउन में पार्टिकुलेट मैटर में भारी गिरावट दर्ज की गई। 13 अप्रैल 2019 को बिजनेस स्टैंडर्ड अखबार में छपी खबर के अनुसार साल 2019 में एक मिलियन से भी अधिक लोगों की मृत्यु वायु प्रदूषण के कारण हुई। किसी खबर में एक बात यह भी कही गई है कि वायु प्रदूषण साइलेंट किलर होता है और यूनाइटेड नेशन विशेषज्ञों के अनुसार हर वर्ष 4 मिलियन लोगों की जान ले लेता है। बीबीसी समाचार वेबसाइट ने किसी संख्या को अपने एक लेख में 4 मिलियन बताया है। इसके अलावा इंटरनेट पर मौजूद अन्य प्रकार की दिल दहला देने वाली जानकारी मौजूद है। जिसे पढ़कर पता चलता है कि प्रकृति का संतुलन किस हद तक इंसानों ने अपनी गतिविधियों से बिगाड़ दिया है लेकिन क्या बात यहीं खत्म होती है। जवाब है; नहीं। पर्यावरण की खेती का विवरण हमारी आधुनिक जीवन शैली में छिपा हुआ है। विकास शब्द के इर्द-गिर्द दौड़ती जीवन-शैली और विलासी समाज की सनक ने मनुष्य जगत को तो मौत के करीब पहुंचाया ही है साथ ही संपूर्ण प्रकृति के जीव-जंतुओं और वनस्पति संसार को भी भयानक हानि पहुंचाई है।

इसका उदाहरण बाढ़ की घटनाओं में बढ़ोतरी, भूकंप, बादल फटने की घटनाएं, जंगलों में लगने वाली आग, ग्लेशियरों का पिघलना, पृथ्वी के तापमान में वृद्धि जैसे कारकों में देखा और अनुभव किया जा सकता है।

खबरों के मुताबिक कोरोना वायरस संक्रमण का पहले केस पिछले साल नवंबर में ही आ गया था पहला केस चीन में हुआ था इसके बाद चर्चाओं और अफवाहों का जो दौर शुरू हुआ वह अभी तक खत्म नहीं हुआ है। न्यूज-18 की वेबसाइट पर 9 मार्च तारीख में लिखे लेख में चीनी शहर वुहान में कोविड-19 के पहले केस की बात लिखी गई है। यह बात लेजेंट जर्नल में छपी एक रिपोर्ट के हवाले से लिखी गई है। लेकिन कुछ विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि कोरोना संक्रमण नवंबर में ही फैलना शुरू हो गया था। इस वायरस का स्रोत क्या है और यह कैसे इंसानों तक पहुंचा? इसे लेकर भी कई तरह की बातें सामने आ रही हैं। सोशल मीडिया पर वहां शहर के जानवरों के बाजारों की तस्वीरों को यह कह कर जमकर साझा किया गया कि इसी बाजार से वायरस इंसान तक पहुंचा और दुनिया को अपनी चपेट में लेना शुरू कर दिया। सोशल मीडिया में साझा की जाने वाली हर तस्वीर का सत्यापन करना मुश्किल है। महामारी में अफवाहों का बाजार गर्म रहा है। इसके अलावा लोगों पर नस्लीय हमले भी हुए। कुल मिलाकर आम समझ में यह बात तय है कि यह महामारी प्रकृति की उस सीमा को रंगने का नतीजा है जो संतुलन बनाए रखता है। मौजूद संतुलन को इंसानी गतिविधियों ने हानि पहुंचाई है। इंसान की शक्तिशाली बनने की संगत में अवश्य ही कुदरत के कुछ अटल नियम तोड़े हैं।

इस बात पर लगभग सभी का एक मत है कि कोरोना वायरस चीन से ही निकला है। चर्चाओं के गुब्बारे में बहुत सारी बातें गैस बन कर यहां वहां घूम रही हैं। एक कहानी यह है कि वुरान में स्थित वायरोलॉजी केंद्र से यह वायरस किसी प्रयोग के दौरान निकला और तबाही ले आया। दूसरी थ्योरी यह कही जा रही है कि यह वायरस किसी तरह वुहान के जानवरों के मांस के बाजार से इंसानों में आया जिससे लोग संक्रमित होना शुरू हो गए। इसके अलावा इस वायरस की कहानी में सियासत की अदाओं पर और कई अमीर व्यक्तियों के नाम भी शामिल हैं लेकिन इन सभी बातों का दूसरा पहलू पर्यावरण से ही जुड़ा हुआ है अगर यह वायरस लैब में बनाया जा रहा था, तब इसके पीछे मंशा क्या थी ? आखिर इसके बनने के खतरे को जानते हुए भी जोखिम क्यों उठाया गया? किन वजहों से ऐसा हुआ ? कुछ अमीर व्यक्तियों द्वारा टीका बनाकर करोड़ों रुपए की कहानियां भी सोशल मीडिया पर पढ़ने को मिली।

इन प्रयुक्त बातों से अलग कोरोना संक्रमण महामारी के बीच प्रकृति से जुड़ी हुईं जिन बातों को हर व्यक्ति ने अनुभव किया वही हमारी इंसानी जाति के लिए एक बहुत बड़ा सबक है। हम सब अब अपने अनुभवों से यह कह सकते हैं कि नीला आसमान देखने में कितना अच्छा लगता है। दिल्ली के लोगों ने साफ यमुना नदी को देखा जो कई वर्षों से करोड़ों रुपयों के प्रोजेक्ट के चलते भी साफ नहीं हो पा रही थी। कुछ शहरों से तो पहाड़ों की चोटियों की साफ दिखने की तस्वीरें भी इंटरनेट पर वायरल हुईं। विजिबिलिटी के चलते नजरों ने स्पष्ट देखना जाना। जब लोग अपने-अपने घरों में कैद थे तब सड़कों पर जंगली जानवरों को घूमते देखा गया। कुछ जानवरों के बारे में कहा गया कि वह लुप्त प्राणी की श्रेणी में है। घरों के आंगन-आंगन और छतों पर गौरैया को भी देखने का मौका मिला, जो गुमशुदा थी। ओडिशा में मिले पीले कछुए की तस्वीरें कई दिनों तक सोशल मीडिया में साझा की जाती रही, जिसके बारे में बताया गया कि यह दुर्लभ प्रजाति से है।

कोरोना महामारी के बीच बुरी घटनाओं ने झकझोरा है। देश के पूर्वी हिस्से में विशेष रूप से पश्चिम बंगाल के तूफान ने भी सरकार और जनता को पर्यावरण के मुद्दों को गंभीरता से लेने के लिए मजबूर किया। उम्मीद से भी तेज हवाओं ने लोगों के घरों को एक झटके में उड़ा दिया। साथ ही शीशे के घरों में रहने वाले रईस लोगों को इशारा दिया कि पर्यावरण में होने वाले बदलावों से अमीर या गरीब कोई भी नहीं बच सकता। सब पर बदलती जलवायु के मिजाज का असर होगा। हो सकता है असर की मात्रा कम या ज्यादा हो पर कोई भी कुदरत के बदलते मिजाज से बच नहीं सकेगा। इसी साल असम और बिहार में आई बाढ़ को भले ही समाचार पत्रों और चैनलों में जगह नहीं दी गई पर उसका मतलब यह नहीं है कि इस पर लोगों को ध्यान नहीं गया। लाखों लोग कोरोना महामारी में आई इस आपदा के कारण बुरी तरह प्रभावित हुए बीबीसी की वेबसाइट पर छपी 26 मई की रिपोर्ट के अनुसार तूफान का विश्व धरोहर सुंदरवन में जैव विविधता पर असर पड़ा और मैंग्रोव के जंगलों को भी भारी नुकसान हुआ इलाके में अब पलायन की दर से बढ़ने की आशंका भी जताई गई। जून माह में भारतीय तट सीमा पर 'निसर्ग' तूफान ने दस्तक दी जिसके चलते भारी अव्यवस्था देखने में आए और तूफान का असर रायगढ़ में भी देखने को मिला जिसमें धरती की गोद में सोए पेड़ों की मजबूत जड़ें भी उखड़ गईं।

हमारी पर्यावरण संबंधी समझ का दायरा सिमटा हुआ है। सक्रिय गतिविधि से दूर जनता सोशल मीडिया में उन बेवजह की चर्चाओं में लिप्त हैं, जो महत्व नहीं रखतीं। चालाक व्यवसायी और सरकारें इस असक्रियता का भरपूर फायदा उठा रही हैं। जिन विरोध प्रदर्शनों में जनता पर्यावरण के समर्थन में आई वहाँ बेहतर परिणाम मिले हैं। लेकिन इतना काफी नहीं है। कोरोना वायरस ने यह तो समझा ही दिया है कि कुदरत के बगैर इंसान का अस्तित्व न के बराबर है। कुदरत वह नहीं है जो चोट लगने पर मानहानि का मुकद्दमा दायर करती है, बल्कि वह जब गुस्सा होती है तब अपना बहुत कुछ छीन लेती है। हमें अपनी प्रकृति संबंधी समझ-संग-सहयोग को विद्यालय में निबंध लिखने से आगे बढ़ाना होगा। कड़वी ही सही पर सच्चाई यह है कि हम मानसिक रूप से बेकार समझ से संक्रमित समाज बन गए थे। कोरोना महामारी ने केवल हमारे शरीर को संक्रमित किया है और बताने का प्रयास किया है कि एक बेहतर दुनिया संभव है, बशर्ते इंसान अपनी गतिविधि और भूमिका में बदलाव करें।

लेख

कोरोना और पर्यावरण चिंतन

पंकज चौहान

पृथ्वी सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है किंतु लोगों के लोभ व लालच को पूरा करने के लिए नहीं।

-महात्मा गाँधी

मनुष्य बुद्धि, विवेक व जैविक आचार पर सबसे विकसित प्राणी है जिसने सृष्टि के आरंभ से वर्तमान तक इस पृथ्वी पर अपनी सत्ता को सभी प्राणियों में सर्वोच्च साबित किया है तथा पर्यावरण व परितंत्र का एक महत्वपूर्ण अंग है किंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ भौतिकतावाद ही विकास का पर्याय बनता गया है। लोभ से प्रेरित मानव ने प्रकृति के विरुद्ध और विवेक पूर्ण कार्य करने शुरू किए और इसी का परिणाम है कि आज समूचा विश्व 21 वीं सदी के सबसे भयानक प्रकोप कोविड-19 महामारी के समक्ष संघर्षरत है जिसने लाखों लोगों के जीवन को लील लिया है।

यह उल्लेखनीय है कि कोरोना महामारी का उद्गम केंद्र चीन के वुहान में स्थित चमगादड़ एवं सांपों के मांस की मंडी है। यह एक संक्रामक बीमारी है जो छूने से फैलती है। वैक्सीन के अभाव में संक्रमण को रोकने के लिए विश्व के विभिन्न देशों में लॉक डाउन का सहारा लिया गया। जिसके कारण पर्यावरणीय परिस्थितियों में काफी सुधार देखा गया। पहले लॉकडाउन के दौरान विभिन्न डाकखाने इंडस्ट्रीज मोटर वाहनों संयंत्रों इत्यादि के बंद होने के कारण वायु गुणवत्ता सूचकांक में काफी सुधार देखने को मिला। जिन स्थानों पर यह सूचकांक बेहद खतरनाक स्थिति को दर्शाता था। वहीं लॉकडाउन के दौरान इसमें सामान्य स्थिति दर्ज की गई। दूसरा, विभिन्न औद्योगिक इकाइयों व रासायनिक संयंत्रों के बंद होने के कारण नदियों में मिलने वाले प्रदूषण में कमी आई जिससे गंगा व यमुना जैसी नदियों के जल में 50% सुधार देखने को मिला जो कि वर्षों से चली आ रही विभिन्न नदी सफाई योजनाओं में करोड़ों की धनराशि खर्च करने के बावजूद परिणत नहीं हुआ। तीसरा, इस दौरान ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आई। यह ध्यातव्य है कि यह कैसे पार्थिव विकिरण उचित रंगों के अवशोषण से पृथ्वी के तापमान को बढ़ाती है। इसलिए ग्लेशियर के पिघलने की दर में कमी आई। चौथा, खनन की मात्रा में कमी, प्राकृतिक संसाधनों जैसे कोयला, पेट्रोलियम आदि के खनन में कमी आने से पर्यावरण पर अनुकूल प्रभाव पड़े हैं।

वहीं दूसरी ओर पर्यावरण के अभिन्न अंग मनुष्य पर महामारी के नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं अफ्रीका के कुछ देश जो पहले से ही अकाल व खाद्यान्न की कमी के से जूझ रहे थे, वहां के लोगों की स्थिति दयनीय हो गई। समूचे वैश्विक समुदाय के समक्ष एक आर्थिक संकट पैदा हो गया। कई देशों की जीडीपी शून्य से नीचे दर्ज की गई। मानव संसाधन का हास हुआ। महिलाओं, बच्चों के विरुद्ध अत्याचारों में वृद्धि हुई लाखों लोगों के समक्ष आजीविका का संकट पैदा हो गया गरीबी तथा भुखमरी का संकट संपूर्ण वैश्विक समुदाय पर गहरा गया है। इस महामारी से गरीब व मध्यम वर्ग को अधिक प्रभावित किया है जिससे अमीर व गरीब में अंतर की खाई और गहरी हो गई है।

इन सबके अतिरिक्त ठोस अपशिष्ट व कचरे के निस्तारण की समस्या भी गहरा गई जिसने पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया। संक्रमण से बचाव के लिए सामाजिक दूरी बनाए रखने के कारण बहुत से लोगों को मानसिक रूप से व्याधि के शिकार हुए हैं। दुनिया चारदीवारी के भीतर सिमट कर रह गई। यह भी ध्यातव्य है कि इस महामारी के दौरान पर्यावरण पर पड़े सभी प्रभाव का आखिरी दिनों की तरह है। लॉक डाउन के रहते ही पूर्ण काल की स्थिति का पुनः आना इस बात को इंगित करता है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए प्रभावी नीतियां एवं उनका प्रभावी कार्यान्वयन आवश्यक है। पर्यावरण को बचाने के लिए समस्त वैश्विक समुदाय को

एकजुट होकर प्रयास करने होंगे। महामारी जनित परिस्थितियां मनुष्य को इस बात के लिए भी आगाह करती हैं कि यह प्रकृति विशाल एवं अथाह सागर की तरह है और विज्ञान ने इसके तट को भी ठीक ढंग से नहीं समझा है। इसीलिए मनुष्य को विज्ञान एवं तकनीकी द्वारा अभिप्रेरित भौतिकतावाद की बजाय प्रकृति के संरक्षण व पर्यावरण तथा पारितंत्र के संतुलन को बनाए रखने को अधिक वरिष्ठता देनी चाहिए।

प्रकृति का संकट मानव सभ्यता पर संकट है। पर्यावरण के लिए वैश्विक स्तर पर विभिन्न सम्मेलन होते आए हैं किंतु वे सभी सिर्फ कागजों तक सीमित रह जाते हैं और अब तक कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आए हैं। कोरोना सहित मानव इतिहास में हुई अन्य महामारी आधुनिक मनुष्य के लिए चेतावनी है, (विज्ञान और तकनीकी कोविड-19 विषाणु के सम्मुख संघर्षरत है) कि पर्यावरण को अनदेखा कर तकनीकी के सहारे भौतिक उन्नति कर लेना विकास ना होकर मनुष्य के लिए एक त्रासदी साबित हो सकता है-"हमने यह ग्रह अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार से प्राप्त नहीं किया है बल्कि अपनी भावी पीढ़ियों से उधार लिया है"



लेख

पारंपरिक जीवनशैली एवं कोरोना महामारी

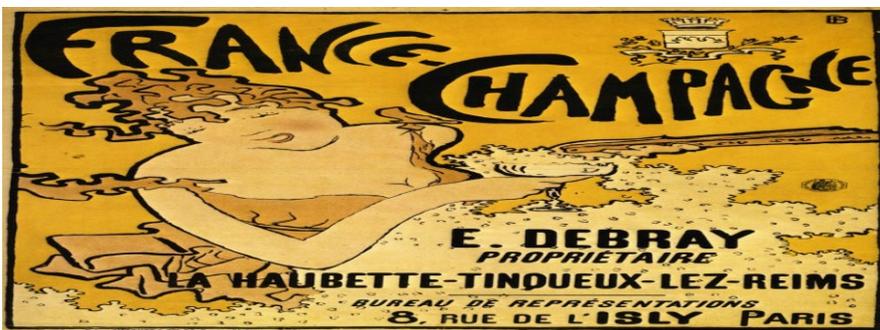
इशिता सक्सैना

पीएचडी स्कॉलर, फ्रेंच एवं फ्रेंकाफोन अध्ययन केंद्र,

जेएनयू

कोविड-19 के चलते जो विश्व और जीवन में बदलाव आए हैं, उनसे जूझने के लिए एक ऐसे मनोबल की आवश्यकता है जो आधुनिक दिनचर्या से लापता हो चुका है। चूँकि हम सब जीवन की होड़ में भौतिक वस्तुओं को पाने के लिए, समय को तीव्रता से गँवाते रहे हैं। आज जब हमें रुकने और थमने का समय मिला, तो मन में आशंकाएं पैदा हुईं। आमतौर पर जीवन की भागदौड़ में हम स्वयं को भुला देते हैं। लेकिन इस महामारी के समय में जब हम सब घर के अंदर बंद हैं तथा हमारे लिए विश्व के दूसरे कोने में पहुँचना तो दूर लेकिन घर के बाहर निकलना भी बंद है, तो हमें एक और अंदरूनी पहलू का सामना करना पड़ा: जो कि हमारी अंतरात्मा है। यह हमारे लिए एक आंतरिक संघर्ष बन चुका है।

इस अंदरूनी पहलू को फ्रांसीसी कलाकार पीएरबोनार (1847-1947) ने सहनशीलतापूर्वक समझाए व अपनी कला की भाँति दर्शाया। बोनार का जन्म पेरिस के उप-नगर फोंतनेओरोज़ में हुआ था। उन्नीसवीं सदी में जब तकनीकी व वैज्ञानिक विकास के साथ औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण जब सारा विश्व गरीबी, बेरोज़गारी, लघु व हस्त उद्योगों के पतन जैसी कठिनाइयों से गुज़र रहा था, तब बहुत से कलाकार इन बदलावों के चित्रण में लगे हुए थे। उनमें बोनार भी शुमार थे जिनका लिथोग्राफ़ विज्ञापन *फ्रांसशैम्पेन* (1891) कला-कृति प्रतियोगिता में प्रथम स्थान लाया था।



फ्रांसशैम्पेन (१८९१)

उनकी योग्यता का प्रमाण उनकी रचनाएं हैं जिनमें उन्होंने कुशलतापूर्वक अपनी कल्पना को व्यक्त किया और इस कल्पना में उनके आंतरिक अनुभव और संवेदनशीलता का बहुत बड़ा हाथ था। लेकिन उनकी कलाकारी की

परिपक्वता की प्रस्तुति उनके जीवन के दूसरे अंश के चित्रों से होती है जब वे दक्षिणी फ्रांस के एक छोटे से घर में बस गए थे। शहर से दूर बोनार ने इस एकांत को घरेलू सुख वशांत ग्राम क्षेत्रों का रूप दिया। बोनार के आत्मीय चित्र न सिर्फ शांतिमय हैं, वे एक चेतावनी उजागर करते हैं। उनके किरदार अपनी जगह तृप्तबेश कहें लेकिन उनका ठहराव उन्हें एक जगह रोके हुए है। समय उनके लिए जैसे थम गया है। इस निष्क्रियता से बाहर निकलना यानी अपनी अंदरूनी नकारात्मकता का सामना करना जोकि आजकल का समय हमें बाहरी अक्रम से दूर कर, स्वयं में आत्मसंतोष ढूंढने के लिए प्रेरित करता है।

लेख

मानव वेदना की अभिव्यक्ति में कलाकार

विनय पटेल

फिर वो गुदगुदी सी आ जाती है जब वो धीरे से जीवन के हर पहलु में आती है। मन मचल उठता है, लहलहा उठता है, जब एक मद्धम सी भीनी-भीनी खुशबू मन के आंगन में हल्की सी महक उठती है। तब मन रीझ जाता है, खीझ जाता है, हल्की सी बौछार की तरह। मन समझ नहीं पाता कितना चंचल है, बांवरा है, फिर से उसी में उलझ जाता है और चतुराई से मुस्कराकर निकल भी जाता है। इस मन से मानव कितना उत्साहित है पर, स्वार्थी भी है। जो सुलझता है उसे सुलझाता है और जो नहीं सुलझता उसे मन की वेदना की नौका पर विहार करा देता है। कैसा है ये मन और मानव वेदना की चुनौती?

वेदना मानव हृदय में कोपल कली के समान छुपकर एक कोने में बैठा है कहीं, मानो अपने आने की तारीख देख रहा हो। चुपके से यादों की चादर ताने हुए है जैसे कार्तिक की पूर्णिमा को अहिस्ता से निहारना चाहता है। क्या रंग है, क्या रूप है, क्या उमंग है, क्या तरंग है, कैसा ये सारंग है। एक पल को कौंधता है रुक जाता है, क्या हर्ष है, क्या संघर्ष है, इस मानव वेदना की क्या चुनौती है समझ नहीं पाता है।

मनरूपी आत्मा का एक कवच है, जिसका आवरण सख्त है पत्थर की तरह, जो मजबूत है पहाड़ की तरह, कोमल है फूल की तरह, तरल है मोम की तरह, नाजुक है शिशु की तरह, वो क्या है, कैसा है, क्यों है, कहाँ है, जेहन में एक सवाल की तरह। आज कैसा ये संसार है, कैसा ये इजहार है किसलिए ये गुलजार है। जो दिखता तो समुन्दर की तरह है पर है एक अंधकार की तरह। जो दिखता तो शहद की तरह है पर जायका है नमक की तरह जिसे न दिखाया जा सके, न बतलाया जा सके, कैसी है ये मानव की वेदना।

वेदना क्या है इसके फायदे क्या है ? वेदना, वो अनकहा एहसास है जिसे महसूस तो किया जा सकता है, किन्तु अल्फाज नहीं है। जैसे कबीर ने कहा है “पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ पंडित भया न कोई, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय” अर्थात जिस तरह से लोग बहुत पढ़े लिखे होते हुए भी प्रेम के शब्द के सार के

वास्तविक अर्थ को समझ नहीं पाते वैसे ही ये वेदना है जिसको वे समझ नहीं पाते कि मानव वेदना क्या है इसकी वास्तविक चुनौती क्या है ?

आज मानव की वेदना का अर्थ बदल गया है। वह इतना स्वार्थी हो चुका है कि अपने स्वार्थ के आगे उस वेदना के एहसास के महत्व को ही बदल डाला है जैसे- आज की वेदना को मानव सत्ता के लालची 'काक चेष्टा वको ध्यानम' की तरह हो गयी है। जिन्होंने मानवीय व्यावहारिकता को अपने रसास्वादन के लिए वेदना का परिहास कर दिया है। वह वेदना जो कभी समाजसेवा के रूप में, कभी दया के रूप में और कभी विकास के रूप में लोगों के समक्ष प्रस्तुत हुई। आज वही वेदना अपनी ही आगोश में सिमट कर रह गयी है। जैसे कभी द्रोपदी भरी सभा में हुई थी ।

आज वेदना का भी चीर हरण हो रहा है। इस समाज रूपी सभा में, आज उपहास बन कर रह गयी है। आज मानव वेदना की चुनौती ऐसी हो गयी है, मानो पानी की खोज में प्यासा मृग भटक रहा हो, पानी की खोज में टकटकी लगाये हुए। वेदना छटपटा कर रह गयी है, बेबस सी नजर आती है पर वेबस है नहीं क्यों, क्योंकि यही तो वेदना की कारीगरी है। जो एक चुनौती बनकर आगयी है और कहती है कौन सा रूप दोगे मुझे किस रंग में रंगोगे मुझे। मैं आजाद परिंदा हूँ, मानव तुम्हारे हृदय को वेध कर मुस्कुराकर निकल जाउंगी। तू भटकता रहेगा मुझे खोजने की तलाश में, लेकिन मैं तेरे हृदयरूपी फूल में भौरा बनकर बैठी रहूंगी पर तू महसूस न कर सकेगा ।

पहले वेदना का एक रूप था जो संवेदना थी, दया, करुणा, एहसास, हर्ष, परिहास, पर आज 'सम' तो छत-विछत हो गया, बस वेदना ही रह गयी। पहले संवेदना, संवेदनशील थी अब न सम रहा, न ही शील रहा, बस वेदना ही रह गयी। मानव ने वेदना का अर्थ बदल दिया है, हो सकता भविष्य में ये वेदना और भी बदल जाए जिसमें सिर्फ दाना (एक अंश या टुकड़ा) ही रह जाए। मानव ने वेदना को वेध दिया है। कभी सेवा के नाम पर, कभी धर्म, कभी जाति कभी मजहब के लिए। वेदना का ये अलग स्वरूप था जो मानव ने उसे दे दिया। पर वेदना तो गगन जल जैसी पवित्र है जिसमें कोई मिलावट नहीं। फिर से आ गयी वेदना नये पोशाक में मानव के सामने एक नये रूप में जिसे देख वह घबरा गया ।

मानव ही सवाल करता है वेदना से, कौन हो तुम, क्यों हो तुम, आज का मानव भयभीत है फिरभी आत्मगुमान है। लगता है अभी नई-नई शुरुआत है। वेदना मानव से कहती है, मानव के हाथ हैं, पैर हैं, फिर भी लाचार हैं, मेरे पास तो कुछ भी नहीं फिर भी मैं मानव पर सवार हूँ। मानव तेरे नए रूप को देख घबराई नहीं मैं पर तू मेरा नया रूप देख क्यूं चिंतित हो गया। तू भी वही, मैं भी वही फिर देख मुझे क्यों तू मुरझा गया। कल मैं संवेदनशील थी आज मानव ने मुझे ठुकरा दिया आज मैं परिवर्तनशील हूँ, मुझे देख क्यों शर्मा गया। मेरा रंग भी वही रूप भी वही फिर भी मुझे देख मानव तू क्यों घबरा गया ।

आलम अभी नया-नया है सुरूर भी खुमार पर है। बदला मौसम भी है, बदला तेवर भी है और बदला ख्याल भी है। आया हुआ ये जो नया-नया संसार है। आज के परिवेश में मानव कई सवालों के संशय में है, जो शंकास्पद

की स्थिति उत्पन्न करता है। मानव की वेदना ने मानव को इतना रहस्यात्मक बना दिया है कि आज उसके विचारों की झलकियाँ किस धरातल पर कौन सा मंजर उपस्थित कर दे उसे स्वयं भी नहीं पता। वह आशामय वेदना की चाह में अपने जीवन के उस पूर्ण समय को खोता जा रहा है जिसका उसने कभी विचार ही नहीं किया।

मानव वेदना आज कई अवस्थाओं में ढल चुकी है। पहले वेदना मानव की संवेदनशीलता में गिरफ्त थी आज भी है, लेकिन स्वभाव में अंतर हो गया है। आज मानव वेदना मूल राह से भटक गयी है। अब वेदना की गिरफ्त में मानव आ गया है। जैसे- 'माटी कहे कुम्हार से तू क्या रौंदे मोय, एक दिन ऐसा आयेगा मैं रौंदूंगी तोय' कहने का तात्पर्य यह है वातावरण बदल गया है। जिस प्रकार से आज मानव जितना जागरूक हुआ वेदना के प्रति, वह उतना ही आलसी भी हो गया है वेदना के प्रति। अपनी इस अलसता के कारण वो उन विचारों को भी अपने से दूर रखता है जो उसके व समस्त कुटुंब के लिए लाभदायक है। आज का मानव उस विचारधारा से भागने की कोशिश करता है जो वास्तविकता से परिचय कराती है। जैसे- आज हमारी जो शिक्षा पद्धति है वो शून्य के समान हो गयी है। आज तार्किक विचारों को, तार्किक वार्तालाप, को इस तरह से समाज में दृश्यात्मक तरीके से लोगों द्वारा कथात्मक रूप में पेश किया जा रहा है कि मानो सत्य और झूठ में भेद ही अभेद हो।

ऐसी मानवीय सोच का समाज में, लोगों में, संस्कृति में और संस्कृति से जुड़े धरोहरों की वेदना में कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। ये मानव की वेदना इतनी अपरिहार्य क्यों हो गयी है। क्या वेदना के मायने में मूलभूत तत्वों की कमी हो गयी है या मिलावट हो गयी है। इसे समझना जरूरी क्यों हो गया है। अब हम वेदना का एक और संस्कारित रूप देख सकते हैं समाज में, वो ये है कि वेदना में वेद का अर्थ पुराणों में ज्ञान होता है। लेकिन आज के परिप्रेक्ष में वेदना का अर्थ इस प्रकार से देखा जा सकता है "वेद+ना" वेद का अर्थ ज्ञान और ना का अर्थ है नहीं" अर्थात् वेदना का ज्ञान नहीं होना। ज्यादातर व्यक्ति वेदना का अर्थ पीड़ा, दर्द, दुःख तकलीफ आदि से जोड़ता है। वे अपने चित्त से कभी सोचने का प्रयोजन ही नहीं करते कि इसका कोई और भी कारण या प्रकार हो सकता है।

वेदना का महत्व और उसकी गंभीरता से परिचित होना ही मानव वेदना की सबसे बड़ी चुनौती है। मानव और वेदना के मध्यांतर परस्पर संबंधों को समझने के लिए आवश्यक है उनमें निहित भाव को गहराई से समझना। भाव वेदना की आशातीत वह भावना है जो दोनों के संबंधों को एक नई दिशा प्रदान करता है। आशय तथा अर्थ अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण- "पानी बिन मछली तड़पे, पिया बिन मृगनयनी" ठीक उसी प्रकार भाव बिना वेदना। अतः मानव और वेदना में, मानव जिस भाव से अपनी संस्तुति करते हुए परमार्थ के लिए जूझता हुआ निकलता है वो कसक है। कसक और भाव के मध्य को बेधता हुआ जो आगे अग्रसर होता है वही मानव वेदना की चुनौती है।

वेदना का सफर अत्यंत ही मनोरम है। कभी वेदना अध्यात्म में होती है कभी निराकार में होती है। जब साधु या संत अध्यात्म में लीन होते हैं तो कई कारनामे भी करते हैं। जिसमें वेदना भी अपनी अहम भूमिका निभाती

है। वेदना को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाले हमारे साधु संन्यासी भी बहुत कारगर साबित हुए हैं। जैसे-तुलसीदास की पत्नी ने जब तुलसी को आधीरात में अपने मायके में देखा तो बहुत प्रसन्न हुई औरप्यार से उनकी उपासना की जिससे तुलसी का मन उन बातों से बेध उठा और उन्होंने संन्यास लेलिया। तुकाराम की पत्नी ने गन्ने के एक डंठल से उनका स्वागत किया तो उन्होंने भी संन्यास ले लिया। आज ऐसी ही विभूतियां महान व्यक्तित्व की पहचान बनी हुई हैं। यदि थोड़ा बुद्धिमत्ता से विचार किया जाए तो ये मानवीय वेदना से ही तो है कि आज भी ये व्यक्ति महानता की श्रेणी पारकर फर्श से अर्श तक पहुँच चुके हैं ।

इसी तरह से और भी कई विभूतियां हुईं जिनका वेदना से साक्षात्कार हुआ है। इसी वेदना का एक और विस्मय रूप देखे तो, इसी वेदना से मीरा को विष का प्याला पीना पड़ा, सुकरात को भी विष का प्याला पीना पड़ा। ईसा को सूली पर चढ़ना पड़ा। माइकल एंजेलों ने मरियम की वेदना को पियेता (मूर्ति) के रूप में व्यक्तकर दिखाया। जो कहीं न कहीं कलाकार की भी वेदना का परिचायक है। चित्र (1)। इसी तरह पीटर पाल रूबेंस का एक ऐतिहासिक दृश्य पेंटिंग है जिसमें एक स्त्री एक वृद्ध पुरुष को अपना स्तनपान करा रही है। जो एक गंभीर वेदना का संकेतक है। ये स्त्रीवृद्ध-पुरुष की पत्नी नहीं बल्कि उसकी बेटा है और अपने वृद्ध पिता को नया जीवन दे रही है। (चित्र 2) कहने का प्रयोजन यह है कि “वेदना” शब्द एक है पर समय, स्थान, वातावरण और भूमिका के स्थान पर विभिन्न आकारों में प्रदर्शित हो सकती है। कभी कला के रूप में कभी कलह के रूप में और कभी अर्थ के रूप में।

अंततः कहा जा सकता है कि वेदना की यह कुशलता हमेशा से ही रही है कि इसे जिस भी रूप में, रंग में, आकार-प्रकार में जैसा भी ढाला जाए वह कभी भी अपने भाव से विचलित नहीं होती औरन ही अशंकित होती है, बल्कि उसे जिस रूप में व्यक्त किया जाता है वह उसी तरह का भाव लिए हुए प्रकट होती रही है। वेदना कला की, अध्यात्म की, साहित्य की, कलाकार की और मानव की भी चुनौती रही है। वेदना मानव को मानवीय गुणों से परिपूर्ण बनाती है। वेदना जीवन का एक मधुर सार तत्व है ।

आज वेदना ने मानव को आत्मपरिचय से रूबरू कराया है। वेदना ने ही मानव को आकर्षित किया है बारम्बार, जिससे मंत्रमुग्ध होकर मानवने उसे आत्मसात किया। कभी प्यार की तरह दुलार करके, कभी सखा या सहेली की तरह, कभी क्रुद्ध और ममता की तरह, कभी आकार में निराकार की तरह तो कभी चुनौती की तरह स्वीकार किया है। वेदना का यह ओझल सा सिलसिला चलता रहा है। यह कभी न खत्म होने वाला एक अनोखा, सुखमय सफ़र की ओर क्षण-प्रति-क्षण अग्रसर होता ही रहेगा। फिर किसी नये आगाज व फलसफा के साथमानव वेदना की चुनौती के रूप में।

1. कलाकार पीटर पॉल रूबेंस: 1577-1640, (माध्यम तेल, सन 1612)

2. कलाकारमाइकलएंजेलो1498-1499, (माध्यम संगमरमर- पियेता मूर्ति)

लेख

आत्मनिर्भर भारत और महात्मागाँधी

चित्रा राजौरा

पीएचडी स्कॉलर,

रूस और मध्य- एशिया अध्ययन केंद्र, जेएनयू

एक विकासशील समाज का लक्षण है कि वह निरंतर अपने आप को बदलता रहता है। अपनी परम्परा को पुनर्व्याख्यायित करता है और नवीन विचारों को अपने पैमाने पर कस कर स्वीकरता है। भारतीय समाज ने निरंतर इस प्रक्रिया को स्वीकार किया है। वह एक ओर अपने परम्परागत मूल्यों को आधुनिक सन्दर्भों में पुनर्व्याख्यायित करता रहा है तो दूसरी ओर वह आधुनिक विमर्शों को भी स्वीकार करता रहा है। महात्मा गाँधी ने अपनी दृष्टि इसी भारतीय समाज से प्राप्त की थी। गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग में देखने को मिलता है उनके विचारों एवं कार्यों का ही प्रभाव है कि आज भारत के अलावा विश्व के अन्य देशों में भी उनके विचारों का प्रभाव देखने को मिलता है। जिन बुराईयों के निवारण की बात आज सरकार एवं समाज के द्वारा की जाती है, गाँधी जी ने अपने दौर में ही उसकी बात की थी। साधारण से प्रतीत होने वाले रचनात्मक कार्यक्रम समाज की पुनरचना को आधार बने। रचनात्मक कार्यक्रम के जरिए गाँधी जी भारतीयों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक तौर पर नई दिशाओं की ओर उन्मुख करना चाह रहे थे। जिससे वे न केवल ब्रिटिश सत्ता से मुक्त हो सकें अपितु हिंसक आधुनिक सभ्यता के पाश से भी छूट सकें। रचनात्मक कार्यक्रम समाज में बदलाव का एक व्यापक दृष्टिकोण है। अतः यह कहा जाता रहा है कि भारतीय समाज ने आज भी गाँधी के विचारों को प्रासंगिक माना है जिसका उद्धरण देकर विश्व के शक्तिशाली देशों के प्रसिद्ध राजनेताओं द्वारा गाँधी जी की प्रसिद्धि का गुणगान किया जाता रहा है।

अमेरिका, पूर्व-राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कहा की “यदि गाँधी जी नहीं होते तो मैं अमेरिका का राष्ट्रपति नहीं होता।” दूसरा, डा०सर्वपल्ली राधाकृष्ण ने कहा “गाँधी जी प्रेम और सद्भावना के अमर प्रतीक है वह इतिहास में युग-युगों से जुड़े है।” प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 150 वीं वर्षगांठ पर अपने न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रकाशित लेख (2019) “भारत और दुनिया को क्यों है गाँधी की जरूरत?” के अंतर्गत उल्लेख किया कि नेल्सन मंडेला द्वारा गाँधी का उल्लेख “पवित्र योद्धा” के रूप में किया है। और मोदी जी ने लिखा कि “हमारे मार्गदर्शन के लिए गाँधी के रूप में हमारे पास श्रेष्ठ शिक्षक है। टिकाऊ विकास को मजबूत करने के लिए मानवता में विश्वास रखने वालों को एकजुट करने से लेकर आर्थिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए, गाँधी हर समस्या का समाधान देते हैं।” इसी दौरान संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटोनियो गुटेरेश ने कहा की “गाँधी के लिए अहिंसा मात्र एक दर्शन और एक राजनीतिक रणनीति नहीं, बल्कि न्याय और परिवर्तन हासिल करने का

साधन थी। वास्तव में उनके अनेक विचार सतत् विकास के लिए 2030 एजेंडा के पीछे की समग्र सोच के मार्गदर्शक हैं।”

इसमें से गाँधी द्वारा प्रदान की गयी ‘अर्थव्यवस्था की अवधारणा’ मुख्य रूप से आत्मनिर्भरता के विचार के साथ जुड़ी हुई है। वर्तमान भूमंडलीकरण या वैश्विकरण दौड़ को ध्यान में रखते हुए भारतीय प्रधानमंत्री मंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा गाँधी की आर्थिक अवधारणा को पुनःपरिभाषित करने की कोशिश की गयी जोकि ‘आत्म-निर्भर भारत’ की घोषणा से मिलती है। लेकिन दोनों में जमीन-आसमान का अंतर देखने को मिलता है। गाँधी के विचार में, आत्म-निर्भर बनने का अर्थ है कि हम समाज पर बोझ न बने, यानि हमें आत्म-निर्भर होना चाहिए। इस दृष्टि से आत्म-निर्भर एक सेवा है। जिसका अर्थ मशीन का सबसे ज्यादा उपयोग करने की बजाय, इसके कम से कम उपयोग करने में सक्षम होंगे। इसमें समाज की वास्तविक सुरक्षा और आत्म-सुरक्षा सुनिश्चित होगी। वैसे गाँधी प्रौद्योगिकी के खिलाफ नहीं थे, लेकिन वे प्रौद्योगिकी के पक्ष में थे। उनके अनुसार उपयुक्त तकनीक वह है जो मौजूदा संसाधनों का पूरी तरह से उपयोग या संवर्धन करने के अलावा जनता के लिए आसान और उपयोगी हो।

प्रधानमंत्री मोदी द्वारा आत्म-निर्भर की घोषणा वैश्विक आपात-काल (कोविड-19) के दौरान की गयी थी। मोदी जी द्वारा भारत को ‘आत्म-केन्द्रित व्यवस्था’ पर जोर दिया गया था। इसका सामान्य अर्थ यह है कि मोदी जी द्वारा पांच स्तर की चर्चा की गयी यह है। मोदी जी के भाषण के अनुसार, “अर्थव्यवस्था, बुनियादी ढाँचा, प्रौद्योगिकी-संचालित प्रणाली, जीवंत जनसांख्यिकी और मांग और इसमें भूमि, श्रम, तरलता और कानून” शामिल होंगे। लेकिन आत्म-निर्भरता का अर्थ गाँधी जी ने मुख्य रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सामाजिक संयम के बीच संतुलन रखते हुए स्वराज और स्वदेशी के विचारों को दिया जो अहिंसा, सत्य पर आधारित थे। गाँधी जी का आर्थिक विकास निम्न स्तर व ग्रामीण विकास (अर्थव्यवस्था, उद्योग और क्षमता को बढ़ावा) से था। वस्तुतः संसाधनों की एक समान मात्रा व प्रत्येक को उसकी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए पर्याप्तता से है। बाद में उन्होंने इस अवधारणा का उपयोग अन्य आर्थिक विचारों जैसे विकेन्द्रीकरण के आर्थिक ढांचे को विकसित करने के साथ गाँव की आत्मनिर्भरता ने न केवल अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए गाँव को स्वतंत्रता प्रदान की बल्कि प्रत्येक ग्रामीण परिवारों को आत्मनिर्भरता का पाठ सिखाया। जिसका अर्थ यह था कि यह परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकता का उत्पादन करेगा और कभी भी अपनी आर्थिक आवश्यकता के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं होगा। एक अन्य पहलू यह है कि गाँधी जी का आत्मनिर्भर अभियान वर्तमान में भी स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में जाना जाता है। चरखा को इस अभियान को वैधता प्रदान करने के लिए एक हथियार के रूप में देखा गया जिसके माध्यम से गरीब एक पूरक मजदूरी कमा सके या अपने स्वयं के कपड़े पैदा करके पैसा बचा सकते हैं। खादी को प्रोत्साहित करने के लिए खादी बोर्ड द्वारा कताई का आयोजन भी किए जाने से बड़े पैमाने पर उद्योग का विकास किया जा सका। खादी जाहिर तौर पर इस तरह के आर्थिक यूटोपिया की रूपरेखा का मुख्य हिस्सा है। यह न केवल कताई के माध्यम से काम की मज़बूरी है बल्कि उत्पादन का एक विकेन्द्रित तरीका है जो एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की संभावना में योगदान दे रहा है यह अपने आप में एक गुणवत्ता का ढांचा है। यह अर्थव्यवस्था के वैकल्पिक ढांचे को परिभाषित करता है।

गाँधी जी ने कहा “खादी मानसिकता का उद्देश्य अस्तित्व की बुनियादी जरूरतों के उत्पादन और वितरण का विकेंद्रीकरण है।” गाँधी द्वारा इस अभियान को व्यवहारिक रूप देने के लिए सेवाग्राम आश्रम की नींव रखी गयी तथा ग्रामीण स्तर पर भौतिक अवस्थाओं को बढ़ाने के लिए और उन्हें अपने समयानुसार ढालने के लिए वाणिज्यिक उद्यमों की शुरुआत के लिए ए. आई.वी. आई. के प्रायोजन का गठन किया। जिसका उद्देश्य अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ और खादी और पशुपालन की शुरुआतसे माना जाता है। गाँधी ने पूर्व के स्वागत को सेवा की शुद्धता और व्यक्तियों की अवधि में एकत्रीकरण की आवश्यकता के रूप में देखा है। एकमात्र दावा यह है कि खादी ने ग्रामीण भारत में मौजूदा बेरोज़गारी के तत्काल, व्यवहारिक और स्थानीय समाधान का विज्ञापन किया। शुरुआत से, खादी ने सेवाग्राम में शुरू किये गये विभिन्न अभ्यासों की रूपरेखा से बनाई जिसको आज धीरे-धीरे सेवाग्राम और आसपास के गाँव से बड़ी संख्या में लोगों को रोज़गार प्रदान करने के लिए काम किया जा रहा है। निष्कर्षतः गाँधी ने व्यक्तिगत केन्द्रित तरीके से अपने रचनात्मक कार्यक्रम पर विचार दिए जिसमें स्वदेशी, सर्वोदय अपरिग्रह जैसे तीन मूल अवधारणा को शामिल किया। चरखा इस दृष्टिकोण का दावा करने में एक महत्वपूर्ण उद्धरण है।

इस प्रकार, वैश्वीकरण के दौर में भारतीय राजनेताओं द्वारा गाँधी जी के अभियान को अमलीजामा पहनाने की पुरजोर कोशिश की जाती रही है। इस क्षेत्र सूक्ष्म, ग्राम और कयर (माध्यम) उद्योग का विकास मंत्रालय का गठन 2006 अधिनियम के तहत किया गया जिसका मुख्य मंत्रालय और उसके संगठनों द्वारा शुरू की गयी योजनाओं/ कार्यक्रमों को ये सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। (i) वित्तीय संस्थानों/ बैंकों से पर्याप्त मात्रा में ऋण का प्रवाह; (ii) प्रौद्योगिकी उन्नयन और आधुनिकीकरण के लिए सहायता; (iii) एकीकृत अवसंरचनात्मक सुविधाएं; (iv) आधुनिक परीक्षण सुविधाओं और गुणवत्ता प्रमाणन; (v) आधुनिक प्रबंधन कार्यों तक पहुंच; (vi) उपयुक्त प्रशिक्षण सुविधाओं के माध्यम से उद्यमिता विकास और कौशल उन्नयन; (vii) उत्पाद विकास, डिजाइन हस्तक्षेप और पैकेजिंग के लिए सहायता; (viii) कारीगरों और श्रमिकों के कल्याण; (ix) घरेलू और निर्यात बाजारों में बेहतर पहुंच के लिए सहायता और (x) इकाइयों और उनके समूहों की क्षमता-निर्माण और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए क्लस्टर-वार उपाय। इससे सम्बन्धित स्कीम बाजार संवर्धन और विकास स्कीम (एमपीडीए), परंपरागत उद्योगों के पुनर्सृजन के लिए पुनरूद्धारित निधि स्कीम (स्फूर्ति), कयर विकास योजना (सीवीवाई), कयर के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी (एस एण्ड टी), कौशल उन्नयन और महिला कयर योजना (एमसीवाई), निर्यात बाजार संवर्धन (ईएमपी), घरेलू बाजार संवर्धन स्कीम (डीएमपी), व्यापार और उद्योग से संबंधित कार्यात्मक सहायता सेवाएं (टीआईआरएफएसएस), तथा कल्याण उपाय (प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (पीएमएसबीवाई) आदि हैं। यह प्रश्न उठता है कि भारत सरकार द्वारा इन सब योजनाओं को किस हद तक सफल बनाने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं? क्या ग्रामीण लोग अपने अधिकारों और योजनाओं से अवगत हैं? इस मायने में, गाँधी का आत्मनिर्भर अभियान वैश्वीकरण युग में कहां तक कारगर हो रहा है।

गाँधी द्वारा दिए गये विचार और अवधारणा की प्रासंगिकता भारतीय प्रधानमंत्री मोदी के आर्थिक पैकेज 20 लाख करोड़ रुपये की व वोकल बनकर ग्लोबल बनाने की घोषणा को दूरदर्शिता का कदम माना है। देश को

आत्म- निर्भर बनाने में एक अहमभूमिका निभाने वाले कुटीर, लघु, मझोले उद्योगों के साथ ही बड़े उद्यमियों, हर मौसम में दिन-रात परिश्रम करने वाले किसानों व श्रमिकों और ईमानदारी से कर अदा करने वाली आम जनता के लिए भी राहत लेकर आया है। यह रिफार्म्स खेती से जुड़ी पूरी सप्लाई चेन में दिखाई पड़ेगा ताकि किसान भी सशक्त हो व कोरोना जैसे संकट का भविष्य में सामना कर सके। इसमें देश के विभिन्न सेक्टर में संगठित और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए भी कई बातें हैं।

आत्मनिर्भर का विचार भारत विनिर्माण और निवेश के लिए एक केंद्र बन सकता है। इस दृष्टि को प्राप्त करने के लिए भारत को समग्र और सतत विकास पर ध्यान देने की भी आवश्यकता है। साथ ही वास्तविक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए देश को उद्योग के आधुनिक पहलू में नवाचार, अनुसन्धान और विकास को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होगी। जिसको वैश्विक नवाचार केन्द्रों , अग्रणी भारतीय अनुसन्धान, और शैक्षणिक संस्थाओं और उनके वैश्विक समकक्षों के बीच साझेदारी के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। आत्मनिर्भरता को कारगर करने में शासन की नीति में सुधार करने के साथ-साथ भारत अपने 'कारोबार करने में आसानी' जैसे माहौल का निर्माण करने के लिए प्रक्रिया और नौकरशाही में प्रौद्योगिकी पर भारी निवेश करने की अनदेखी नहीं की जा सकती है।

निष्कर्षतः गाँधी द्वारा प्रदान की आत्मनिर्भरता, स्वदेशी, अहिंसा तथा सत्य जैसी अवधारणा को भारत सरकार (राव और सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी की स्वदेशी का विपणन की नीति) द्वारा एक स्पष्ट आदर्श आर्थिक मॉडल को सफलतापूर्वक स्थापित करने में सफल नहीं हो पाए है। लेकिन वर्तमान में, यह देखना अभी बाकी है कि मोदी जी द्वारा घोषित 'आत्मनिर्भर भारत' को किस मुकाम तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है तथा गाँधी द्वारा प्रदत्त आदर्श आर्थिक मॉडल के साथ किस प्रकार संतुलन कर पाते हैं।

स्वामी विवेकानंद की दृष्टि में "आत्म निर्भर भारत"

निखिल यादव

महामारी ने मनुष्य की जीवन जीने की शैली को ही नहीं बदला बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पुनः सोचने पर मजबूर कर दिया है। कोरोना के उपरांत क्या परिदृश्य होगा उस पर क्यास और अनुमान निरंतर लगाए जा रहे हैं। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी 12 मई को राष्ट्र के नाम सम्बोधन के दौरान "आत्म निर्भर भारत" का नारा देते हैं। प्रधानमंत्री जी के अनुसार भारत के पास क्षमता है की वो इस महामारी से उबर कर वैश्विक शक्ति के रूप में सामने आ सकता है। आत्मनिर्भर भारत के नारे को मीडिया ने हाथों-हाथ लिया और देखते ही देखते इस विषय पर बहस, चर्चाओं और लेखों की बाढ़ सी आ गई, लेकिन मुख्यतः सभी विषयों का केंद्र बिंदु आत्म निर्भर भारत का आर्थिक पक्ष रहा।

लगभग आज से 125 वर्ष पहले स्वामी विवेकानंद अमेरिका के अपने प्रवास के दौरान मिशिगन विश्वविद्यालय में पत्रकारों के एक समूह को कहते हैं की "यह आपकी सदी है, लेकिन इक्कीसवीं सदी भारत की होगी"। प्रधानमंत्री जी ने भी इक्कीसवीं सदी भारत की हो इस पर अपने भाषण में जोर दिया और जिसका मार्ग आत्मनिर्भर भारत होगा। भारत और राज्य सरकारें तो अपना हर संभव प्रयास कर रहे हैं और करती ही रहेंगी। लेकिन कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनको सम्बोधित करना बहुत जरूरी है। क्या हर भारतीय आत्मनिर्भर बनने को तैयार नहीं, फिर भी क्या भारत आत्मनिर्भर बन सकता है ?

क्या हम किसी ठोस प्रक्रिया के बिना आत्मनिर्भर बन सकते हैं ? हमें उस दृष्टि को साकार करने के लिए सचेत रूप से प्रयास करने होंगे। स्वामी विवेकानंद की 'एकता' की अवधारणा अभी के दौर की सबसे बड़ी आवश्यकता है, हम सभी को मन से एक होना पड़ेगा, जैसा कि संगठनों और सफल टीमों में हुआ करता है। आत्मनिर्भर भारत हेतु ये राष्ट्र संगठित और एक मत हो, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। तरीका और प्रक्रिया बिल्कुल अलग-अलग हो सकता है लेकिन एक विचार जिस पर सबका एकमत हो वह है- आत्म निर्भर भारत।

स्वामी विवेकानंद अपने पूरे जीवन काल में 'मनुष्य निर्माण' के कार्य में लगे रहे, उनके अनुसार यह मनुष्य निर्माण का कार्य ही भारत को पुनः जगायेगा और एक बार फिर से हमारी प्राचीन भारत माता नवयौवन प्राप्त करके कहीं अधिक भव्यदीप्ती के साथ अपने सिंहासन पर बैठेगी। अगर हम आधुनिक भारत के इतिहास के पन्ने पलटते हैं तो 1857 के विद्रोह के बाद अगर कोई सबसे महत्वपूर्ण घटना घटी है तो वो है स्वामी विवेकानंद का 11 सितम्बर 1893 को शिकागो में हुए विश्वधर्म महासभा में दिया हुआ भाषण। जहाँ वो भारतीय दर्शन, संस्कृति और सभ्यता को विश्व के सामने रखते हैं। पश्चिम के अपने प्रथम प्रवास(1893-97) के दौरान स्वामी जी ने पश्चिम का भारत की तरफ देखने का नजरिया ही बदल दिया। भारत को उस समय

सपेरो का, दासों का और अंधविश्वासों का देश माना जाता था जो सालों से विदेशियों द्वारा गुलाम रहा हो बस ।

आत्मनिर्भर भारत की दिशा में पहला कदम हमारे गौरवशाली इतिहास को स्वीकार करना होगा और इसके परिणामस्वरूप हममें पुनः आत्म विश्वास जागृत होगा एवं भारत के पुनरुत्थान का मार्ग भी प्रशस्त होगा। यदि भारत और भारतीय आत्मनिर्भर होना चाहते हैं तो हम किसी भी मॉडल का आँख बंद करके कैसे अनुसरण कर सकते हैं? क्या पश्चिम का अंधानुकरण करना उचित होगा? स्वामी जी कहते हैं कि, "एक ओर,नया भारत कहता है, पाश्चात्य भाव, पाश्चात्य भाषा, पाश्चात्य खान-पान और पाश्चात्य आचार को अपना कर ही हम पाश्चात्य राष्ट्रों के समान शक्तिशाली हो सकेंगे, दूसरी ओर पुराना भारत कहता है, हे मूर्ख ! कही नकल करने से भी दूसरों का भाव अपना हुआ है ? क्या सिंह की खाल ओढ़कर गधा भी कभी सिंह बन सकता है ? इसीलिए हमें अपने स्वाभाविक प्रवृत्ति के साथ भारतीय मार्ग पर ही आगे बढ़ना होगा। हमें पश्चिम से सीखना जरूर चाहिए लेकिन हम उनका अंधानुकरण नहीं कर सकते। हमें दुनियाभर में देखते हुए विचारों को लेना होगा किन्तु उन्हें अपने तरीके से अवशोषित करना होगा।

स्वामी जी किसी भी विचार को ऊपरी तौर पर नहीं देखते थे, वो सत्य जानने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार रहते थे। पश्चिम के प्रवास के दौरान उन्होंने देखा कि शिक्षा ने कैसे हर मनुष्य के अंदर आत्मविश्वास पैदा किया है। इसलिए भारत में बुनियादी शिक्षा आखरी व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए युवाओं और संन्यासियों को दिन-रात काम करना होगा। स्वामी जी के लिए शिक्षा कोई नौकरी पाने का साधन नहीं था, वो तो शिक्षा को "मनुष्य निर्माण" का भाग मानते थे। "भारत का भविष्य" नामक अपने व्याख्यान में वो कहते हैं - "शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूस दी जायें कि अंतर्द्वंद होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पांच ही भावों को पचाकर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कंठस्थ कर रखा है"।

यह शिक्षा राष्ट्र चरित्र का निर्माण करेगी जहाँ व्यक्तिगत श्रेष्ठता राष्ट्र और समाज के काम आए ना कि व्यक्तिगत प्रसिद्धि और सफलता तक सीमित रह जाए। अगर ऐसा वातावरण विकसित होता है तो भारत के विश्वविद्यालयों, भारतीय प्रौद्योगिकी(IIT), "भारतीय प्रबंध संस्थान (IIM) सब्सिडी पर पढ़कर विदेशों में सेवा देने वाले भारतीय वहां नहीं जायेंगे। भारत को उनकी ज़रूरत है, इसी राष्ट्र ने उनको बनाया है इसीलिए उनको भारत की सेवा करनी होगी, लेकिन यह तभी संभव है जब राष्ट्र चरित्र का निर्माण होना व्यक्तिगत लाभ और हानियों को देखकर आगे बढ़ा जाये। 1917 के 'बाल्फोर डिक्लेरेसन' के बाद दुनिया भर से यहूदी वापस अपने राष्ट्र इजराइल आ जाते हैं। वो स्वयं और उनके पूर्वजों द्वारा यहूदी राष्ट्र इजराइल के स्वपन को मूर्तरूप देने में लग जाते हैं और आनेवाले कुछ दशकों में अपने राष्ट्र को पुनः विश्व में एक ताकतवर राष्ट्र के तौर पर स्थापित कर देते हैं !

दूसरी तरफ हमें अपनी सभी व्यवस्थाओं में 'क्या मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ' वाला रवैया अपनाना पड़ेगा। जिस दिन हम हृदय से अपने देशवासियों के बारे में महसूस करने लगेंगे, हमारा राष्ट्र प्रगति के पथ पर और तेज़ी पकड़ लेगा। लेकिन यह सब इतना आसान नहीं है हममें से कुछ को इस कार्य के लिए न्योछावर करना पड़ेगा। स्वामी जी कहते हैं- 'त्याग के बिना कोई भी महान कार्य होना संभव नहीं है। अपनी सुख सुविधाएं छोड़कर मनुष्यों का ऐसा सेतु बांधना है, जिस पर चलकर नर-नारी भवसागर को पार कर जाये'। इसीलिए हमें अथक परिश्रम करना होगा इस कोरोना महामारी से उत्पन्न परिस्थिति को अवसर और इस अवसर को वास्तविकता में तब्दील करने के लिए। इसीलिए कार्य में लग जाओ, परिणाम अपनी चिंता स्वयं करेगा। जैसा स्वामी जी कहते हैं 'प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है' इसीलिए हमें अपने ऊपर पूर्ण विश्वास करना होगा। 'इस विश्व में प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य निर्धारित है, संसार को देने के लिए सन्देश है', किसी विशेष संकल्प की पूर्ति करना है। इसीलिए भारत जागो और आध्यात्मिकता से पूरे विश्व को जीत लो। इसीलिए आत्मनिर्भर होने के लिए हमें अपनी ताकत को जानना होगा और फिर कार्य में अपने आप को झोकना पड़ेगा। स्वामी विवेकानंद का यह सन्देश हमें हर स्तर पर काम आएगा |

गंगा ढाबा

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय : उत्कृष्ट शिक्षा का घर

प्रज्ञा मिलिन्द

शोध छात्रा,

जेएनयू

मानव सभ्यता के विकास में प्राचीनकाल से लेकर अब तक विश्वविद्यालयों ने 'ग्लोबल थिंक टैंक' का काम किया है। चाहे वो तक्षशिला विश्वविद्यालय हो जहाँ के चाणक्य द्वारा प्रशासन पर लिखी गई किताब 'अर्थशास्त्र' वर्तमान में भी प्रासंगिक बनी हुई है। नालन्दा विश्वविद्यालय जहाँ देश-विदेश के छात्रों के लिए प्रवेश की प्रक्रिया प्रतियोगिता के द्वारा सम्पन्न की जाती थी; विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय भी उल्लेखनीय हैं; जिनकी धमक अब तक सुनाई देती है।

आधुनिक भारत में भी अंग्रेजों के आने के बाद अंग्रेजी शासन के दौरान आधुनिक शिक्षा के अंतर्गत स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई जिनमें शिक्षा लिए हुए भारत वासियों ने राष्ट्रीयता एवं संवैधानिक उपायों के जरिए संघर्ष कर देश को आजादी दिलाई। स्वतंत्र भारत में अनेक नामी-गिरामी अध्ययन शालाओं, शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की स्थापना 1969 में पं. जवाहरलाल नेहरू की पुत्री एवं भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा की गई थी।

³¹श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा शिक्षा के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए अधोलिखित शब्द उद्धृत किए गए हैं – “शिक्षा मानव को बंधनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।”

उक्त कथन मानव के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा की उपादेयता को प्रदर्शित करता है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की स्थापना का विधेयक तत्कालीन शिक्षा मंत्री एम.सी.छागला द्वारा 1 सितंबर 1965 को राज्यसभा में पेश किया गया जिसे लोकसभा ने 16 नवंबर 1966 को पारित किया।³² आधुनिक भारत के निर्माता एवं भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को श्रद्धांजलि के तौर पर स्थापित इस विश्वविद्यालय का औपचारिक उद्घाटन तब के राष्ट्रपति वी.वी.गिरि ने 14 नवंबर 1969 को किया जो महात्मा गाँधी की जन्मशती का साल भी था। जी.पार्थसारथी इसके पहले कुलपति और मुनिस रजा संस्थापक, अध्यक्ष और कुलाधिपति थे।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय अभिव्यक्ति एवं विचारों की स्वतंत्रता अर्थात् आजादी के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याल रहा है।” आजादी के नारों के परिवेश में हो सकता है कि अनुशासन की कमी का एहसास भारत के विद्वानों द्वारा महसूस किया गया हो इसलिए वर्तमान में आजादी एवं अनुशासन के मध्य संतुलन के प्रयासों को अंगुलीजामा पहनाया जाना प्रतीत हो रहा है।”³³

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय परिसर अरावली पहाड़ियों में स्थित है। यहाँ की हरियाली और प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। यह सुरम्य स्थान है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय परिसर एक आधुनिक नगर का सा परिदृश्य प्रस्तुत करता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय अटक से कटक, कन्याकुमारी से करगिल तक तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिभाओं को अपने में समाए हुए है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय लंबे अरसे से सामान्य श्रेणी में देश का अग्रणी विश्वविद्यालय है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय उत्कृष्टता का केंद्र है और यहाँ से अलग-अलग विचारधाराओं के लोग निकले हैं। जब हम टी.वी.डिबेट देखते हैं, बचपन में भी देखते थे; जिनमें यहाँ के विद्वान प्रोफेसर, शोधार्थियों द्वारा अपने विचारों को रखा जाता है। ये विचार भारत सरकार द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णयों में परिलक्षित होते हैं, जो देश के प्रशासन (सैन्य और लोक प्रशासन) तथा विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं। विदेश नीति पर यहाँ के विद्वानों के विचारों की प्रभावकारिता अंतर्राष्ट्रीय नीतियों के परिदृश्य में कई बार स्पष्ट दिखती है। वर्तमान में भारत सरकार में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पासआउट दो छात्र मंत्रिमंडल में हैं – सुब्रमण्यम जयशंकर विदेश मंत्री हैं और निर्मला सीतारामण वित्त मंत्री हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता (2019) अभिजीत बनर्जी, भारतीय राजनीतिज्ञ सीताराम येचुरी और भारतीय अभिनेत्री स्वरा भास्कर भी यहीं से

³¹<https://hi.unionpedia.org>

³²<https://hi.unionpedia.org>

³³<https://shodhganga.inflibnet.ac.in>

पासआउट हैं। विविध क्षेत्रों में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय ने कीर्तिमान हासिल किया है उदाहरणार्थ सांस्कृतिक गतिविधियों में, छिपी हुई प्रतिभाओं को उभारने में। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में ऐसा माहौल है जो संकाय के सदस्यों और छात्रों को शोध के उभरते क्षेत्रों के छानबीन करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए अकादमिक उत्कृष्टता को बढ़ावा देता है। साथ ही प्रशासनिक प्रक्रियाओं को ज्यादा चुस्त और सरल बनाता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में 589 स्थायी संकाय सदस्य हैं और 21 पेटेंट आवेदन दाखिल 3 साल में 20 प्रकाशित हुए हैं और 5 मिले हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय पुस्तकालय में 543662 पुस्तकें हैं। विश्वविद्यालय की अहमियत का इस बात से मुख्य तौर पता चलता है कि किसी विश्वविद्यालय से कितने नोबेल पुरस्कार विजेता निकले या उसे कितना धन मिला है।

वर्तमान कुलपति श्री एम.जगदीश कुमार ने दो बातों पर फोकस किया है:- अलग-अलग पृष्ठभूमि और अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों के छात्रों को जोड़ना और बुनियादी ढांचा खड़ा करना। उक्त परिप्रेक्ष्य में, उन्होंने दिए गए किसी पत्रिका में एक साक्षात्कार में कहा है:- “यूनिवर्सिटी ने अपने अकादमिक प्रोग्राम का विस्तार किया है और इस सिलसिले में स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग और अटल बिहारी वाजपेयी स्कूल ऑफ मैनेजमेंट एन्ड एंटरप्रेन्योरशिप, आपदा अनुसंधान के लिए विशेष केन्द्र, राष्ट्रीय सुरक्षा के छात्रों के लिए विशेष केन्द्र, उत्तर पूर्व अध्ययन के लिए विशेष केन्द्र और ई-लर्निंग के लिए विशेष केन्द्र स्थापित किए गए हैं। कैंपस के माहौल में अपनी तरफ से थोड़ा योगदान देने और विशाल कैंप में आना-जाना आसान बनाने के लिए हमने ई-रिक्शा की शुरुआत की है। हम एक नया हॉस्टल बना रहे हैं ताकि छात्रों को रहने के लिए और ज्यादा जगह मिल सके। हमने इस साल से कंप्यूटर आधारित प्रवेश परीक्षा शुरू की है जिसका संचालन राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी (एन.टी.ए.) करती है। हमने एम.फिल. और पी.एच.डी. प्रोग्रामों को अलग-अलग कर दिया है ताकि छात्र अपनी मास्टर डिग्री पूरी करने के बाद सीधे पी.एच.डी. प्रोग्राम से जुड़ सकें। हम अपने 50 वें साल में हैं, मेरे आने तक एक भी दीक्षांत समारोह नहीं हुआ था। इस साल अगस्त में हम अपना तीसरा दीक्षांत समारोह मना रहे हैं।”

निष्कर्षतः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय ‘एकट लोकली थिंक ग्लोबली’ का उदाहरण प्रस्तुत करता है। भारत के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के वही मायने हैं जो ब्रिटेन के लिए केम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड के मायने हैं। इसके उदार विचार, समतावादी शैक्षिक माहौल और खुली बहस की आजादी ने अपने ढंग का अनूठा संस्थान बना दिया है। यहाँ विचारों को जाहिर करने की आजादी है। कैंपस में हाल में हुए टकरावों की भी यही वजह थी। यह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की महत्ता को दर्शाता है। बोलने और अभिव्यक्ति की आजादी भारत के लोकतंत्र की जान है।

स्त्रोत

1. <https://hi.unionpedia.org>
2. <https://shodhganga.inflibnet.ac.in>
3. <https://www.hindilibraryindia.com>
4. <https://castudyweb.com>

जेएनयू परिसर

अभिषेक सौरभ

शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र,

जेएनयू

यह कोरोना-महामारी का वैश्विक संकट-काल है। एक अदृश्य विषाणु ने समूचे संसार को अपनी भयावहता में इस कदर कैद कर लिया है कि विश्व की महाशक्तियाँ भौचक्क होकर रह गई हैं। कोविड-19 कोरोना की जकड़न से मुक्त हो पाने के लिए शक्तिशाली राष्ट्राध्यक्षों और दुनिया के कर्णधार राजनेताओं को कोई मुक्कमल उपाय सूझ नहीं रहा है। चिकित्सा-क्षेत्र के विद्वान प्राध्यापकों एवं योग्य शोधार्थियों के द्वारा वृहद् स्तर पर कोरोना से सुरक्षा हेतु जाँच-उपकरण, टीके व औषधियों की खोज का प्रयास अनवरत जारी है। देश की शीर्षस्थ शोध व अकादमिक संस्थाओं में शामिल 'जेएनयू' द्वारा भी अपने उत्तरदायित्वों का वहन जिम्मेदारी पूर्वक किया जा रहा है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध स्पेशल सेंटर फॉर मॉलीक्युलर मेडिसिन भी कोरोना के वैक्सीन और दवा की खोज हेतु शोध-कार्य में प्राणपन से जुटा हुआ है। जेएनयू कोरोना वायरस का परीक्षण करने के लिए कम लागत वाली, पोर्टेबल और बैटरी चालित उपकरण भी विकसित कर रहा है। मानव-जाति के हित में जेएनयू की यह सारी कवायद हम जेएनयू वासियों के लिए अतिरिक्त गर्व का विषय है।

अभी आषाढ़-सावन का महीना चल रहा है और जेएनयू परिसर का प्राकृतिक सौन्दर्य अपने चरम पर है। प्राकृतिक सुषमाओं से संपन्न जेएनयू-परिसर मानसून-सत्र के दौरान यँ भी सजीव हो उठता है। यह सजीवता यद्यपि जेएनयू के लिए सदाबहार चरित्र की तरह है जिसमें एक स्थायित्व कमोबेश हर मौसम में विद्यमान रहता ही है किन्तु इस बार कोविड-19 के अप्रत्याशित कहर से देश का सबसे 'वाइब्रेंट' विश्वविद्यालय परिसर भी अछूता नहीं है। जेएनयू की हृदयस्थली 'डॉ भीमराव आम्बेडकर केन्द्रीय पुस्तकालय' में विगत कई महीनों से किसी भी पुस्तक का कोई भी पन्ना पलटा नहीं जा सका है। शोधार्थियों की बारीक बुद्धिमत्ता किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही है। ढाबाओं की दुनिया अब गुलज़ार नहीं हो पा रही है, दीवारों के पोस्टर बारिश में धुल-धुलकर साफ़ होने की बजाय मलिन हो चले हैं। कोई किसी लोकगीत या जनगीत का एक पाई भी 'साबरमती' पर नहीं गुनगुना रहा है। किसी नुक्कड़-नाटक का मंचन किए हुए एसएल-लॉन को अरसा बीत चुका ; यद्यपि कन्वेंशन-सेंटर के सभागार संख्या-02 से 'होरी' बने हुए चरित्र का 'डायलॉग' रह-रह कर गूँजता है और समूचे राष्ट्र के पटल पर फैल जाता है- 'हिया जरत-रहत दिन रैन, अमुवा की डाली पे कोयल बोले, तनिक ना आवे चैन, हिया जरत-रहत दिन रैन ।।' बगल के ही सभागार में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' का मंचन हुआ था और अभी भी मेरे जेहन में वो दृश्य कैद है कि शकुन्तला किस कदर मायूस हो चली थी, कि बरबस दुष्यंत को 'अभिज्ञान' की प्राप्ति हो गयी। यह वही मंच है जहाँ कभी पदार्थवादी तार्किक दर्शन से अनुप्राणित 'चार्वाक' नाटक का मंचन हुआ था और 'नेटुआ' एवं 'गबरघिचोर' के मंचन के साथ 'भिखारी ठाकुर' के बिदेशिया की भी याद तरोताजा हो गयी थी। ये सब यादों से जुड़े तथ्य हैं किन्तु वर्तमान का सत्य है कि दुनिया अभी बंद है और भारत की भूमि का एकमात्र पुत्र-नदी अर्थात् नद 'ब्रहमपुत्र' उफान पर है, असम-

बिहार में कोरोना के अलावा बाढ़ का भी अवांछित प्रकोप है और यहाँ जेएनयू का पूर्वांचल, महानदी और ब्रह्मपुत्र छात्रावास भारतीय गणराज्य के पूर्वी-क्षेत्रों की मानिंद अपने एकाकीपन से यदा-कदा जूझ रहा है।

आपके रग-रेशे में जेएनयू कितना बसा है ; यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप जेएनयू को कितना जानते हैं। क्षमा कीजियेगा, यह मैं किसी पूर्वाग्रह-वश नहीं कह रहा हूँ ; दरअसल यह जेएनयू की जनता के आम राय का प्रतिफलन है, और हाँ ! यह निस्संदेह एकतरफा लोकमत है। छात्रसंघ के अध्यक्षीय चुनाव में भी किसी एकल प्रत्याशी को ऐसा एकतरफा जनमत जेएनयू में अब कम ही मिलता दिखाई देता है। छात्रसंघ-चुनाव से याद आया कि कोरोना के कारण इस बार जेएनयू में छात्रों के चुनावी नारे नहीं लग पायेंगे, चुनावी-पोस्टर नहीं लगेंगे, डफली की आवाज़ नहीं गूँजेगी और झोलम-लॉन भी उदासी के एक नये स्वर को पहली बार महसूस करेगा। अमेरिका के राष्ट्रपति-चुनाव की तर्ज पर जेएनयू में होने वाले 'प्रेसिडेंशियल डिबेट' के आयोजन से इस बार छात्रसंघ-चुनाव निकाय महरूम ही रहेगा और गंगा-ढाबा पर जुटने वाली सालाना भीड़ शायद अपने कमरों में ही एकाकी-भाव से कैद रहने को विवश होगी। अबके बरस गंगा ढाबा पर बैठकर छात्रों का कोई भी समूह चौड़ाई में बाहर से बस चुनाव देखने आने वाले नवागंतुकों (जिनकी आँखों में भविष्य में जेएनयू से जुड़ने की उत्कट लालसाओं का सपना झिलमिलाता रहता है) से यह नहीं दुहरा पायेगा कि 'We Dissent, We Debate, We oppose, We are JNU'

यह गंगा ढाबा का समर्थ समाजवाद ही है कि आप यहाँ पाँच रूपये में चाय भी पी सकते हैं और पाँच रूपये में आलू-परांठा भी खा सकते हैं और वो भी बिना किसी जीएसटी के झोल के। मार्क्सवाद, राष्ट्रवाद, अम्बेडकरवाद, समाजवाद और गाँधी-अम्बेडकर विवाद पर कितनी ही विस्तृत चर्चा-परिचर्चा के गवाह रहे गंगा ढाबा पर जब भी आप लम्बी-अवधि के लिए बैठते हैं, तब आपकी निगाह का अंतिम सत्य 'परांठों' की प्राप्ति ही रहता है। यह जो गंगा ढाबा है, यह जेएनयू का सबसे बड़ा राजदार है और सबका वफ़ादार भी। यकीन ना हो तो आप अपने-आप से पूछिये। आपने कब किससे यहाँ क्या बात की, किससे हॉट-टॉक (गर्मागर्म बहस) किया या किसे चोर-नजर से देखा ; वह आपतक ही सिमटा है या आपके साझीदार मात्र तक। राजनीति की सैकड़ों गुफ़्तगू, आवारगी के किस्सों, बौद्धिक-बहस के हजारों दृष्टान्त गंगा ढाबा के जेहन में चिर समाहित हैं। पत्थरों को काटकर तराशे गये 'शैल-सोफे' पर बैठने और आड़े-तिरछे-कँटीले बेतरतीब किन्तु नैसर्गिक भाव से अरावली पर उगे पेड़-पौधों के सान्निध्य का सुख देने वाले गंगा-ढाबा पर वर्तमान में एक वीरानी सी छाई है। वीरान पड़े गंगा-ढाबा के ही एक कोने से अस्फुट स्वर में किसी धुन्धली सी आकृति की आवाज़ आ रही है-“ गुलों में रंग भरे, बादे-नौबहार चले, चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले”।



स्वास्थ्य

प्राणायाम का वैज्ञानिक आयाम

उमेश बाबू

प्राणायाम शब्द योगशास्त्र में बहुप्रचलित है। यदि इस शब्द का अर्थ करें तो प्राण+आयाम बनता है। प्राण का अर्थ जीवनी शक्ति के अतिरिक्त विभिन्न स्थानों, यौगिक किताबों तथा भारतीय शास्त्रों में अन्य अर्थ भी मिलते हैं। प्रत्येक जीव में उसे चलाने वाली शक्ति जीवनपर्यंत रहती है। इसी शक्ति को प्राण शक्ति कहते हैं। पूरा विश्व एक निश्चित आवृत्ति द्वारा संचालित होता है। उसे भी हम प्राण ही कहते हैं। प्राण का अर्थ बहुत ही विस्तृत है। यहां हम शरीर में स्थित प्राणशक्ति को समझने का प्रयास करते हैं। शरीर के सभी क्रियाकलाप प्राणशक्ति द्वारा संचालित होते हैं। यदि प्राणशक्ति किसी कारणवश कमजोर पड़ जाए तो शरीर रुग्ण हो जाता है। शरीर में प्राण को बढ़ाया जा सकता है। हमारे ऋषियों, मुनियों ने प्राणशक्ति को शरीर में निश्चित आवृत्ति बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार की प्राणायाम तकनीकों का वर्णन किया है।

प्राण + आयाम संधिविच्छेद हुआ। यहां आयाम का अर्थ विस्तार, लंबा अर्थात् प्राणायाम का अर्थ प्राणों का विस्तार करना है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को परिभाषित किया है-

‘तसमिन् अस्ति श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः 11 2: 49

श्वास अर्थात् प्राण वायु को अंदर लेना, प्रश्वास अर्थात् प्राण वायु को बाहर छोड़ना। इन दोनों की गति में विच्छेदन करना प्राणायाम कहलाता है अर्थात् आसन में सिद्धि होने के बाद प्राणायाम में श्वास एवं प्रश्वास को नियंत्रित किया जा सकता है।

प्राण के प्रकार व उप प्रकार:-शरीर में प्राण विभिन्न प्रकार के कार्य प्राण व उप प्राण के द्वारा संचालित होते हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं:-

प्राण के प्रकार कार्य

1. प्राण श्वसन
2. अपान निष्कासन
3. उदान पाचन
4. समान परिसंचरण
5. व्यान शरीर के सभी कार्यों में संतुलन

प्राण के उप प्रकार

1. नाग हिचकी, डकार आना
2. कूर्म आंखों का झपकाना
3. कृकल छींक/खांसी करना
4. देवदत्त जम्भाई लाना, नींद लाना
5. धनंजय पोषण/मृत्यु के बाद शरीर का सड़ना

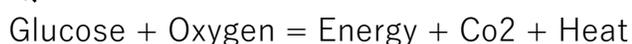
उपर्युक्त प्राण के प्रकार, उप प्रकार का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यदि इनके कार्यों में विघ्न पड़ता है तो उस कार्य से संबंधित बीमारी का पता चल जाता है। जैसे-पेट, पाचन संबंधित बीमारियों को योग की भाषा में उदान प्राण में असंतुलन से हुई हैं।

प्राणायाम के वैज्ञानिक आयाम को समझने के लिए हम कुछ शरीर के श्वसन तंत्र के अंगों का वर्णन करते हैं:-
श्वसन नली के भाग:- नाक, स्वर यंत्र, वायु नली, वायुकोष, फेफड़े।

श्वसन से संबंधित अन्य अंग:-अंतरापशुका पेशीय(inter-costal muscles), उदरपेशियां, अपफ्राम तथा मस्तिष्क में श्वसन केंद्र

ऊर्जा क्रियाविधि - मानव शरीर में ऊर्जा का स्रोत भोजन व श्वास है। यहां श्वास का स्थान महत्वपूर्ण है। क्योंकि श्वास के माध्यम से शरीर में पहुंचने वाली ऑक्सीजन ऊर्जा को पैदा करती है। यह ऊर्जा कोशिका में ग्लूकोज के रूप में संचित हो जाती है और आवश्यकता पड़ने पर कार्य में आती है।

प्राणायाम करते समय शरीर में सही तरीके से ऊर्जा मिलती है। ऊर्जा क्रियाविधि प्राणायाम के माध्यम से इस सूत्र को समझ सकते हैं।



सही मात्रा में ऑक्सीजन लेने से ग्लूकोज के साथ ऑक्सीजन खपत होकर ऊर्जा व कार्बन डाइ ऑक्साइड पैदा होती है। प्राणायाम में श्वास लेने व छोड़ने दोनों पर नियंत्रण सिखाया जाता है जिससे शरीर को ऑक्सीजन मिल सके तथा विषैली गैस कार्बनडाइऑक्साइड निकल सके।

वातावरण में गैस संरचना तथा प्राणायाम:- वातावरण में जो गैस संरचना है वह इस प्रकार है:-नाइट्रोजन 78.6 प्रतिशत, ऑक्सीजन 20.98 प्रतिशत तथा कार्बनडाइऑक्साइड 0.03 प्रतिशत। यहां हम देखेंगे कि प्राणायाम में इन गैसों में क्या बदलाव होता है:-

	N2	O2	Co2
श्वास	78.6	20.98	0.03
प्रश्वास	78.6	16.02	4.38
	0	-4.96	+4.35

जो भी हम श्वास लेते हैं उसमें से ऑक्सीजन 4.96 प्रतिशत ही ले पाते हैं। यही ऑक्सीजन हमारे शरीर में खपत हो जाती है। यदि हम प्राणायाम की तकनीक सीखकर श्वसन करते हैं तो सही मात्रा में ऑक्सीजन ले सकते हैं तथा नजर को सही तरीके से शरीर से निकाल सकते हैं।

श्वसन की मात्राएँ:-

1. टाइडल मात्रा इसकी मात्रा ,यह सामान्य श्वसन जिसमें हम श्वास लेते हैं या फेफड़ों से बाहर निकालते हैं होती .ली.मि 500।
2. अवशिष्ट मात्रा:चाहे हम पूरा श्वास निकाल दें ,यह वह मात्रा है जो हमारे फेफड़ों में हमेशा रहती है-। होती .मिली 1200 इसकी मात्रा है।
3. महत्वपूर्ण क्षमता:ऋयह वह क्षमता है जिसमें पूरा श्व स भरना और फिर पूरी करना-। सामान्य तौर तथा महि .ली 4.8 पर पुरुष मेंला में लीटर पाई जाती 3.2 है।
4. मिनट वेंटीलेशन:मिनट वेंटीलेशन को समझने के लिए टाइडल मात्रा प्रति मिनट श्वास से गुणा करने - से मिनट वेंटीलेशन निकलता है। बार श्वास लेता है तो उसका 14 से 12 प्रत्येक व्यक्ति सामान्यतया 14 या 12*मिनट वेंटीलेशन होगा 500= लीटर 7-6 क्योंकि यहां टाइडल मात्रा बढ़ जाती है।

प्राणायाम का अभ्यास यदि नियमित किया जाता है तो धीरे-धीरे सामान्य श्वसन दर प्रति मिनट कम हो जाती है तथा टाइडल मात्रा बढ़ जाती है जिससे श्वसन तंत्र को आराम मिलता है।

योग गुरु , जे एन यू , नई दिल्ली

पुस्तक समीक्षा

तितास एक नदी का नाम

यह उपन्यास मूल रूप से बंगाला में अद्वैत मल्लबर्मन द्वारा लिखे गए उपन्यास “तितास एकटि नदीर नाम” का हिंदी अनुवाद है। इस शानदार अनुवाद का श्रेय प्रो. चंद्रकला पाण्डेय और जय कौशल को जाता है। समीक्षा से पूर्व इसके अनुवाद के बारे में कुछ लिखना चाहूंगा। पुस्तक में बंगाल लोकगीतों का भी हिंदी अनुवाद कर लिया गया है, हालाँकि पाद टिप्पणी के रूप में मूल गीत को भी शामिल किया गया है अनूदित किए गए लोकगीतों में महज गीत अनूदित होकर आये हैं जबकि उनका ‘लोक’ कहीं खो सा गया है। नए स्वरूप में इन गीतों में न तो प्रवाह है न ही ये गेय है। उन लोकगीतों के लोक का सौंधापन अनुवाद करते ही मर गया है। दूसरी बात यह कि अनुवाद में हिंदी पट्टी और हिंदी पाठकों को ध्यान में रखते हुए प्रतीक और बिंब भी कुछ जगहों पर बदल गए हैं। पाठकों तक मूल कथा के संप्रेषण के लिए यह एक शानदार प्रयोग हो सकता है किन्तु इससे मूल पाठ की आत्मा बाधित हुई है। यद्यपि ऐसा कम ही जगह देखने को मिला है। अनुवादक-द्वय की सवर्था कोशिश रही है की ज्यादा से ज्यादा हिंदी के समतुल्य शब्दों को जगह दें ताकि संप्रेषण बाधित न हो। खैर!

बंगाल के मालो जातियों की गरीबी, भूखमरी उस भूखमरी में भी उनकी जिजीविषा, तीज-त्यौहार, संस्कार और आत्मीय संबंधों से भरपूर है—यह उपन्यास। चूँकि लेखक स्वयं मालो जाति से सम्बन्ध रखते हैं, अपने समाज को उपन्यास से बड़ी बारीकी से जिया है मल्लबर्मन जी ने। यह उपन्यास थोड़ी सी ‘क्रिएटिव-फ्रीडम’ लेकर मालो समाज का एक यथार्थ चित्र खींचता है। उसने अपने अपनों को बचपन में ही भूख और गरीबी से दम तोड़ते हुए देखा था। ठीक वैसे ही जैसे उपन्यास का पात्र गौरांग। गौरांग का परिवार कुछ इस तरह वर्णित है मानो लेखक स्वयं आँखों देखा यथार्थ रच रहा हो। फिल्मकार ‘ऋत्विक् घटक’ ने इस उपन्यास पर फिल्म बनाते समय लिखा था, तितास पूर्वी बंगाल का एक खंड चित्र, एक चलायमान जीवन का सशक्त वर्णन है। पूरे बंगाल में (पूर्वी और पश्चिमी) ऐसा उपन्यास दुर्लभ है। इसमें एक ओर प्रचुर नाटकीय उपादान है। तीव्र गति से घटती दृश्य-घटनाएँ हैं और प्राचीन लोक संगीत के श्रव्य टुकड़े हैं। समग्र रूप से एक सतत आनंद और अनुभूति प्रवणता है। ऐसा लगता है कि लेखक के भीतर की छटपटाहट वर्षों से बहार आने के लिए बेचैन थी। इसलिए उनके इस उपन्यास में जो आन्तरिकता है, वह अवर्णनीय है। मैंने फिल्म बनाते हुए सभी घटनाओं को अद्वैत की नज़रों से देखने की कोशिश की है। उन्होंने जिस समय तितास को देखा था, तब तितास और उनकी तीरवर्ती ग्रामीण-सभ्यता मरणासन्न थी। मैंने फिल्म में मृत्यु के बाद उसके पुनर्जीवन के कल्पना की है। मेरी फिल्म में गाँव नायक के तो तितास नायिका, जो फिर से युवा हो गई है।

तितास मानों लोगों के लिए महज एक नदी नहीं है, वह अपने मानवीकृत रूप में हर कदम मछेरो के साथ चलती है। भोज हो, व्रत हो, तीज हो, त्यौहार हो, कर्मकांड हो सब कुछ। मानो बिन तितास सब सून। विभाजन से पूर्व मालो हिंदुओं और बांग्लादेशी मुसलमानों के मध्य आपसी भाईचारा और सौहार्द इस उपन्यास में खुल कर आया है। बाउल, सूफी और आध्यात्म दोनों सम्प्रदायों के अपने हैं। खान-पान से लेकर तीज-त्यौहार, बोली-भाषा सब समान हैं, ये उनके त्योहारों में शामिल होते हैं वे इनके जब तितास उतरती है तो

उसके तटों पर ये किसान फसल बोते-काटते और जब तितास उफान पर होती है तो किसानों के घर के सामने बहती नदी में हँसते-ठिठोली करते मछरे मछली मारते हैं। खेतिहरों और मछरों की संस्कृतियों का यही मिला जुला रूप तितास की आत्मा है। जब तक यह सौहार्द कायम है तितास कायम है या इसे यूँ भी कह लें कि जब तक तितास में जल है यह प्रेम, यह आत्मीयता कायम रहेगी। अंत में जब तितास सूख जाती है यही किस्सा जमीन कब्जियाने के लिए कितने की कमज़ोर मछरों को लाठियों से पीट-पीट कर मार देते हैं।”

यह उपन्यास चार खण्डों में बँटा है और हर खंड में दो-दो अध्याय हैं। उपन्यास का पहला अध्याय पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानों आप उपन्यास नहीं तितास पर लिखा एक लंबा निबंध पढ़ रहे हों। इस अध्याय को पढ़ते हुए उपन्यास में मेरी दिलचस्पी लगभग खत्म होते-होते बची। कभी लेखक तितास के इस नाम की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, मिथकीय और दार्शनिक व्याख्या करता है तो कभी तितास के उदय और विस्तार पर लम्बे उबाऊ भाषण झाड़ने लगता है। इन्हीं उबाऊ भाषणों के बीच धारे से छोटी-छोटी कहानियाँ निकलने लगती हैं तो उपन्यास के लम्बे कथासूत्र का प्रारम्भ करती है। लेखक को पता है कि पाठक को कैसे बाँध के रखना है। जब उन लम्बे वर्णनों से मन उचाट होने लगता है तभी लेखक तितास के मालो परिवार की मार्मिक दशा की तरफ पाठक को ले जाता है – हाड़तोड़ मेहनत के बाद जब एक दिन उसे कुछ नहीं मिला तो वह एक बजबजाते पोखरे में उतर ही गया और अपना जाल उसमें फेंका। तीन चार मँढक फंसे लेकिन वे भी कूदकर बाहर निकल गए। रह गया सूना जाल और गौरांग की शून्य में ताकती नजरें। भूख और गरीबी से मरते हुए इंसान का शब्द-चित्र लेखक ने बड़े यत्न से खींचा है। भूख इंसान की संवेदनशीलता को खा जाती है। मृत्यु कितनी सुखद होती है यह एक गरीब बता सकता है और यह कितनी भयावह होती है यह उससे पूछो जिसे कभी फाकाकशी में रातें न गुजारनी पड़ी हों – कितना अच्छा हुआ वह मर गई- वह मन ही मन बुदबुदाया।” हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के पात्र ‘घीसू’ और ‘माधव’ भी ‘बुधिया’ के लिए यही कहते हैं। भूख व्यक्ति को निष्ठुर बना देती है। गौरांग का बड़ा भाई नित्यानंद, अपनी भूखी उँघती पत्नी और मुंह जोहते बच्चों को देखते-देखते इसका आदी हो जाता है। वह अपनी भी भूख को भूलकर निश्चल भाव से सारा दिन हुक्का पीता रहता है और रास्ता भी क्या है, न पानी, मछली, न अन्न।

यह उपन्यास मालो समाज की संस्कृति को बड़े करीने प्रस्तुत करता है। जीवन, मरण, विवाह, भोज, प्रथम नौका पूजन, नदी पूजन आदि सभी कुछ विस्तार से मिलता है – ‘जन्म के आठवें दिन बाद कलाई की रस्म होनी थी। टोले के अन्य बच्चों के साथ अनंत को भी बुलाया गया। खोई, भुनी मटर, बताशों से उसने भी खोइँछा भर लिया था। तेरहवें दिन अशोच खत्म हुआ।’ लोकगीतों की तो इस उपन्यास में भरमार है। मालो संस्कृति में हर अवसर के लिए गीत हैं। लेखक ने लोक से गीतों के संकलन में निश्चय की परिश्रम किया होगा। यहाँ महिलाएं हर उपलक्ष्य में गीत गाती हैं तो पुरुष भी कीर्तन और लोकगीतों में रमते हैं। एक झलकी इस प्रकार है—

देख रानी भाग्यमान

रानिर को लेते नाचे दयाल भगवान

नाचरे नाचरे गोपाल

खाईयं क्षीर ननि नाचिल बनाईबा दिबो हस्तेर पाचनि
एक बार नाच दुई बार नाच
तीन बार चाच देखि
नचाईले गड़ाइबा दिबो हस्तेर मोहन बांसी

लोक की लोकोक्तियों का व्यापक प्रयोग हुआ है, लोकोक्तियों का यह प्रयोग इस उपन्यास को बंगाल की माटी से जोड़ता है-

“दूर भाग यहाँ से ...स्यावणा गाछ के कौए”

“पूत को कुत्ते का मूत है”

उपन्यास अंततः त्रासदी के साथ खत्म होता है, बासंती उर्फ सुबला बऊ तितास एक लोटा जल की अतृप्त इच्छा के साथ नदी के बीचों-बीच खड़ी है। पर नदी में जल का नामो-निशान तक नहीं है। श्वेत रेत चारों ओर फैली है। बासंती बार-बार दिवास्वप्न देखती है कि वह तितास के शीतल जल में डुबकी लगा रही है। उसे अचानक सारी पुरानी बातें स्मृत हो आती हैं। ‘उसने कहा है’ की तरह वह ‘फ़्लैश बैक’ में सुखद अतीत देखती है। अंततः वह गिर जाती है फिर कभी न उठने के लिए... और फिर कुछ दिनों बाद बारिश आती है। नदी लबालब भर जाती है मानो फिर से अपने मछेरों को आमंत्रण दे रही हो। लेकिन अब मछेरे नहीं हैं, अब कोई नहीं है। यह उपन्यास मालो संस्कृति का एक जीवंत दस्तावेज है। विधवा विवाह (पृष्ठ सं. 165), सामंतवादी मूल्य, सूदखोरी जैसे तमाम प्रसंग इस उपन्यास में उपस्थित हैं। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की चेतना के आलोक में इस उपन्यास का अध्ययन किया जा सकता है ।

*पुस्तक: तितास एक नदी का नाम, लेखक: अद्वैत मल्लबर्मन, अनुवादक: चंद्रकला पाण्डेय, जय कौशल
प्रकाशक: मानव प्रकाशन, कोलकाता, ISBN- 978-93-80332-55-0*

राजभाषा प्रकोष्ठ की गतिविधियाँ

विश्वविद्यालय में अनुवाद एवं विभिन्न हिंदी संबंधी सेवाओं के लिए राजभाषा प्रकोष्ठ की स्थापना की गई थी।

हिंदी कार्यशाला/ संगोष्ठी/ प्रशिक्षण:- राजभाषा प्रकोष्ठ ने दिनांक: 24-09-2020 को पहली हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया। यह एक दिवसीय कार्यशाला थी। इसमें कुल 25 सहायकों ने भाग लिया। उन्हें हिंदी टिप्पण/ आलेखन तथा सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी के प्रयोग के संबंध में प्रशिक्षण दिया गया। कार्यशाला में प्रशिक्षकों/वक्ताओं को केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली तथा अन्य कार्यालयों से आमंत्रित किया जाता है। दूसरी हिंदी कार्यशाला का आयोजन दिनांक: 16.12.2020 को किया गया। यह एकदिवसीय कार्यशाला थी। इसमें 16 कनिष्ठ सहायकों ने भाग लिया। उन्हें हिंदी टिप्पण/आलेखन तथा सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी के प्रयोग के संबंध में प्रशिक्षण दिया गया। कार्यशाला में प्रशिक्षकों/ वक्ताओं को केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली तथा अन्य कार्यालयों से आमंत्रित किया गया है। तीसरी हिंदी कार्यशाला का आयोजन दिनांक: 11 फरवरी 2021 को किया गया। यह एकदिवसीय हिंदी कार्यशाला थी। इसमें कुल 33 कर्मचारियों ने भाग लिया। इस कार्यशाला का आयोजन निजी सचिव, वैयक्तिक सहायक व आशुलिपिकों के लिए किया गया। उन्हें कंप्यूटर में हिंदी के प्रयोग (यूनीकोड और विभिन्न साफ्टवेयर) के बारे में प्रशिक्षण दिया गया।



हिंदी दिवस समारोह:- विश्वविद्यालय में दिनांक: 29.09.2020 को हिंदी दिवस समारोह का आयोजन किया गया। समारोह में प्रो. कपिल कपूर, अध्यक्ष, आईआईएस, शिमलाबतौर मुख्य अतिथि के रूप में भाग लिया। कुलपति प्रोफेसर एम.जगदीश कुमार ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। प्रो. ओ.पी. सिंह, अध्यक्ष, भारतीय भाषा केंद्र, प्रो. मलखान सिंह, हिंदी सलाहकार, प्रो. चिंतामणि महापात्र, कुलदेशिक-1, डॉ. प्रमोद कुमार, कुलसचिव ने श्रोतागण को संबोधित किया। समारोह के दौरान हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेता कर्मिकों एवं छात्रों को कई

पुरस्कार प्रदान किए गए। इस कार्यक्रम में कई संकाय सदस्यों, छात्रों, अधिकारियों तथा स्टाफ सदस्यों ने भाग लिया।

गतिविधियाँ

जापानी केंद्र सांस्कृतिक पर्व: किजुना 2019

गरिमा सिंह

एमए, द्वितीय वर्ष छात्रा,
जेएनयू

हमारे जापानी अध्ययन केंद्र द्वारा कार्यक्रम 'किजुना' का आयोजन 27 तथा 28 सितम्बर 2019 को हुआ। सभी शिक्षक संकाय तथा विद्यार्थियों ने बड़े ही जोश तथा उत्साह से इस कार्यक्रम में अपना-अपना योगदान दिया था।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में 'किजुना' प्रति वर्ष आयोजित किया जाता है। वर्ष 2019 में यह कार्यक्रम 13वीं बार आयोजित किया गया। 'किजुना' एक जापानी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'बंधन' है। यह कार्यक्रम भारत और जापान के सम्बन्ध की एक झलक अवश्य प्रस्तुत करता है। किजुना 2019 ने भारत-जापान 67वें सफल राजकीय सम्बन्ध के चित्रण के साथ-साथ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्थापना की 50 वीं वर्षगांठ को भी दर्शाया। इसलिए यह वर्ष इस उपलक्ष्य को और भी महत्व पूर्ण बनाता है।

किजुना 2019 जापानी अध्ययन केंद्र द्वारा जापानी दूतावास, जापानी एसोसिएशन (दिल्ली), जापान फाउंडेशन के सहयोग तथा डॉक्टर अनुश्री के समन्वय से आयोजित किया गया। प्रातः 9:30 बजे इस कार्यक्रम की शुरुआत एस.बी. वर्मास्मारक व्याख्यान के उदघाटन से हुई, जिसमें जापानी दूतावास के राजदूत महोदय माननीय कें जीहिरामात्सु, विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय प्रोफेसर एम. जगदीश कुमार, भाषा साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान के डीन प्रोफेसर सैयदएनुलहसन, केंद्र, केंद्र अध्यक्ष प्रोफेसर पी. ए. जॉर्ज, केंद्र संकाय, तथा अन्य जापानी भाषा केंद्र के शिक्षक तथा विद्यार्थी उपस्थित थे। मुख्य अतिथि एवं केंद्र अध्यक्ष ने विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस, जापान के समाज, साहित्य, भारत-जापान सम्बन्ध आदि मुद्दों को पर विस्तृत रूप में चर्चा की। इसके उपरान्त केंद्र के अक्वल विद्यार्थियों को स्वर्ण-पदक देकर उत्साहवर्धन किया गया।

इसके पश्चात कन्वेंशन सेंटर में जापानी कलाओं का निरूपण करने हेतु, विभिन्न कार्यशालाओं का प्रबंध किया गया। 'युकाता' (पारंपरिक जापानी पहनावा), ओरिगामी (कागज की कला), शोदो (जापानी सुलेखन), इकेबाना (फूल सजाना) आदि कलाओं की व्याख्या तथा अभ्यास करवाया गया। इसके बाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ-साथ जापानी भाषा केन्द्र के अन्य विद्यार्थियों ने विभिन्न कार्यक्रम द्वारा अपनी प्रतिभाओं का रोचक प्रदर्शन किया। इन सभी प्रदर्शन में सबसे अधिक मन आकर्षित करने वाला 'ताइकोक्लब' द्वारा 'ताइकोड्रम' का प्रदर्शन रहा। इन्हीं कार्यक्रमों की श्रृंखला में सांयकाल 5 बजे से झेलम लॉन में बोन-ओदोरी (जापानी लोकनृत्य) का आयोजन भी हुआ, जिसमें जापानी संस्कृति का एक उल्लेखनीय विवरण प्रस्तुत किया गया। साथ ही विभिन्न प्रकार के जापानी पकवान तथा संगीत का सभी ने आनंद लिया।

इस प्रकार जापानी अध्ययन केंद्र का द्वि-दिवसीय कार्यक्रम सभी के योगदान से सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।

गतिविधियाँ

पौधों की अद्भुत दुनिया से रूबरू होंगे विद्यार्थी

नीरा भल्ला सरीन

जेएनयू में स्कूली विद्यार्थियों को पौधों की अद्भुत दुनिया से रूबरू कराया जाएगा। जेएनयू की स्वर्ण जयंती श्रृंखला के तहत यूरोपियन प्लांट साइंस ऑर्गनाइजेशन (ईपीएसओ) की ओर से मंगलवार को आयोजित होने वाले कार्यक्रम में अमेरिका के इलिनाइस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर गोविंद जी उपस्थित रहेंगे।

जेएनयू के जीवन विज्ञान संस्थान की प्रोफेसर और ईपीएसओ की भारत में संयोजक प्रोफेसर नीरा भल्ला सरीन ने बताया कि प्रोफेसर गोविंद जी प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया सहित पेड़-पौधों की विभिन्न क्रियाओं के जाता हैं। प्रोफेसर गोविंद जी वीडियो, प्रस्तुति और भाषण के माध्यम से विद्यार्थियों को पौधों के साँस लेने और खाना बनाने की प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करेंगे। इतना ही नहीं, केंद्रीय विद्यालय सहित दिल्ली के विभिन्न स्कूलों के कक्षा 6 से 9 तक के विद्यार्थियों को एक छोटा पौधा 'लेम्ना' भी दिखाया जाएगा। इसके बारे में उन्हें जानकारी भी दी जाएगी। प्रोफेसर सरीन ने बताया कि कई पौधे ठंड सहन नहीं कर सकते तो कई गर्मी में नहीं उग सकते। इसी तरह कोई पौधा सिर्फ बर्फ में ही जीवित रह सकता है तो किसी को फलने-फूलने के लिए अधिक गर्मी की आवश्यकता होती है। पौधों की इस दुनियाँ से यह विद्यार्थी जेएनयू की प्रयोगशालाओं में रूबरू होंगे। उन्हें बताया जाएगा कि कैसे टिशू कल्चर के माध्यम से लुप्तप्राय प्रजातियों को फिर से जीवित किया जा सकता है। कार्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों को वनस्पति विज्ञान में करिअर बनाने को प्रोत्साहित किया जाएगा।

प्रोफेसर, जीवन विज्ञान संस्थान

हमारे समय का साहित्य-3

प्रदीप कुमार, प्रियंका कुमारी और संजय कुमार

भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में 15 फरवरी, 2019 को साहित्येतिहास लेखन के थीम पर केंद्रित “हमारे समय का साहित्य 3” के तत्वावधान में शोधार्थी परिसंवाद और रचना पाठ का आयोजन किया गया। इस एक दिवसीय परिसंवाद में प्रातः 10:00 बजे से सायं 5:30 तक पाँच सत्रों और दो विशेष रचना सत्रों में विश्वविद्यालय के वर्तमान और भूतपूर्व शोधार्थियों एवं विश्वविद्यालय के ही विभिन्न केन्द्रों के कुछ विशेषज्ञ विद्वान शिक्षकों ने हिस्सा लिया।

प्रथम सत्र में शोधार्थियों ने अपने शोधकार्यों को प्रस्तुत किया। इस सत्र में कुमारी शशि ने हिंदी स्त्री उपन्यासों में आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण, श्वेता शांडिल्य ने हिंदी उपन्यासों में वेश्या जीवन और पार्वती कुमारी ने हिंदी उपन्यासों में किन्नर समाज के सवालों पर विस्तार से चर्चा की। माली सरिता रामसूरत ने बताया कि वह भक्तिकालीन मराठी और हिंदी के कवियत्रियों के लेखन पर शोध करना चाहती हैं।



दूसरे सत्र में अजय कुमार यादव, छाया चैबे, प्रदीप कुमार और संजय कुमार ने साहित्येतिहास लेखन के संदर्भ में अपने विचार रखे। अजय कुमार यादव ने कहा कि आदिकाल का प्रारंभ कहाँ से किया जाए, यह विवाद का विषय रहा है। साथ ही आदिकाल में लोक और शास्त्र के द्वंद होने की भी बात कही। छाया चैबे ने नाभादास के भक्तमाल के कालखंड में संस्कृति और लोक पर प्रकाश डाला। प्रदीप कुमार ने कहा कि किसी कालावधि में एक खास प्रवृत्ति को मुख्य मानकर उसे शामिल (पदबसनकम) करके बाकी सबको गौण मानकर उसे बाहर (मगबसनकम) कर देने वाली प्रवृत्तिमूलक साहित्येतिहास लेखन की पद्धति से काम तो चलाया जा सकता है, परंतु यह न तो वैज्ञानिक है, न न्यायपूर्ण। उन्होंने यह भी कहा कि कितनी बड़ी विडंबना है कि साहित्येतिहास

में रचना, रचनाकार और उसका परिवेश तो है, परंतु पाठक को दूर-दूर तक उसमें अपना चेहरा दिखाई नहीं देता है। संजय कुमार ने कहा कि शिवप्रसाद सितारे हिंद की इतिहास दृष्टि में परम्परा और आधुनिकता का संगम दिखाई देता है। 'इतिहासतिमिरनाशक' से प्रथम और मौलिक इतिहास की जानकारी मिलती है। इस सत्र में टिप्पणी करते हुए प्रो. रजनीश कुमार मिश्र ने कहा कि साहित्येतिहास के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। यह जरूरी नहीं कि कालविभाजन किया ही जाए, समग्रता में भी अध्ययन किया जा सकता है। कालखंड और दूसरी चीजों में उलझे रहने से जो अनवरत परम्परा है, उसका अवमूल्यन हो जाता है। कभी-कभी अध्ययन अध्यापन की सुविधा हेतु किया गया यह कृत्रिम विभाजन इतना रूढ़ हो जाता है कि हम उसे ही परम सत्य मानने लगते हैं। आगे उन्होंने बताया कि शास्त्र और लोक में द्वंद्व मानना भ्रांतिपूर्ण है। शास्त्र भी तो लोक के लिए ही होता है। शास्त्र हो या व्याकरण वह सदा लोक को प्रमाण मानता है। वह लोक से विमुक्त नहीं हो सकता।

रचना सत्र - एक में परविंदर अम्बर ने 'पिता का फावड़ा' प्रदीप कुमार ने 'प्यार नहीं है केमिस्ट्री का प्रैक्टिकल एग्जाम' और 'कुरकुरे वाली लड़की और गुलाम', आमिर हमजा ने 'बिब्बी की उपलेनुमा आग' तथा 'केदारनाथ सिंह' को समर्पित 'आना' कविता का पाठ किया। निधि श्री ने 'भूख' कहानी का पाठ किया।

तीसरे सत्र का संयोजन गणपत तेली ने किया। इस सत्र में उज्ज्वल आलोक ने कहा कि इस काल को आधुनिक और समकालीन मान लिया जाए तो आने वाली पीढ़ियाँ अपने काल को क्या कहेंगी? उन्होंने आगे कहा कि साहित्य की कुछ घटनाएँ बड़े पैमाने पर साहित्य को प्रभावित करती हैं, जो बाद में प्रवृत्ति के निर्धारण का आधार बनती हैं। पाठक को साहित्येतिहास का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता है क्योंकि साहित्येतिहास को एक सीमा से अधिक बड़ा नहीं किया जा सकता। इसलिए साहित्येतिहास में पाठक को शामिल करने कि गुंजाइश नहीं है। अशोक कुमार यादव ने राधामोहन गोकुल के लेखन के हवाले से कहा कि साहित्येतिहास लेखन में आर्थिक सवालों को भी ध्यान रखा जाना चाहिए। उनके अनुसार राधामोहन गोकुल ने हिन्दी नवजागरण में सामाजिक, धार्मिक, स्त्री सुधारों से सम्बंधित सवालों पर चर्चा की है। इसके अलावा हिंदी-उर्दू विवाद, भाषा का सवाल, आधुनिकीकरण के मसले लगातार उठाए हैं। तत्कालीन सन्दर्भ में आर्थिक पक्ष में किसानों-मजदूरों, कारीगरों, उद्योग-धंधे और अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के स्वरूप से कैसे बचा जाए इन सारे सवालों पर लिखा है। संदीप सौरभ ने हिंदी के कथेतर गद्य में वैश्विक परिदृश्य पर बात करते हुए कहा कि विश्वयुद्ध काल में हिन्दी के लेखकों ने साम्राज्यवाद, बोल्शेविक क्रांति, राष्ट्रवाद और फासीवाद को लेकर वैचारिक लेखन किया। भारत उस दौर में स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में गढ़ रहा था। इनके वैचारिक लेखन से राष्ट्र निर्माण को पुष्ट करने वाली दिशा मिली। संतोष भारद्वाज ने अपनी बात रखते हुए कहा कि अमृतलाल नागर का साहित्य साहित्येतिहास लेखन के सांस्कृतिक पक्ष पर जोर देता है।

चौथे सत्र में आशुतोष पाण्डेय ने कहा कि हिंदी साहित्य का हाशियाकृत इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता है। मुख्यधारा के साहित्येतिहास में जो छूट गए हैं, उन्हें दर्ज किया जाना चाहिए। मनीष कनौजिया ने कहा कि परंपरा के साथ-साथ उसके समांतर ही प्रतिरोध की संस्कृति भी चलती रहती है, इसलिए साहित्येतिहास

परंपरा के साथ प्रतिरोध और सामाजिक न्याय के सवाल को भी स्थान दिया जाना चाहिए । सुशील कुमार ने कहा कि किसान समस्या पर बात करते हुए प्रश्न उठाया कि किसान जीवन का यथार्थ रचना के यथार्थ में आ रहा है या नहीं ?

रचनाकार क्यों किसान जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति नहीं कर पा रहे हैं ? इसके पीछे क्या कारण है इसे जानना बहुत जरूरी है । वीणा सुमन ने कहा कि हम बड़े स्त्री विमर्शकारों को तो पढ़ लेते हैं लेकिन लोक कथाओं में निहित स्त्री विमर्श को अनदेखा कर देते हैं, जिसे सामने लाना आवश्यक है । हाशिए के समाज में शामिल सभी मुद्दों के निचोड़ को लिखने एवं स्थान देने की जरूरत है । जब तक हम इसे अपने लोक और पुरानी चीजों में नहीं खोजेंगे तब तक इतिहास का सही पुनर्मुल्यांकन नहीं हो सकता है ।

पांचवें सत्र में मूल इन दो ने हिन्दी साहित्य और कोरियाई साहित्य के इतिहास लेखन के संदर्भ में अपने विचार रखे । सरिता ने मराठी और हिन्दी के तुलनात्मक अध्ययन पर प्रकाश डाला । श्रीनिवास त्यागी ने कहा कि आज के साहित्य में अस्मिता और हाशिया केंद्र में आ गया है । इसलिए बुद्धि, चेतना और तर्क के आधार पर अलग-अलग मुद्दों को लेकर साहित्येतिहास लेखन की आवश्यकता है । इस सत्र पर टिप्पणी करते हुए नूरजहाँ मोमिन ने कहा कि तुलनात्मक अध्ययन में अनुवाद की बड़ी भूमिका होती है । इसमें भाषा विज्ञान की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण है । उन्होंने बताया कि साहित्य सिर्फ जो लिखा गया या जो अवलोकन किया गया वह नहीं होता बल्कि एक शोधार्थी को जो नहीं कहा गया है यह देखना भी जरूरी है ।

रचना सत्र - दो में दीपक कश्यप ने विस्तार से बताया कि ऐसे अनेकों भारतीय स्त्री हैं, जिनको साहित्येतिहास में सही सम्यक स्थान नहीं मिल सका है । साथ ही इनहोने अंग्रेजी कहानी का भी पाठ किया । वीणा सुमन और मून इल दो ने अपनी कविताओं का पाठ किया । समीक्षा दुबे ने फैज़ की उर्दू कविता 'हम देखेंगे' का गायन किया ।

मणीन्द्रनाथ ठाकुर ने पूरे कार्यक्रम पर टिप्पणी करते हुए कहा कि हमारी जो परम्परा पल-बढ़ रही है, उसके साथ संवाद करना चाहिए । इतिहास लेखन में काल निर्णय के झंझट पर ध्यान न देकर परम्परा को समझना चाहिए । आधुनिकता समय से ज्यादा प्रवृत्ति है और यह कभी भी पैदा हो सकती है। इतिहास की बहुत सी सामग्री मौखिक परम्परा में है, जिसे लिखा ही नहीं गया है । फिर देवेंद्र चौबे ने इस पूरे आयोजन के पीछे काम कर रही दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहा कि परिसंवाद के साथ-साथ रचना सत्र का होना इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि साहित्येतिहास लेखन में यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि आज का लेखक अपनी रचनाओं में वर्तमान समय के सवालों से किस प्रकार टकरा रहा है ।

अंत में प्रदीप कुमार ने धन्यवाद ज्ञापन देते हुए कहा कि इसी तरह भविष्य में भी साहित्येतिहास लेखन पर अनेकों गोष्ठियों और परिसंवाद किए जाने की आवश्यकता है ।

आदिकवि सरला दास ओड़िया अध्ययन पीठ द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी

– प्रो उदयनाथ साहू



ओड़िया भाषा, साहित्य और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए आदिकवि सरलादास ओड़िया अध्ययन पीठ ने अन्यपीठ/ केंद्रों के साथ मिलकर कई महत्वपूर्ण संगोष्ठी आयोजित किया है ।

1. 09-10 जनवरी, 2019 को अतीत और वर्तमान के संदर्भ में, 'प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति के परिदृश्य' पर अनुसंधान मंच, नई दिल्ली के सहयोग से आदिकवि सरलादास उड़िया अध्ययन के अध्यक्ष प्रो. उदयनाथ साहू द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया ।

2. 15-16 फरवरी, 2019 को 'ग्रेट इंडियन एपिक्स: इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव्स' शीर्षक से एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन ओड़िया स्टडीज़, सेंटर फॉर इंडियन लैंग्वेजेज, स्कूल ऑफ लैंग्वेज, लिटरेचर एंड कल्चर स्टडीज़, जेएनयू और कलिंग इंस्टीट्यूट ऑफ इंडो-पैसिफिक स्टडीज़ (KIIPS), भुवनेश्वर के साथ आदिकवि सरलादास अध्ययन पीठ के सहयोग से किया गया। प्रख्यात शिक्षाविद प्रो. कपिलकपूर, डॉ. प्रतिभा रे और डॉ. को एनराडएल्स्ट, हीरामन तिवारी, प्रो. शोभरानीदास, ओटानी विश्वविद्यालय, जापान, डॉ. सरकार मुस्तफा, जातीय कवि काज़ी नज़रूल इस्लाम विश्वविद्यालय, बांग्लादेश, प्रो. रमेश भारद्वाज, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रो. ई. मुरलीधरनराव, डीयू, प्रो. बसंत कुमार त्रिपाठी, प्रो. बीएन पटनायक, आईआईटी कानपुर, प्रो. बालकृष्ण मुनियानपान, वावासन मुक्त विश्वविद्यालय, मलेशिया ने सम्मेलन में भाग लिया था। प्रोफेसर उदयनाथ साहू, आदिकवि सरलादास के चेयर प्रोफेसर, चेयर ऑफ ओड़िया स्टडीज़ और डॉ. नेताजी अभिनंदन, के आईआईपीएस के निदेशक सम्मेलन के समन्वयक थे। सम्मेलन ने विद्वानों और शिक्षाविदों को महान भारतीय महाकाव्यों-रामायण और महाभारत से संबंधित विभिन्न प्रवचनों में, समकालीन दुनिया में इस की प्रासंगिकता और अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सफलतापूर्वक शामिल किया था जिसके माध्यम से इसे आगे बढ़ा और व्याख्या किया जा सकता है ।

3. अनुवाद अध्ययन के साथ अनुवाद साहित्य और संस्कृति पर दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन सीआईएल/ एस एलएल एंड सीएस, जेएनयू 2 से 3 मई 2019 को ।

4. समकालीन हिंदी-ओड़िया कविता: पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन 2 अगस्त, 2019 को सीआईएल, जेएनयू में

किया गया ।

परिसर गतिविधियाँ





अंतराष्ट्रीय योग दिवस



शतरंज प्रतियोगिता

मैराथन दौड़



विज्ञान संगोष्ठी



कुलपति महोदय का एन सी सी द्वारा अलंकरण कुलपति महोदय द्वारा एन सी सी भवन का उद्घाटन



स्वतन्त्रता दिवस: एन सी सी परेड



स्वतन्त्रता दिवस: कुलपति प्रो एम जगदेश द्वारा औषधि वृक्ष बेल (बिल्व) का रोपण

जेएनयू फैकल्टी द्वारा वृक्षारोपण



एन एस एस द्वारा वृक्षारोपणदेव वृक्ष पाकड़ का रोपण -डॉ प्रवेश कुमार, डॉ नलिनी महापात्रा



सुगंधित पुष्प चम्पा का रोपण – डॉ सौरभ शर्मा

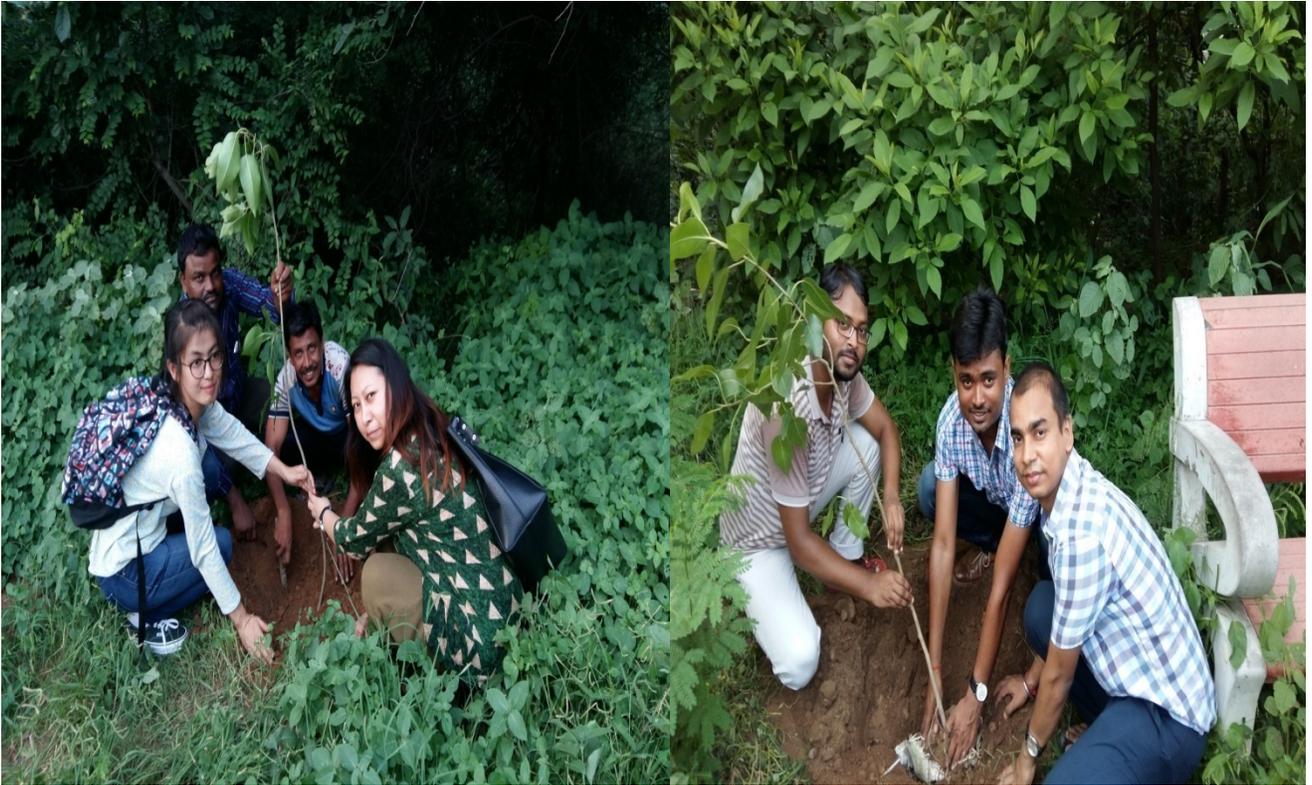


फलदार वृक्ष खजूर का रोपण –प्रो कौशल किशोरशर्मा ,डॉ मलखन सिंह

छात्रों द्वारा वृहद वृक्षारोपण कार्यक्रम



वृहद वृक्षारोपण : नीबू



वृहद वृक्षारोपण : पाकड़



वृक्षारोपण : हर शृंगार



वृहद वृक्षारोपण : अमलतास वृहद वृक्षारोपण : बेल



वृहद वृक्षारोपण : महुआ ,बेर



वृहद वृक्षारोपण : नीव्



इंटरनेशनल फूड फेस्टिवल 2019





जे एन यू सांस्कृतिक संध्या : संस्कृत नाटक की प्रस्तुति



यू पी राइज़ 2019



विदेशी छात्रों द्वारा कैपस क्षमण



सांस्कृतिक संध्या : कथक नृत्य



जे एन यू सांस्कृतिक संध्या: उडिया नृत्यजे एन यू सांस्कृतिक संध्या: राजस्थानी घट नृत्य



स्वर्णोत्सव 2019



‘यह तीसरा पहर था’ पुस्तक का विमोचन :प्रो गोविंद प्रसाद ,वरिष्ठकवि मंगलेश डबराल,कवि मदन कश्यप ,संजीव कुमार ,प्रो देवशंकर नवीन,डॉ मलखान सिंह



विशेष व्याख्यान ‘तुलसी की कविताई’ : वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ,भारतीय भाषा केंद्र के छात्र



मौलिक काव्य पाठ : प्रस्तुती जे एन यू लिटरेरी क्लब



फोटोग्राफी क्लब जे एन यू : फोटोग्राफी प्रशिक्षण कार्यशाला

JNU DRAMA CLUB PRESENTS

ANDE KE CHHILKE

A play by - Mohan Rakesh

Direction
Mayank Kumar
Teacher Incharge
Dr. Malkhan Singh

Cast
Arnav, Shwangi, Nisar
Shweta, Shardul, Sonia

On the occasion of Golden Jubilee Celebration
MARCH 29, 2019 | 06 :30 pm
@JNU CONVENTION CENTRE

In Collaboration with DOS, IHA, JNU
JNU DRAMA CLUB presents -

डी. तिवारी : गणनाधिकारी

a play based on a story by
UDAY PRAKASH

Directed By - **ARNAV KUMAR**

11 October 2019 | 9:00 PM
@ JNU, CONVENTION CENTER
Contacts : 8810625830, 6205171696

SPIC MACAY

Jawaharlal Nehru University Chapter
Cultural Committee, Office of Dean of Students, IHA

SPIC MACAY

Auditorium 2, Convention Centre JNU, 5:30pm

16th Aug **Hariprasad Chaurasia** (Padma Vibhushan - Flute)
Sudha Ragunathan (Padma Bhushan - Carnatic Vocal)

17th Aug **Vishwamohan Bhatt** (Padma Bhushan - Mohan Veena)
Rajan Sajan Mishra (Padma Bhushan - Vocal)

18th Aug **Shashank Subramanyam** (SNA Awardee - Carnatic Flute)
Shahid Parvez (Padma Shri - Sitar)

Also: Ram Kumar Mishra Pakala Ramadas, Vijay B, Natesan, R Raman, Sumit Mishra, Mithlesh Jha, Abbishek Mishra, NC, Bharadwaj, Giridhar Udapa, Hafeez Ahmed Ali.

We thank our supporters

For further details contact: Meeta - 9711138802, Anupriya - 9868907880, Lakshayjit - 9971274192, Vipin - 995803881, Usha - 9717397553, Suman - 9899308093
SPIC MACAY, 41/42, Lucknow Road, Delhi - 110 054

Live Webcast : spicmacay.com www.spicmacay.com

